पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना के अंतर्गत ब्यूरो द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

1.	भारतीय पुलिस का इतिहास (अतीतकाल से मुगलकाल तक)	डा. शैलेन्द्र चतुर्वेदी
2.	भारत में केन्द्रीय पुलिस संगठन	श्री एच. भीष्मपाल
3.	ग्रामीण पुलिस : समस्याएं एवं समाधान	श्री रामलाल विवेक
4.	ग्रामीण पुलिस : समस्याएं एवं समाधान	श्री शंकर सरौलिया
5.	विकासशील समाज में समसामयिक पुलिस की भूमिका	श्री आर.एस. श्रीवास्तव
6.	स्वातंत्र्योत्तर भारत में पुलिस की भूमिका एवं जनता का दायित्व	डा. कृष्णमोहन माथुर
7.	मादक पदार्थ एवं पुलिस की भूमिका	श्री हरीश नवल
8.	सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में पुलिस की भूमिका का उद्‌भव	प्रो. मीनाक्षी स्वामी
9.	समग्र न्याय-व्यवस्था में पुलिस का स्थान एवं भूमिका	श्री ललितेश्वर
10.	पुलिस दायित्व एवं नागरिक जागरूकता	डा. सी. अशोकवर्धन
11.	महिला और पुलिस	श्रीमती अमिता जोशी
12.	मानवाधिकार और पुलिस	डा. जी.एस. वाजपेयी
13.	नई आर्थिक नीति एवं अपराध	डा. अर्चना त्रिपाठी
14.	बाल अपराध	डा. गिरिश्वर मिश्र
15.	न्यायालयिक विज्ञान की नई चुनौतियां	डा. शरद सिंह
16.	मानवाधिकार संरक्षण एवं पुलिस	श्री रामकृष्ण दत्त शर्मा, डा. सविता शर्मा
17.	सामुदायिक पुलिस व्यवस्था	डा. तपन चक्रवर्ती, डा. रवि अम्बष्ट
18.	संगठित अपराध	श्री महेन्द्र सिंह आदिल
19.	पुलिस कार्यों का निजीकरण	डा. शंकर सरौलिया
20.	साइबर क्राइम	डा. अनुपम शर्मा
21.	अपराधों की रोकथाम और प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल	डा. निशांत सिंह
22.	अपराध पीड़ित महिलाओं की समस्याएं	डा. ऋता तिवारी, डा. उपनीत लाली
23.	वैध समस्याओं के निदान हेतु बढ़ती हिंसा प्रवृत्ति	श्री राकेश प्रकाश
24.	आतंकवाद एवं जन साझेदारी	श्री विश्वेश शर्मा
25.	व्यावसायिक यौनकर्मियों का सुधार एवं पुनर्वास	श्रीमती नीना लांबा
26.	बंदियों का सुधार एवं पुनर्वास	डा. दीप्ति श्रीवास्तव
27.	नक्सलवाद और पुलिस की भूमिका	श्री राकेश कुमार सिंह

ब्यूरो द्वारा प्रकाशित उपरोक्त सभी पुस्तकें, नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली-110054 से प्राप्त की जा सकती हैं।

पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में पुलिस की भूमिका

डा. पंकज श्रीवास्तव

नीतू मिश्रा

पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में पुलिस की भूमिका

लेखक

डा. पंकज श्रीवास्तव

एवं

नीतू मिश्रा

पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में पुलिस की भूमिका

पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में पुलिस की भूमिका

(पं. गोविंद वल्लभ पंत पुरस्कार योजना भाग-2 के अंतर्गत पुरस्कृत)

लेखक

डा. पंकज श्रीवास्तव

एवं

नीतू मिश्रा

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो

गृह मंत्रालय, नई दिल्ली

(भारत सरकार, गृह मंत्रालय ने हिन्दी में पुलिस संबंधी पुस्तकें उपलब्ध कराने के लिए गृह मंत्रालय की हिन्दी सलाहकार समिति ने 23 मई, 1979 की अपनी बैठक में यह निर्णय लिया था कि न्याय वैद्यक, अपराध शास्त्र, पुलिस अनुसंधान और पुलिस प्रशासन आदि विषयों पर लिखित हिन्दी की मौलिक पुस्तकों पर पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना प्रतिस्थापित की जाए। तदनुसार 22 मार्च, 1980 को अपर सचिव की अध्यक्षता में गृह मंत्रालय में हुई बैठक में निर्धारित मापदंडों के आधार पर इस संबंध में जो निर्णय लिए गए उसके अनुसार इस योजना को अंतिम रूप दिया गया। इस योजना के अंतर्गत ही भाग 1 में मौलिक प्रकाशित पुस्तकों को पुरस्कृत किया जाता है तथा वर्ष 1982 से भाग 2 के अंतर्गत दिए गए विषयों पर पुस्तक लेखन कार्य कराया जाता है। इसी के तहत यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है।)

इन पुस्तक में दिए गए विचार लेखक के निजी हैं
इनसे पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो,
गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली की
सहमति आवश्यक नहीं है।

प्रकाशक के सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक – पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो (गृह मंत्रालय),
3/4 मंजिल, ब्लाक–II, सी.जी.ओ. कंप्लैक्स,
लोदी रोड, नई दिल्ली–110003

एकमात्र वितरक – नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
सिविल लाइंस, दिल्ली–110054

प्रथम संस्करण – 2015

मुद्रक – प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय

आमुख

पुलिस अनुसंधान एवं ब्यूरो द्वारा पुलिस व न्यायालयिक विज्ञान से संबंधित हिंदी में साहित्य उपलब्ध कराने के लिए पं. गोविंद वल्लभ पंत पुरस्कार योजना को वर्ष 1982 में प्रारंभ किया गया था। पुलिस से संबंधित विभिन्न विषयों पर अनेक पुस्तकें पुरस्कार प्राप्त कर चुकी हैं।

भारत में अपराधों की रोकथाम के लिए पुलिस को नित नए प्रयोग करने पड़ रहे हैं। इसी संदर्भ में पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से संबंधित विषय भी सामने आया है। इस श्रेणी में भी अपराधियों द्वारा नित–नए अपराध संबंधी प्रयोग किए जाने लगे हैं। पुलिस के समक्ष इस विषय पर नई चुनौतियों का सामना करने के साथ उसकी अपनी भूमिका किस प्रकार हो। विषय की गंभीरता एवं विभिन्न पहलुओं को देखते हुए ब्यूरो द्वारा संचालित पं. गोविंद वल्लभ पंत पुरस्कार योजना की मूल्यांकन समिति ने पर्याप्त विचार–विमर्श के बाद देश के विभिन्न प्रांतों से इस विषय पर विचार आमंत्रित किए। विभिन्न राज्यों से प्राप्त रूपरेखाओं में से सामान्य वर्ग के लिए दिए गए विषय 'पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में पुलिस की भूमिका' पर डा. पंकज श्रीवास्तव एवं श्रीमती नीतू मिश्रा द्वारा प्रस्तुत रूपरेखा को चुना गया। लेखकों ने इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करने के साथ–साथ ठोस सुझाव प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास भी किया है। मैं स्पष्ट करना चाहती हूं कि लेखकों द्वारा दी गई राय उनकी निजी राय है।

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो एवं भारत सरकार की इसमें कोई टिप्पणी नहीं है। ये लेखकों के सामान्य प्रकाशन के लिए नहीं है।

निर्मल कौर
म.नि. (एस.पी.डी.)

लेखकीय

पुलिस की कानून व्यवस्था हेतु निभाई जा रही जिम्मेदारी स्वतः सिद्ध है। किसी भी नीति के प्रभावी क्रियान्वयन में पुलिस की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसी प्रकार पुलिस पर्यावरणीय कानूनों के पालन में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। पर्यावरण संरक्षण की सोच रखने वाले संगठन और व्यक्तियों की संख्या पर्यावरणीय समस्याओं के मद्देनजर आज भी नगण्य है, इसके विपरीत यदि पुलिस के सेटअप को देखा जाए तो इसका एक काफी वृहद नेटवर्क हैं, अतः यदि पुलिस तंत्र का उपयोग पर्यावरणीय समाधानों की जानकारी प्रदान करने एवं लोगों को पर्यावरणीय मुद्दों पर संवेदनशील बनाने के लिये किया जाए तो यह अत्यंत प्रभावी योजना होगी।

दूसरा अहम तथ्य है कि जिन लोगों को इस संवेदनशील मुद्दे पर जानकारी को चुना जाए उन्हें स्वयं भी परिस्थितियों और पर्यावरणीय मुद्दों की भयावहता का अहसास हो जिससे कि वे पर्यावरण संरक्षण में अपनी सकारात्मक भूमिका निभा सकें! साथ ही पूर्वनियोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम और पर्यावरणीय मुद्दों को स्पष्ट करने वाली यह पुस्तक मानवीय संसाधन को प्रशिक्षण देने योग्य बनाने संबंधी आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकती है।

पुस्तक को पं. गोविंद वल्लभ पंत पुरस्कार से सम्मानित करने हेतु पुरस्कार चयन समिति एवं पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो दिल्ली का आभार व्यक्त करते हैं। आशा है पुस्तक उद्देश्य की पूर्ति करेगी।

पुस्तक को इस स्वरूप में लाने के लिये सहयोगियों की मेहनत और परिवार जनों की नामवार मदद का उल्लेख कर उनका कद छोटा करना नहीं चाहते। कहीं पढ़ा था–

अपनी धरती को नष्ट होने से बचाइये,
इतने अच्छे ग्रह की खोज कठिन है।

डा. पंकज श्रीवास्तव
नीतू मिश्रा

पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में पुलिस की भूमिका

पुलिस की कानून व्यवस्था हेतु निभाई जा रही जिम्मेदारी स्वतः सिद्ध है। किसी भी नीति के प्रभावी क्रियान्वयन में पुलिस की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसी प्रकार पुलिस पर्यावरणीय कानूनों के पालन में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। पर्यावरण संरक्षण की सोच रखने वाले संगठन और व्यक्तियों की संख्या पर्यावरणीय समस्याओं के मद्देनजर आज भी नगण्य है इसके विपरीत यदि पुलिस के सेटअप को देखा जाए तो इसका एक काफी वृहद नेटवर्क हैं। अतः यदि पुलिस तंत्र का उपयोग पर्यावरणीय समाधानों की जानकारी प्रदान करने एवं लोगों को पर्यावरणीय मुद्दों पर संवेदनशील बनाने के लिये किया जाए तो यह अत्यंत प्रभावी योजना होगी।

दूसरा अहम् तथ्य यह है कि जिन लोगों को इस संवेदनशील मुद्दे पर जानकारी को चुना जाए उन्हें स्वयं भी परिस्थितियों और पर्यावरणीय मुद्दों की भयावहता का अहसास भी हो। पूर्वनियोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम और मुद्दों को स्पष्ट करने वाली यह पुस्तक इन सभी मानवीय संसाधन संबंधी आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकती है।

विषय सूची

अध्याय–1	पुलिस की भूमिका एवं कार्यक्षेत्र	11
अध्याय–2	पुलिस की पर्यावरणीय मुद्दों पर प्रशिक्षण की योजना	36
अध्याय–3	पर्यावरण–एक परिचय	46
अध्याय–4	पर्यावरण तथा मानव अंतर्संबंध	61
अध्याय–5	परिस्थितिकी एवं परितंत्र	74
अध्याय–6	ठोस अपशिष्ट	91
अध्याय–7	पॉलीथीन/प्लास्टिक प्रबंधन	102
अध्याय–8	अपशिष्ट प्रबंधन	107
अध्याय–9	मानवीय गतिविधियों का पर्यावरण पर प्रभाव	112
अध्याय–10	जल–प्रदूषण	139
अध्याय–11	वायु–प्रदूषण	145
अध्याय–12	ध्वनि–प्रदूषण	155
अध्याय–13	ऊर्जा संकट	162
अध्याय–14	पर्यावरण शिक्षा	166
अध्याय–15	जैव विविधता	178
अध्याय–16	सस्टेनेबल डेवेलपमेंट या संपोषणीय विकास	209
अध्याय–17	पर्यावरण संरक्षण : राष्ट्रीय संदर्भ में	216
अध्याय–18	पर्यावरण संरक्षण : अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में	236
अध्याय–19	वैश्विक एवं भारतीय परिपेक्ष्य में पर्यावरणीय कानून और नियम : क्रमिक विकास	249
अध्याय–20	तकनीकी शब्दावली	253

अध्याय – 1
पुलिस की भूमिका एवं कार्यक्षेत्र

कोई भी समाज अपराधों से मुक्त नहीं है और जहां भी अपराध हैं वहां पुलिस की जरूरत है। पुलिस विभाग आज के समय की एक ऐसी महत्वपूर्ण संस्था है जिसकी भूमिका छोटी से छोटी घटना से लेकर बड़े कार्यों तक में महत्वपूर्ण है। पुलिस समाज के सबसे सर्वव्यापी संगठनों में से एक है। यही कारण है कि पुलिस की छवि एक ऐसे सर्व उपलब्ध शासकीय प्रतिनिधि की है जो किसी भी संकट या परेशानी या किसी अचानक आई समस्या के समय जनसामान्य के लिए सुलभ रूप से उपलब्ध है। मूलतः पुलिस का कार्य कानून व्यवस्था को बनाए रखना है परन्तु वास्तविक रूप में पुलिस की जिम्मेदारी एवं दायित्व कहीं अधिक हैं। यदि हम पुलिस के कार्यों पर गौर करें तो उन्हें काफी वृहद एवं विस्तृत (Diversified) पाएंगे।

देश में कानून व्यवस्था बनाए रखने, अपराधों को रोकने, उनकी जांच करने तथा अवैध आश्रजन, साम्प्रदायिक दंगों, प्राकृतिक आपदाओं के समय पर नियंत्रण और साम्प्रदायिक सौहार्द्र बढ़ाना, कमजोर लोगों को मदद करना आदि अनेक कार्यों का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन पुलिस का प्रमुख कार्य है।

पुलिस के कार्य

कानून का पालन
अपराधियों के बारे में जानकारी जुटाना
अपराध अन्वेषण
अपराधों की रोकथाम
शांति एवं सुरक्षा की स्थापना
अन्य विभागों को सहायता

विशिष्ट जन सुरक्षा
प्रजातांत्रिक एवं चुनाव व्यवस्था संबंधी
प्राकृतिक आपदा बचाव एवं राहत
अन्य कार्य जैसे ट्रैफिक व्यवस्था।

अंग्रेजी शब्द पुलिस (POLICE) मूलतः सभ्य समाज या संगठित सरकार के भाव को व्यक्त करता है। यह संगठन लोकतांत्रिक समाज में लोगों की शासन पद्धति और उनके हितों की सुरक्षा के लिए मूलतः कानून के एक अभिकरण के रूप में कार्य करता है।

POLICE (पुलिस)

P	-	Polite	–	विनम्र
O	-	Obedience	–	आज्ञाकारी
L	-	Liability	–	जिम्मेदारी
I	-	Intelligent	–	बुद्धिमान
C	-	Courageous	–	साहसी
E	-	Efficient	–	दक्ष

यदि पुलिस द्वारा किए जाने वाले इन कार्यों की समीक्षा की जाए तो जो बातें स्पष्टतया समझी जा सकती हैं वे हैं –

1. पुलिस तंत्र की आम आदमी तक पहुंच किसी भी अन्य तंत्र से बेहतर है। अतः पुलिस की पकड़ समाज पर काफी अच्छी है।

2. संख्यात्मक रूप से पुलिस की उपलब्धता किसी भी अन्य तंत्र की तुलना में जनसंख्या के परिपेक्ष्य में पर्यावरण संरक्षण जैसे उपयोगी कार्य को करने के लिए उचित है।

3. आम आदमी में पुलिस की बात का बेहतर असर तो है ही चाहे उसका कारण जो भी हो।

4. पुलिस तंत्र का नेटवर्क थानों और चौकियों के माध्यम से काफी वृहद/विस्तृत है।

तालिका : विभिन्न स्तरों पर पुलिस की वास्तविक संख्या राज्यवार स्थिति

S.NoState/UT	Area (In Sqr. kms)	Estimated Mid Year Population (In Thousand)	Actual Polie Strength			Percentage of Civil Police Total place
			Civil	Armed	Total	
1. आंध्र प्रदेश	275045	85744	82036	14953	96989	84.6
2. अरूणाचल प्रदेश	83743	1260	4646	4981	9627	45.3
3. असाम	78438	31071	22292	36112	58404	31.2
4. बिहार	94163	99457	53040	13605	66645	79.6
5. छत्तीसगढ	135191	24695	26549	16426	42975	62.8
6. गोवा	3702	1834	4196	1203	5399	77.2
7. गुजरात	196024	60062	53207	15032	68239	71.0
8. हरियाणा	44212	25994	38425	6686	45111	85.3
9. हिमाचल प्रदेश	55673	6878	9691	4658	14349	67.5
10. जम्मू कश्मीर	101387	11914	48894	28086	76980	68.3
11. झारखंड	79714	32050	42578	14435	57013	74.7
12. कर्नाटका	191791	60229	63936	8313	72239	18.5
13. केरला	38863	34882	39445	5810	45255	87.2
14. मध्यप्रदेश	308245	73730	56662	20101	76763	73.8
15. महाराष्ट्र	307713	114697	170990	14677	185667	92.1

16. मनीपुर	22327	2487	9571	13568	23139	41.4
17. मेघालय	22429	2661	6043	5293	11336	51.3
18. मिजोरम	21081	1020	4469	5759	10228	43.7
19. नागालैण्ड	16579	2284	5637	4364	10001	55.4
20. उड़ीसा	155707	41224	29433	15935	45368	64.5
21. पंजाब	50362	28083	60065	16872	76937	77.1
22. राजस्थान	342239	69249	62617	11850	74467	84.1
23. सिक्किम	7096	622	1641	2809	4450	35.5
24. तमिलनाडु	130058	68002	81022	13395	94417	85.4
25. त्रिपुरा	10486	3672	10520	12952	23472	44.0
26. उत्तर प्रदेश	240928	205426	151912	31243	183155	82.9
27. उत्तराखण्ड	53483	10131	14289	3722	18011	75.3
28. पश्चिम बंगाल	88752	90595	65494	22872	88366	74.1
कुल (राज्यों)	3155431	1189953	1219290	365712	1585002	76.3
केन्द्र शासित प्रदेश						
29. अण्डमान एण्ड निकोबार द्वीपसमूह	8249	512	3384	814	4198	81.5
30. चण्डीगढ़	114	1532	5392	625	6017	13.5
31. दादर एण्ड नागर हेवली	491	376	288	0	288	106.7
32. दमन एण्ड द्वीव	112	285	256	0	256	120.1
33. दिल्ली	1483	19164	68024	8301	76325	83.0
34. लक्ष्यद्वीप	32	77	402	0	402	110.0
35. पाण्डीचेरी	492	1471	1908	359	2267	84.2
योग (केन्द्र शासित प्रदेश)	10973	23417	79654	10099	89753	18.7
योग (सम्पूर्ण भारत)	3166404	1213370	1298944	375811	1674755	77.6

स्रोत–नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो रिपोर्ट 2012–2013

तालिका : पुलिस की वास्तविक संख्या और जनसंख्या अनुपात राज्यवार स्थिति

S. No.	State/UT	Actual Police Strength (of Rank) D.C To A.S.I	Head Constables To Constables	Teech To Tall Ratio	Actual Police Strength of I.Os.(Insp.+SI +ASI of Cir. Pol.)	No. of Policemen Per 100 Sqrr.kms. of area	No. of Policemen Per 1,00,000 of Population	No. of IPC Cases Per Civil Police Man	Total Police Expen dirure (Rs. In Crores)	Unit Cost Per Policemen (Per Annum)
1.	आंध्र प्रदेश	11912	85077	1:07	9697	35.3	113	3.1	3145.72	324338
2.	अरूणाचल प्रदेश	708	8919	1:13	460	11.5	764	0.9	308.10	320037
3.	असाम	8212	50192	1:06	6356	74.5	188	7.2	1318.05	225678
4.	बिहार	12276	54369	1:04	10857	70.8	67	4.3	2501.25	375309
5.	छत्तीसगढ	4614	38361	1:08	2639	31.8	174	2.3	1442.55	335672
6.	गोवा	453	4946	1:11	368	145.8	294	1.5	193.88	359104
7.	गुजरात	12047	56192	1:05	9869	34.8	114	2.8	2203.90	322968
8.	हरियाणा	6347	38764	1:06	5591	102	174	2.1	1542.76	341992
9.	हिमाचल प्रदेश	2036	12313	1:06	1510	25.8	209	1.8	472.94	329598
10.	जम्मू कश्मीर	7841	69139	1:09	5567	75.9	646	0.7	2171.16	282042
11.	झारखंड	7464	49549	1:07	6293	71.5	178	1.6	2034.45	356840
12.	कर्नाटका	8755	63484	1:07	7816	37.7	120	2.8	2316.53	320676
13.	केरला	4878	40377	1:08	3944	116.4	130	4.9	1618.00	357530
14.	मध्यप्रदेश	12222	64541	1:05	9280	24.9	104	4.1	1791.21	233343
15.	महाराष्ट्र	28153	157514	1:06	25828	60.3	162	1.8	4568.4	246053
16.	मनीपुर	2106	21033	1:10	1513	103.6	930	1.8	615.14	265846
17.	मेघालय	1321	10015	1:08	988	50.5	426	1.6	729.00	643084
18.	मिजोरम	1498	8730	1:06	1073	48.5	1003	0.5	434.46	424775
19.	नागालैण्ड	718	9283	1:13	456	60.3	438	0.3	789.52	789441
20.	उड़ीसा	8074	37294	1:05	6793	29.1	110	3.1	1490.20	328469
21.	पंजाब	7996	68941	1:09	6168	152.8	274	0.9	2913.25	378654
22.	राजस्थान	7817	66650	1:09	6925	21.8	108	2.9	2234.18	300023
23.	सिक्किम	462	3988	1:09	244	62.7	715	0.6	222.25	499438
24.	तमिलनाडु	10338	84079	1:08	8820	72.6	139	3.7	3294.97	348981
25.	त्रिपुरा	2363	21109	1:09	1797	223.8	639	0.7	590.30	251491
26.	उत्तर प्रदेश	11107	172048	1:15	8934	76	89	1.5	7829.44	427476
27.	उत्तराखण्ड	1578	16433	1:10	1310	33.7	178	0.7	649.47	360596
28.	पश्चिम बंगाल	22936	65430	1:03	17617	99.6	98	3.8	2296.55	259891
	कुल (राज्यों)	206232	1378770	1:07	168713	50.2	133	2.6	51717.63	326294
	केन्द्र शासित प्रदेश									
29.	अण्डमान एण्ड निकोबार द्वीपसमूह	448	3750	1:08	403	50.9	820	0.4	177.23	422177
30.	चण्डीगढ़	603	5414	1:09	581	5278.1	393	1	208.85	347100

31. दादर एण्ड नागर हवेली	15	273	1:18	12	58.7	77	2.5	9.61	333681
32. दमन एण्ड द्वीव	45	211	1:05	40	228.6	90	1.5	7.09	276953
33. दिल्ली	12414	63911	1:05	11558	5146.7	398	1.4	3514.02	460402
34. लक्ष्यद्वीप	42	360	1:09	38	1256.3	522	0.3	14.95	371891
35. पाण्डीचेरी	368	1899	1:05	321	460.8	154	2.8	97.62	430613
योग (केन्द्र शासित प्रदेश)	13935	75818	1:05	12953	817.9	383	1.4	4029.37	448940
योग (सम्पूर्ण भारत)	220167	1454588	1:07	181666	52.9	138	2.5	55747.00	332867

स्रोत–नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो रिपोर्ट 2012–2013

विभिन्न स्तरों के पुलिस अधिकारी / कर्मचारी	राज्यों में	केन्द्र शासित प्रदेशों में	कुल
DGP/ADGP/ IG/DIG स्तर पर	1284	50	1334
SSP/SP/Addl.SP/ ASP/Dy SP स्तर पर	9720	357	10077
Inspector/ SI/ASI स्तर पर	168713	12953	181666
ASI से निचले स्तर पर	1039573	66294	1105867

श्रोत – नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो रिपोर्ट 2012–13

पर्यावरण संरक्षण में पुलिस की भूमिका –

पुलिस की कानून व्यवस्था एवं समय–समय पर सौंपे गए कार्यों हेतु निभाई जा रही भूमिका स्वतः सिद्ध है। एवं यह भी एक सर्वमान्य सत्य है कि किसी भी नीति के क्रियान्वयन में पुलिस की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पर्यावरण संरक्षण की सोच रखने वाले संगठनों एवं व्यक्तियों की संख्या पर्यावरणीय समस्याओं के मद्देनजर नगण्य है और लगातार बढ़ती हुई पर्यावरणीय समस्याएं बताती है कि पर्यावरण संरक्षण हेतु किए जा रहे प्रयास भी पर्याप्त नहीं है। वर्तमान समय में अगर शहरों का ही उदाहरण लें तो शिक्षित लोगों की संख्या काफी है परन्तु आज भी रिहायशी बस्तियों में जगह–जगह पॉलीथीन के ढेर, जरा सी बरसात में जगह–जगह भरा हुआ पानी, टाफी, बिस्कुट, चिप्स, गुटके आदि के रैपर, वास्तविकता एवं पर्यावरण के प्रति हमारी सोच को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त है। आज हम सब्जी या बाजार से कोई भी अन्य सामान लाने के लिए थैले ले जाना पसंद नहीं करते और घरों में आने वाले हर नए सामान के साथ एक पॉलीथीन सड़क पर जाने के लिए तैयार मिल रही है। अनेकों जगह पालीथीन का उपयोग प्रतिबंधित कर दिया गया है या एक निश्चित मानक मोटाई की पालीथिन का प्रयोग सुनिश्चित करने की बात काफी समय पूर्व से की जा रही है परन्तु जब तक हम स्वयं जागरूक नहीं है समस्याओं का समाधान संभव नहीं है।

इस समस्या का एक और पहलू यह भी है कि मुफ्त में उपलब्ध चीज की मांग काफी अधिक है। चूंकि इस पालीथीन का हमें सामान के मूल्य के अतिरिक्त कोई मूल्य नहीं देना पड़ता अतः हमें हर सामान के साथ एक पालीथीन चाहिए। यह एक समस्या

है ऐसी ही कई समस्याएं हैं जो पर्यावरण से खिलवाड़ कर हमारे ही जीवन को दुष्कर बनाती जा रही है।

हम स्वयं पढ़े लिखे समझदार हैं परन्तु हमें स्वयं की भी चिन्ता नहीं है। एक सरल से उदाहरण से इस बात को आसानी से समझा जा सकता है। आज कितने दुपहिया चालक हैं जो स्वयं की सुरक्षा हेतु हेलमेट लगाते हैं, यदि पुलिस की सख्ती न हो और चालान का भय न हो तो आज भी वे गिने चुने लोग ही हेलमेट पहनकर वाहन चलाएंगे।

पुलिस नागरिकों से संबंधित पर्यावरणीय अपराधों में त्वरित कार्यवाही के लिए तत्काल उपलब्ध हो सकती है। जिससे यह होगा कि वह अपराध कौन से विभाग से नियंत्रित होगा शिकायतकर्ता को यह ढूंढना नहीं पड़ेगा और अपराध पर त्वरित कार्यवाही से दर्शक/बाकी नागरिकों पर भी इसका सकारात्मक असर होगा। भले ही यह असर भय क्यों न हो, क्योंकि यह आवश्यक है कि समझा जाए क्या सही है और क्या गलत है और यह भी कि गलत होने पर दंड का भागी बनना पड़ सकता है। अब यह अंतर भी स्पष्ट होना चाहिए कि दंड मिल सकता है और दंड मिलेगा ही। जिस दिन यह अंतर दूर हो गया तो कोई भी उपाय अधिक प्रभावशाली साबित होगा। यही कारण है कि पुलिस की पर्यावरणीय मुद्दों पर पहल सकारात्मक प्रतीत होती है।

अतः पर्यावरणीय समस्याओं के निवारण में भी पुलिस प्रेरक की भूमिका निभा सकती है। इसके लिए सिर्फ पुलिस के तंत्र को संवेदनशील बनाने की आवश्यकता है क्योंकि सिर्फ शिक्षा पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान नहीं है जब तक शिक्षा से संवेदनशीलता का विकास नहीं होगा वह शिक्षा अधूरी ही रहेगी। यह बात सुप्रीम कोर्ट के निर्देश उपरान्त सभी शैक्षणिक स्तरों पर पाठ्यक्रम में पर्यावरण शिक्षा या पर्यावरणीय विज्ञान विषय का समावेश होने के बाद भी और पर्यावरण संरक्षण हेतु 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित हुए प्रथम सम्मेलन और उसके पश्चात् हमारे देश में बनाए गए विभिन्न नियम/प्रावधान एवं वैश्विक स्तर पर किए गए काफी प्रायास भी पर्यावरणीय समस्याओं का निराकरण नहीं कर पाए हैं।

अभिप्राय यह नहीं है कि अभी तक किए गए सभी प्रयास गलत हैं या उनसे कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। परन्तु पर्यावरणीय समस्याओं ने मानवीय अभिवृत्ति एवं सोच के कारण ऐसा स्वरूप ले लिया है कि आज के परिपेक्ष्य में हर प्रयास नाकाफी नजर आता है यदि नियमों की बात की जाए तो इन नियमों का पालन एक ईकाई के रूप में आम आदमी को ही करना है जिसकी सोच आज के परिपेक्ष्य में विकृत एवं

स्वकेन्द्रित है। अगर पकड़े जाने का भय न हो तो आज भी काफी प्रतिशत जनसंख्या अपने फायदे के लिए हर क्षेत्र में नियम तोड़ने के लिए तत्पर मिलेगी। पुलिस प्रशिक्षण का एक नियमित कोर्स है एवं प्रत्येक स्तर पर समय–समय पर रिफ्रेशर कोर्स आदि भी आयोजित किए जाते हैं। अब यदि पर्यावरण विषय में संवेदनशीलता बढ़ाने के मुद्दे को भी इस पाठ्यक्रम से जोड़ दिया जाए तो यह काफी प्रभावी साबित हो सकता है।

अपराध क्या है ?

अपराध एवं अपराधी का अस्तित्व पाषाण युग से वर्तमान युग तक है। प्रारंभ में मनुष्य की आवश्यकताएं कम थी इसलिए स्वार्थ की प्रवृत्ति नहीं थी और इसके कारण संपत्ति के लालसा भी अधिक नहीं थी। अधिकतर आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति से ही हो जाती थी और अपराध नाममात्र के लिए ही था। और वे केवल चोरी, लूट और हत्या तक ही सीमित थे।

धीरे–धीरे मानव की आवश्यकताएं बढ़ी और संग्रह की भावना और अधिक प्रबल होने से कई तरह के नए अपराध पनपने लगे जिनमें तस्करी, काला बाजारी,रिश्वत और सफेदपोश अपराध शामिल है। कालक्रम के परिवर्तन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय और ब्रह्मचर्य के स्थान पर काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और अभिमान की प्रमुखता हो गयी।

अपराध से अभिप्राय किसी ऐसे मानवीय कार्य से है जो कि न केवल किसी व्यक्ति विशेष, समुदाय या समाज के लिए हानिकारक हो। अपराध (Crime) का हिन्दी पर्याय है। क्राइम एक फ्रेंच शब्द है जिसे जुर्म, कसूर, पाप और गुनाह आदि के पर्यायवाची के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। वास्तव में Crime शब्द लेटिन भाषा के शब्द Crimen से उत्पन्न हुआ है। जिसका शाब्दिक अर्थ होता है बिलगाव अथवा अलगाव। इस प्रकार अपराध एक ऐसी घटना है जिसके करने से करने वाला या अपराधी समाज से विलग हो जाता है। कुछ अपराध शास्त्रियों का मानना है कि अपराध शब्द की व्युत्पत्ति लेटिन शब्द Cerno (सरनो) से हुई है जिसका अभिप्राय है मैं तय करता हूं, मैं न्याय देता हूं (I decide, I give judgement)। अपराध एक ऐसा व्यवहार है जिसमें सामाजिक अनुबंध अथवा समझौते का उल्लंघन होता है। यह संपूर्ण राज्य के साथ समाज के सभी व्यक्तियों की व्यक्तिगत सुरक्षा और संपत्ति के लिए हानिकारक होता है। इसलिए उसे कानून के अनुसार दंड दिया जाता है। कोई भी व्यक्ति अथवा समूह एक विशिष्ट तरीके से व्यवहार करता है और दूसरा

व्यक्ति या कोई दूसरा समूह उस कृत्य से विचलन करता है अर्थात अलग ढंग का व्यवहार करता है इन्हीं के बीच संघर्ष में अपराध के लक्षण उभरने लगते हैं। यह एक ऐसा व्यवहार अथवा कृत्य है जो किसी विशेष समुदाय की सामाजिक संहिता पर आघात करता है। अपराध एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है और यह उसी समय से प्रचलन में है जबसे सभ्यता विकसित हुई है। वस्तुतः अपराध तभी से होने प्रारंभ हो गए थे जबसे मानव ने धीरे–धीरे सभ्य होना शुरू किया था। अपराध प्रत्येक युग और हर समाज में पाई जाने वाली घटना है। कुछ उदारवादी विद्वान मानते हैं कि अपराध एक मानव व्यवहार है। साथ ही ये विद्वान यह भी कहते हैं कि सभी मानव व्यवहार, अपराध नहीं होते हैं, केवल उन्हीं मानव व्यवहारों को अपराध कहा जा सकता है जो सामाजिक मान्यताओं और नैतिकता के प्रतिकूल हों। अपराधशास्त्रियों द्वारा अपराध को विविध प्रकार से परिभाषित किया गया है। इनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नानुसार हैं –

● टैपन के अनुसार ''अपराध अपराधिक विधि का सोद्देश्य कृत्य है जो बिना किसी औचित्य एवं बचाव के किया जाता है और जिसको करने पर व्यक्ति को राज्य द्वारा दंडित किया जा सकता है।'' टैपन द्वारा अपराध की दी गई उपरोक्त परिभाषा, विधिक दृष्टिकोण को व्यापक तथा विस्तृत स्वरूप प्रदान करती है। उपरोक्त परिभाषा में निम्न तत्वों के आधार पर किसी कृत्य को अपराध माना गया है –

◆ किसी भी कार्य को अपराध घोषित करने के लिए जरूरी है कि वह कृत्य कानून के खिलाफ किया गया हो।

◆ किसी आपराधिक कानून का उल्लंघन करने पर ही कोई कृत्य अपराध कहलाता है।

◆ वैधानिक औचित्य के अंतर्गत किया गया कार्य अपराध की श्रेणी में नहीं आता है।

◆ बिना किसी उद्देश्य के किया गया कार्य भी अपराध की श्रेणी में नहीं आएगा।

◆ सभी हानिकारक कृत्य अपराध नहीं होते हैं वरन केवल वे ही हानिकारक कृत्य अपराध कहलाते हैं जो विधि द्वारा निषिद्ध हैं और कानून द्वारा हानिकारक घोषित किए गए हैं।

◆ जिस कृत्य को करने पर विधि विधान में दंड का प्रावधान किया गया होता है, वही कृत्य अपराध की श्रेणी में आता है, चाहे दंड देने का उद्देश्य प्रतिशोधात्मक,

निरोधात्मक, प्रतीकात्मक, क्षतिमूल्यात्मक या सुधारात्मक कुछ भी रहा हो।

● कैनी के अनुसार – ''अपराध वे असंवैधानिक कार्य हैं जिनके साबित हो जाने पर न्यायालय अपराधियों को दंड देता है और ऐसे दंड में कमी करने का एकमात्र अधिकार राज्य का होता है।''

● ब्लैकस्टोन के अनुसार – ''अपराध का अर्थ है ऐसे लोक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का उल्लंघन करना जो संपूर्ण समाज अथवा समुदाय को एक समाज अथवा समुदाय के रूप में प्राप्त हों।''

● मिलर के अनुसार – ''अपराध वे कृत्य अथवा अकृत्य उल्लंघन कार्य हैं जिनको विधि अथवा कानून समादेशित अथवा निदेशित करता है और उनके उल्लंघन करने पर सरकार एक संस्था के रूप में कार्यवाही करके दंडित करती है।''

● आसबार्न के अनुसार – ''अपराध वह कृत्य या अकृत्य है जो समाज ने समुदाय के हित के विरुद्ध है और जो विधि द्वारा निषिद्ध है, जिसको करने पर सरकार को दंड देने का भी अधिकार होता है।''

● मोरर के अनुसार – ''अपराध किसी भी कानून का उल्लंघन करने की प्रक्रिया है।''

● जानगिलिन के अनुसार – ''अपराध वे कार्य हैं जो समाज के लिए वास्तव में अहितकर बताए गए हैं। या जो उन व्यक्तियों के समुदाय द्वारा जिनको अपने विश्वास को कार्यान्वित करने की शक्ति है, समाज के लिए अहितकर बताए गए हैं और जिसको उन्होंने दंड द्वारा रोक दिया है।''

● सदरलैंड के अनुसार – ''अपराधी आचरण वह आचरण है, जिससे अपराधी कानून भंग करता हैं।''

● जान एस मैकेन्जी के अनुसार – ''अपराध, समाज के विरुद्ध उन समस्त असंतोषों को प्रकट करता है जिन्हें राष्ट्रीय कानून द्वारा स्वीकार किया गया है तथा जिनका कर्ता दंड का भागी है।''

● टेफ्ट के अनुसार – ''अपराध वे कार्य हैं जिनको करना कानून द्वारा रोका गया है और जो विधि द्वारा दंडनीय माने गए हैं।''

● हत्सबरी के अनुसार – ''अपराध एक ऐसा कार्य या दोष है जो जनता के विरुद्ध असंतोष है और जो कार्य के कर्ता या दोषी को दंड का भागी बनाता है।''

● लैंडिस एवं लैंडिस के अनुसार – ''अपराध वह कार्य है जिसे राज्य ने

सामूहिक कल्याण के लिए हानिप्रद घोषित किया है और जिसके लिए दंड देने के लिए राज्य शक्ति रखता है।''

अपराध की विधिशास्त्रीय अवधारणा के मुताबिक कोई सार्वजनिक कानून जो किसी व्यवहार के करने पर प्रतिबंध लगाता है या ऐसा करने को अवज्ञा देता है, उसके उल्लंधन स्वरूप किया गया व्यवहार अपराध है। इस अवधारणा के आधार पर अपराध को परिभाषित करते हुए हेकरवाल के अनुसार – ''अपराध कानून संहिता के उल्लंघन में जान–बूझकर किया गया व्यवहार है, जो बिना किसी आरक्षण के किया गया तथा राज्य द्वारा दंडनीय है।'' अपराध की विधि शास्त्रीय अवधारणा कहती है कि अपराध कानून द्वारा प्रतिबंधित होता है। अपराध की समाजशास्त्रीय अवधारणा के आधार पर भी विभिन्न विद्वानों ने अपराध शब्द को परिभाषित किया है। ये सभी विद्वान मानते है कि अपराध एक ऐसा कार्य हैं जिससे समाज को क्षति पहुंचती हैं और जो सामाजिक आदर्शों के विरूद्ध होता है। इस आधार पर इलियट और मेरिल ने लेख किया कि ''जब किसी व्यक्ति का आचरण असामाजिक ठहराया जाता है तो उसका आचरण उस मान्य आचरण से, जो उस समूह के द्वारा उस स्थिति में निश्चित होता है, भिन्न होता है।'' प्रो. रेकलेस के अनुसार कि ''समाज के बनाए और माने हुए रास्ते को तोड़ने का नाम अपराध है।''

- अपराध वह कृत्य है जिसके लिए उस व्यक्ति को जो उस कृत्य के लिए दोषी हो, विधिक दंड दिया जा सकता है।
- अपराध वह कृत्य या व्यतिक्रम है जो समाज के हितों पर विपरीत प्रभाव डालते हैं और जो विधि द्वारा दण्ड भय व्यवस्था के द्वारा निषिद्ध है।
- आपराधिक विधि द्वारा वर्जित आचरण अपराध है।
- कुछ परिस्थितियों में किसी व्यक्ति की असावधानी को भी अपराध माना गया है। उदाहरण के लिए भारतीय दंड संहिता (Indian Penal Code) के अंतर्गत धारा 304 (ए) में यदि किसी व्यक्ति की असावधानी से किसी की मृत्यु हो जाती है तो उसे उस व्यक्ति की हत्या का दोषी माना जाता है।
- प्रतिरक्षा में किए गए कृत्य जो अन्यथा अपराध होने के कारण दंड के पात्र होते परन्तु प्रतिरक्षा के विधिमान्य अधिकार के कारण अपराध नहीं माने गए हैं।
- अपराध में सहायता को भी उसी श्रेणी का अपराध माना गया है।

अपराध की विशेषताएं –

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई अपराध की परिभाषाओं के निष्कर्ष एवं आपराधिक विधि में निहित दंडनीति के साथ इस निष्कर्ष का सामंजस्य करने पर अपराध की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

(अ) किसी कृत्य को तभी अपराध कहा जाएगा जबकि उसका प्रभाव सामाजिक हितों पर आघात हो। उस कृत्य से प्रत्यक्ष हानि होनी चाहिए।

(ब) यह हानि विधि के द्वारा वर्जित होनी चाहिए। कोई भी कृत्य जब तक विधि द्वारा वर्जित नहीं है और तब तक अपराध नहीं माना जा सकता है।

(स) कृत्य के होने में आचरण होना चाहिए, अर्थात् यह हानि किसी इरादा (Intention) अथवा अनवधानता (Negligence) के कारण किए गए कार्य या कार्य–लोप (Omission) के कारण होनी चाहिए। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति से उसे तत्काल मृत्यु का भय दिखाकर गोली चलवायी जाती है जिसके परिणामस्वरूप एक व्यक्ति घायल हो जाता है तो इस प्रकार गोली चलाने वाला व्यक्ति अपराध का दोषी नहीं है।

(द) इस प्रकार किए गए कृत्य में आपराधिक अभिप्राय (Criminal Intention) का होना आवश्यक है। आपराधिक विधि में इसे कलुषित बुद्धि (Mens Rea) कहते हैं। यह अपराध का आवश्यक तत्व है। यहां यह स्पष्ट होना चाहिए कि इरादा (Intention) एवं उद्देश्य (Motive) में अंतर है। किसी अपराध के लिए इसमें (Intention) का आपराधिक होना आवश्यक है जबकि उद्देश्य नेक (Good Motive) हो सकता है। उदाहरण के लिए भूख और असह्य पीड़ा से तड़पते व्यक्ति को एक व्यक्ति इसलिए गोली मार देता है कि उसे पीड़ा से मुक्ति मिल जाए। यहां उसका उद्देश्य व्यक्ति को पीड़ा एवं कष्ट से मुक्त करना है जो नेक है, किन्तु उसका इरादा आपराधिक है क्योंकि उसे ज्ञान है कि वह जो कृत्य करने जा रहा है, वह विधि द्वारा वर्जित है। इसी प्रकार पागल व्यक्तियों को अपराधी नहीं माना जाता क्योंकि उनमें अपराध के लिए आवश्यक कलुषित बुद्धि (Mens-Rea) का अभाव होता है।

(य) आपराधिक इरादा और आचरण में सम्बन्ध होना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि पुलिस अधिकारी किसी अपराधी को गिरफ्तार करने हेतु उसके घर में प्रवेश करता है तो उसका इरादा आपराधिक न होने के कारण वह अपराधी नहीं है किन्तु बाद में यदि उसका इरादा बदल जाता है और वह घर में घुसने के बाद अपराध करता है तो वह उस कृत्य के लिए अपराधी माना जाएगा।

(र) विधि द्वारा वर्जित कार्य और आचरण में युक्तियुक्त सम्बन्ध होना चाहिए। इसका अर्थ है कि अपराध व्यक्ति के आचरण के परिणामस्वरूप होना चाहिए। यदि 'अ' 'ब' पर गोली से प्रहार करता है, 'ब' अस्पताल में जबकि स्वस्थ हो रहा है, किसी गंभीर बीमारी से मर जाता है, यहां 'अ' भले ही 'ब' पर प्रहार के लिए दोषी हो, परन्तु वह हत्या का अपराधी नहीं है। क्योंकि हानि (मृत्यु) और आचरण (गोली चलाना) का आपस में युक्तियुक्त सम्बन्ध नहीं है।

(ल) हानि के लिए आपराधिक विधि में दंड की व्यवस्था होनी चाहिए। किसी कृत्य के अपराध होने के लिए उसका विधि द्वारा वर्जित होना ही पर्याप्त नहीं है अपितु उस वर्जना के उल्लंघन के लिए दण्ड की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

सामान्य अपराध /पर्यावरण अपराध

अपराधों को पर्यावरणीय संदर्भ में दो भागों में बांटा जा सकता है –

1. सामान्य अपराध
2. पर्यावरणीय अपराध

1. सामान्य अपराध – सीधे या परोक्ष रूप से व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। इन्हें मूलतः निम्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

अ. व्यक्ति के विरूद्ध अपराध जैसे – हत्या, बलात्कार, चोट पहुंचाना।

ब. सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध जैसे – चोरी, डकैती, लूट, धमकी।

स. व्यवस्था के विरूद्ध अपराध जैसे – जालसाजी, दंगा, वर्गों में शत्रुता बढ़ाना।

द. राज्य के विरूद्ध अपराध जैसे – राजद्रोह, जाली मुद्रा बनाना, झूठा साक्ष्य।

2. पर्यावरणीय अपराध – पर्यावरणीय अपराधों से अभिप्राय ऐसे अपराधों से है जो गैरकानूनी मानवीय क्रियाकलाप है और सीधे पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। परन्तु ध्यान देने योग्य पहलू यह है कि इन अपराधों का प्रभाव भी परोक्ष रूप से व्यक्ति, जंतुओं या सम्पत्ति पर ही होता है अतः परिणामस्वरूप प्रभावित व्यक्ति ही होता है।

पर्यावरणीय अपराधों को Green Crimes भी कहा जाता है। पर्यावरणीय अपराध सामान्य अपराधों से भिन्न इसलिए भी है क्योंकि इन अपराधों की कोई सीमा नहीं है। इन अपराधों को जिलों, राज्यों या राष्ट्रों की सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। यह इसलिए कि पूरी पृथ्वी ग्रह एक परितंत्र है जो कि स्थानीय न होकर वैश्विक है। ऐसा भी माना जा सकता है कि वर्तमान समय में समाज वैश्विक समस्याओं के घेरे

में है और आधुनिक जीवन में जो खतरे हैं वे ज्यादातर मानव निर्मित (Man-Made or Manufactured Risk) है अतः इन समस्याओं के कल या भविष्य के बारे में अनुमान तो लगाया जा सकता है परनतु निश्चित तौर पर कुछ भी कह पाना असंभव है। अतः माना जा सकता है कि पर्यावरणीय अपराध एक सामाजिक एवं राजनैतिक मुद्दा है। पर्यावरणीय अपराधों के बारे में दो प्रकार की अवधारणाएं प्रचलित हैं –

पारंपरिक पर्यावरणीय अपराध सामन्य अपराधों की परिभाषानुसार अर्थात पर्यावरणीय नियमों का तोड़ना अपराध है। ऐसा कोई भी कार्य जिसको करने की अनुमति न हो अर्थात अनाधिकृत रूप से किया गया कार्य जो किसी कानून को तोड़े। अब यदि समस्या वैश्विक है तो उपाय भी वैश्विक होना चाहिए। परन्तु ऐसा संभव है कि जो कार्य किसी एक देश में अपराधों की श्रेणी में आए वो अपराध न भी है। कानूनी रूप में बनी हुई परिभाषाएं पर्यावरण जैसी समस्या का सार्थक एवं स्थायी उपाय बन पाएंगी इसमें शंका ही है। पर्यावरणीय समस्याओं के लिए एक वैश्विक परिदृश्य की स्थापना ही मूल उपाय है। यदि दूसरी अवधारणा के बारे में सोचा जाए तो इसे एक घटना के उदाहरण से समझें। यदि किसी नदी में किसी कारखाने से जानबूझकर असावधानी से या दुर्घटनावश हानिकारक अपशिष्ट मिल जाए, तो वह बहाव के साथ कहीं तक भी जा सकते हैं और उनका प्रभाव क्षेत्र कुछ मीटर से कई किलोमीटर तक, एक शहर से दूसरे शहर तक एवं एक राज्य से दूसरे राज्य तक भी हो सकता है।

भारत की सर्वाधिक गंभीर पर्यावरणीय आपदा थी मध्यप्रदेश में दिसम्बर 1984 में घटित भोपाल गैस त्रासदी। इस त्रासदी में मेथाइल आइसोसायनेट और अन्य रसायनों के यूनियन कार्बाइड फैक्ट्री से रिसाव से 3787 लोग एक दिन से हफ्ते के मध्य ही मृत हुए थे। परन्तु ऐसा माना गया है कि मेथाइल आइसोसाइनेट के प्रभाव से चिकित्सकीय लक्षणों के कारण लगभग 8000 लोग इस घटना में मरे थे। 1986 में सरकारी जानकारी के अनुसार कुल 558,000 लोग इस त्रासदी से प्रभावित हुए थे और इसमें बच्चों की संख्या लगभग 200,000 थी। बहुत सारे लोग कभी भी ठीक न होने वाली श्वांस संबंधी बीमारियों से ग्रसित हुए।

अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों जैसे G8, इंटरपोल, यूरोपियन यूनियन, यूनेप (यूनाइटेड नेशन्स इन्वायरमेंट प्रोग्राम), यूनाइटेड नेशन्स इंटररीजनल क्राइम एंड जस्टिस रिसर्च इंस्टीट्यूट द्वारा निम्न पर्यावरणीय अपराधों को वैश्विक रूप से चिन्हित किया है –

1. गैरकानूनी वन्य जीव व्यापार जिसमें विलुप्तप्राय प्रजातियां शामिल हैं।
2. ओजोन पर्त को हानि पहुंचाने वाले पदार्थों का उपयोग।

3. हानिकारक वर्ज्य पदार्थों को गैरकानूनी रूप से ठिकाने लगाना।

4. गैरकानूनी अनियंत्रित मछली पकड़ना।

5. लकड़ी चोरी संबंधी अवैध व्यापार।

उपरोक्त सभी पर्यावरणीय अपराध दंडनीय है और इंटरपोल, इन अपराधों संबंधी अंतर्राष्ट्रीय कानूनों के परिपालन हेतु सुविधा एवं सहायता उपलब्ध कराता है। इंटरपोल द्वारा पर्यावरणीय अपराधों के विरूद्ध अभियान 1992 से आरंभ हुआ।

G 8 से अभिप्राय है, 8 राष्ट्रों का समूह (Group of 8) है। यह विश्व के सर्वाधिक बड़ी आर्थिक शक्ति राष्ट्रों में से 8 राष्ट्रों का एक संगठन है। इन आठ राष्ट्रों में ब्राजील (7वीं बड़ी आर्थिक शक्ति), भारत 9वीं बड़ी आर्थिक शक्ति एवं चीन (दूसरी बड़ी आर्थिक शक्ति) शामिल नहीं है। कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान, एशिया, यूनाइटेड किंगडम, यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका इस समूह के आठ राष्ट्र हैं और वर्ष 2013 के लिए यूनाइटेड किंगडम के प्रधानमंत्री डेविड केमेरून G8 समूह के अध्यक्ष हैं। इन राष्ट्रों के अलावा पांच बड़ी आर्थिक शक्तियां ब्राजील, चीन, भारत, मैक्सिको एवं साउथ अफ्रीका भी मेहमान के रूप में G-8 सम्मेलन में अपनी उपस्थित दर्ज करवा चुके हैं। अतः उन पूर्व सम्मेलनों को G-8 भी कहा जाता है।

यूपोपियन समुदाय *से अभिप्राय है यूरोपीय मूल के 28 सदस्य राष्ट्रों का एक आर्थिक एवं राजनैतिक संगठन।*

पर्यावरणीय संवेदनशीलता

पर्यावरणीय संवेदनशीलता से अभिप्राय है पर्यावरणीय घटकों की समझ के साथ यह भी समझना कि इन घटकों के प्रमाणित होने पर फलतः प्रभावित हम स्वयं ही होंगे।

पर्यावरण को प्रभावित करने वाले मानवीय क्रियाकलाप

क्र.	मानवीय क्रियाकलाप	परिणामस्वरूप उत्पन्न समस्याएं
1.	वृक्षों का काटना	– वायुमंडल में CO_2 की मात्रा में वृद्धि तथा O_2 की कमी। – वायुमंडलीय ताप वृद्धि या ग्रीन हाउस प्रभाव। – मृदा अपरदन एवं मृदा के कटाव में वृद्धि। – स्थान विशेष की खाद्य श्रृंखला प्रभावित। – वायुमंडल में प्रदूषकों की मात्रा में वृद्धि क्योंकि वृक्ष कुछ प्रदूषकों के अच्छे अवशोषक है।
2.	संसाधनों का अतिदोहन	– जलवायु परिवर्तन। – भूमिगत जल स्रोतों में जल की कमी। – अनियंत्रित वर्षा और नदियों में बाढ़ । – कई उपयोगी पादप प्रजातियां और उन पर निर्भर जंतु प्रजातियां विलुप्त। – संसाधनों की मांग और आपूर्ति में असंतुलन। – ऊर्जा संकट तथा वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों की आवश्यता। – जीवाष्म ईंधन की कमी। – संसाधनों के अनियमित दोहन से उनके अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह।
3.	अंधाधुंध औद्योगिक प्रगति	– अपशिष्टों का जल में निष्कासन से जल प्रदूषण। – हानिकारक गैसों का वायुमंडल में निष्कासन से वायु प्रदूषण। – उर्वरकों तथा कीटनाशकों के अनियंत्रित प्रयोग से मृदा प्रदूषण। – रेडियोधर्मी पदार्थों का पर्यावरण में मुक्त होना नाभिकीय प्रदूषण। – क्लोरोफ्लोरो कार्बन के उपयोग से ओजोन क्षय। – जलवायु परिवर्तन। – वायुमंडल में तापवृद्धि या ग्रीन हाउस प्रभाव – ध्वनि प्रदूषण। – अम्लीय वर्षा।
4.	वाहनों का अत्यधिक प्रयोग	– प्रकाश रासायनिक धुंध। – वायुमंडल में SO_2, NO_2, CO_2, CO जैसी हानिकारक गैसों की मात्रा में वृद्धि। – ध्वनि प्रदूषण। – वायुमंडल में ताप में वृद्धि या ग्रीन हाउस प्रभाव।
5.	जनसंख्या में वृद्धि	– क्रियाकलाप क्र. 1,2,3,4 से उत्पन्न सभी समस्याएं। – अधिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए जंगलों का

विनाश।

– उपलब्ध वनस्पतियों के स्थान पर अपनी आवश्यकतानुसार वनस्पतियां उगाना जिससे परितंत्र प्रभावित।
– परितंत्र में बदलाव के कारण जलवायु में परिवर्तन।
– पारिवारिक सामाजिक व नैतिक मूल्यों का ह्रास
– खाद्य पदार्थों की कमी।
– बेरोजगारी, भ्रष्टाचार व अनैतिक आचरण में वृद्धि।

प्रकृति में जलवायु, वर्षा, सूखा, वायुमंडलीय तापमान में कमी या बढ़ोत्तरी सभी पर्यावरणीय घटकों पर ही निर्भर है। पर्यावरणीय घटकों में असंतुलन या प्रकृति से मानव की छेड़छाड़ ही इन विपदाओं का कारण होती है। वस्तु स्थिति यह है कि मानव के प्रत्येक क्रियाकलाप से पर्यावरण प्रभावित होता है और उसके परिणामस्वरूप मानवीय गतिविधियां, उसकी कार्यप्रणाली तथा क्रियाशीलता प्रभावित होती है।

मानव की पर्यावरण पर निर्भरता ने ही उसे अपने जीवन को अधिक सुविधाजनक तथा साधन सम्पन्न बनाने का रास्ता सुझाया। अतः मानव को अपने रहन–सहन के ढंग, जीवन मूल्य तथा तौर तरीके बदलने होंगे जिससे पर्यावरणीय घटकों में असंतुलन को रोका जा सके। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव और पर्यावरण न तो एक दूसरे से स्वतंत्र है और न ही ऐसा होने की कल्पना की जा सकती है। एक के अस्तित्व से दूसरा प्रभावित होता है। अतः दोनों के बीच में प्रतिस्पर्धा न होकर सहयोग का होना ही मानव और पर्यावरण दोनों के हित में है।

कुछ लोग यह सोचते हैं कि बिगड़ते हुए पर्यावरण की समस्या भारत के संदर्भ में उतनी गंभीर नहीं है। यह विशेष रूप से पश्चिमी राष्ट्रों की समस्या है, जहां औद्योगिकीकरण बहुत हो गया है और हमें इस विषय में चिंता करने की जरूरत नहीं है। यह बात सत्य के बहुत निकट नहीं है। यह सच है कि पश्चिमी देशों में प्रदूषण की समस्या अधिक है लेकिन इसके दुष्प्रभाव भारत वर्ष के बड़े शहरों, नदियों, झीलों, तालाबों, वायुमंडल मे प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन जैसे विभिन्न रूपों में दिखाई देने लगे हैं। शायद इनको और विकट स्वरूप लेने में ज्यादा दिन नहीं लगेंगे इसलिए हमको भी इस दिशा में सोचने और कार्य करने की आवश्यकता है। दूसरी बात यह है कि हमें दूसरों के अनुभवों में सीखना चाहिए और गल्तियों को दोहराने की अपेक्षा उनसे सबक लेना चाहिए कि हम वो गल्तियां न करें जिन्हें वे कर चुके हैं।

सन् 1830 में विश्व की जनसंख्या मात्र एक अरब थी जो कि सन् 1930 में दो अरब,1960 में 3 अरब, 1975 में 4 अरब, और सन् 2012 में 7 अरब तक पहुंच चुकी थी। बढ़ती हुई जनसंख्या की गति से यह अनुमान लगता है कि यदि हम समय रहते नहीं समझे तो पर्यावरण मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते करते दम तोड़ देगा और यदि हालात यही रहे तो न रहने की जगह होगी, न खाने को रोटी होगी, न मनोहारी वन होंगे, न ही जंगली जीव होंगे और शायद सृष्टि की इस अनुपम कृति पृथ्वी पर जीवन ही नष्ट हो जाए। भारत विश्व के 10 सर्वाधिक जनसंख्या वाले देशों की सूची में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। भारत की जनसंख्या 2011 की गणना के अनुसार 11210193422 आंकी गई है।

प्राचीन काल में जब तक मानव प्रकृति के अधीन था। तब तक समस्याऐं या तो थी ही नहीं या चिंताजनक नहीं थी। परन्तु पिछले कुछ दशकों में प्रकृति पर विजय पाने की अपूर्व लालसा के परिणाम स्वरूप मानव ने मानव को ही अपने क्रियालापों के द्वारा क्षति पहुंचाई है। कहना अनुचित न होगा कि प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ने में मानव की प्रमुख भूमिका रही है। शायद इसलिए पिछले कुछ वर्षों में कुछ बुद्धिजीवी मानवों ने पर्यावरणीय क्रियाकलापों एवं पर्यावरणीय घटकों की रक्षा में अपूर्व सूझबूझ का परिचय दिया है। परन्तु मानवीय सोच में इस परिवर्तन का कारण क्या है ? जब मानव ने देखा कि प्राकृतिक संसाधन निरंतर कम होते जा रहे है, नित नई बीमारियां उसे अपने आगोश में लेने को बैचेन है और विषैले रसायनों का उपयोग वायुमंडल को प्रभावित कर रहा है तब उसने अपनी सोच को बदला और तब शुरू हुआ स्वस्थ एवं बेहतर पर्यावरण विकसित करने का कार्य। अब मानव ने पर्यावरण के घटकों, उनको नुकसान पहुंचाने वाले कारकों इत्यादि पर चिन्तन एवं कार्य शुरू किया है और इसी मानवीय चिन्तन की परिणति है 'पर्यावरण शिक्षा' या पर्यावरणीय अध्ययन का एक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना क्योंकि ऐसा माना गया कि यही एक तरीका है जिससे हम अपने आने वाली पीढ़ियों को, समाज को, और जनजन को पर्यावरणीय घटकों के प्रति संवेदनशील बना पाएंगे।

आज पर्यावरण विरूद्ध मानवीय क्रियाकलापों को रोकने एवं पर्यावरणीय संचेतना जाग्रत करने के लिए मीडिया का उपयोग भी किया जा रहा है। समाचार पत्र, पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन इत्यादि संचार के माध्यम भी पर्यावरणीय संचेतना जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। सरकारी तथा गैर सरकारी संगठन, समाज

सेवी संस्थाएं भी पर्यावरण संरक्षण में अपना योगदान दे रही है। परन्तु प्रयास पूर्ण सार्थक हुए हैं ऐसा प्रतीत नहीं होता है।

भारतीय संस्कृति और पर्यावरण

हिन्दू धर्म ग्रन्थों में सृष्टि की संकल्पना समत्व पर आधारित मानी गयी। 1500–600 ई. पू. उपनिषदों में कहा गया है, ''इस विश्व में निवास करने वाला ईश्वर हवा, पानी, अग्नि और यहां तक कि पेड़ों एवं औषधियों जड़ी बूटियों में निवास करता है। लोगों को उनके प्रति सम्मान रखना चाहिए।'' चरक संहिता (चौथी–पांचवी शताब्दी ए. डी.) में कहा गया है, ''जब तक यह पृथ्वी प्रकृति (वन्य पौधों और पशुओं) से परिपूर्ण है, मानव जाति फलती–फूलती रहेगी।'' ईशोपनिषद (1500–600 ई.पू.) में कहा गया है ''अपने प्राणियों के साथ यह विश्व परमेश्वर का है। कोई भी प्राणी किसी दूसरे से श्रेष्ठ नहीं है। मानव प्राणी प्रकृति के ऊपर नहीं होने चाहिए। किसी एक प्रजाति को दूसरी प्रजातियों के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने ''जड़, चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि'' कहकर सबका नमन किया। हिन्दुओं में वन देवता, जल देवता, अग्नि देवता, पर्वत देवता, सागर देवता, वर्षा देवता (इन्द्र) की पूजा की परंपरा है। पर्यावरण के संबंध में भारतीय मनीषियों का विश्वजनीन दृष्टिकोण रहा है। अथर्ववेद (3500 ई पू.) में 63 श्लोकों का एक खंड है जिसमें पृथ्वी को माता के रूप में प्रार्थना करते हुए विश्व मंगल की कामना की गयी है। निम्न प्रार्थना वसुधैव कुटुम्बकम् की कामना को सार्थक बनाती है –

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवियोनमस्तु
बभ्रू कृष्ण रोहिणी विश्वरूपां ध्रुवा भूमि पृथिवीमिन्द्र गुप्ताम्
अजीतोऽहतो अक्षतांऽध्वष्ठां पृथिवीमहम्।।

ऐसी ही मंगल कामना गीता के ''लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कुर्तुमर्हसि'' में व्यक्त किया गया है। अन्य धर्मग्रन्थों में भी पर्यावरण संरक्षण की अवधारण निहित है। गुरु ग्रंथ साहिब में निर्देश है कि मनुष्य जिनकी सृष्टि नहीं कर सकता उन्हें बर्बाद करने का उसे कोई अधिकार नहीं है। मानव जाति सृष्टि की विदेशी प्रजाति नहीं है जो इसका शोषण करे। बाईबिल में कहा गया है ''हरित औषधि जैसी सभी वस्तुओं को मैंने तुम्हें प्रदान किया है।'' वृक्षों के महान पर्यावरण रक्षक तत्व को सभी धर्म ग्रंथों में सराहा गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि 'यदि तुम जीवन फल एवं आनंद का सैकड़ों

और हजारों वर्ष तक उपभोग करना चाहते हो तो सुनियोजित ढंग से वृक्षारोपण करो।'' गौतम बुद्ध (487 ई.पू.) ने कहा है कि वृक्ष असीमित दयालुता और उदारता वाला विचित्र पौधा है। यह अपनी वृद्धि के लिए कोई मांग नहीं करता और अपनी जीवन–क्रिया के उत्पादों का उदारतापूर्वक दान करता है। यह सभी प्राणियों को संरक्षण प्रदान करता है और यहां तक कि अपने को बर्बाद करने वाले कुल्हाड़ी वाले (लकड़हारे) को छाया देता है।

भारतीय धर्म ग्रंथों एवं संस्कृति में कतिपय वृक्षों के साथ विशिष्ट देवी–देवताओं का नाम जुड़ा है जो उनके लिए आस्था उत्पन्न कराता है। भारतीय संस्कृति में वृक्षों को पर्यावरण संरक्षण का वाहक माना गया है। वृक्षों की तुलना सन्तान से की गई है। वृक्षों को पुत्र से भी ऊंचा स्थान दिया गया है। मत्स्य पुराण में वृक्षों की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए लेख है कि –

दश–कूप सामावाणी, दशवाणी सामोहदः।
दश हद समः पुत्रो, दश पुत्री समोद्रुमः।।

अर्थात् दस कुओं के बराबर एक बावड़ी है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब है, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है।

हिन्दू देवी/देवताओं एवं अदृश्य शक्तियों के नाम के साथ जुड़े वृक्ष एवं पौधे

वृक्ष/पौधे का नाम	देवी/देवता/अदृश्य शक्ति का नाम
केला	लक्ष्मी, विष्णु, वंश वृद्धि, उपासना
आंवला	लक्ष्मी, कार्तिकेय, विष्णु, आदित्य, अप्सराएं
बेर	इतिकुमार, वंशवृद्धि, उपासना
वट	ब्रह्म, विष्णु, श्री हरि, कुबेर
तुलसी	विष्णु, लक्ष्मी, पूर्वज पूजा
आम्र	लक्ष्मी, गोवर्धन, बुद्ध, गंधर्व
इमली	आत्माएं, भूतप्रेत
बेल	महेश्वर, शिव, आत्माएं, लक्ष्मी, सूर्य
कर्पूर	चन्द्रमा
अशोक	बुद्ध, इन्द्र, विष्णु, गंधर्व, आदित्य, अप्सराएं
कदम्ब	कृष्ण, उर्वरक, धार्मिक उपासना विधि
नीम	शीतला, मानस, वंशवृद्धि, उपासना
पलाश	ब्रह्म, गन्धर्व

शिओरा	वन, दुर्गा, लक्ष्मी
पीपल	विष्णु, कृष्ण, पूर्वज
बांस	कृष्ण, वंशवृद्धि, उपासना, पर्वत पूजा

इसी तरह विभिन्न देवी–देवताओं के वाहन पशु/पक्षी माने गए हैं। अस्तु श्री गणेश का वाहन चूहा, कार्तिकेय का वाहन मोर, इन्द्र का वाहन एरावत (हाथी), दुर्गाजी की सवारी सिंह, शिव का वाहन नंदी, विष्णु का वाहन गरुड़, ब्रह्म का वाहन हंस, लक्ष्मी का वाहन उल्लू, सरस्वती का वाहन हंस आदि। यह भी पशुओं के प्रति आस्था उत्पन्न कराता है।

गंगा को मां तथा गाय को माता का रूप माना गया है। वर्षा पुराण में स्वर्ग जाने हेतु पीपल, नीम आदि वृक्षों के लगाने की बात की गयी है तो मत्स्यपुराण में पृथ्वी की सफाई, पानी देने और वृक्षारोपण की बात की गयी हैं।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति पर्यावरण के प्रति प्रारंभ से ही सजग एवं निष्ठावान रही है यह ''वसुधैव कुटुंबकम् की परिचायक है। हमारे देश में ऋषि –मुनि दूरदृष्ठा थे जिन्होंने पर्यावरण से छेड़छाड़ न करने की प्रारंभ से ही व्यवस्था कर रखी थी। हिन्दू संस्कृति में 33 करोड़ देवता माने जाते हैं। ये 33 करोड़ देवी देवता पेड, पौधे, पशु, पक्षी, नदी, नाले, पर्वत, हवा, पानी, अग्नि, आदि है जिनके समुचित संरक्षण एवं संवर्धन के लिए उन्हें देवी–देवता के रूप में धर्म से जोड़ा गया था और उनकी पूजा की जाती थी । आज भी भारतीय संस्कृति में पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, नदी–नाले, पर्वत, हवा–पानी, अग्नि आदि को पूजा जाता है।''

नदियां तो भारतीय संस्कृति की जननी है जिनके किनारे आज भी विशेष तिथियों पर विशाल मेलों का आयोजन होता है । कहा भी जाता है कि गंगा नदी में नहाने से पाप धुल जाते हैं और नर्मदा नदी के दर्शन मात्र से ही पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रश्न इन कथनों की सत्यता सिद्ध करने का नहीं है बात सिर्फ यह है कि ये कथन इन संसाधनों के स्थान को एक ऊंचाई प्रदान करते हैं।

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण को त्यौहारों से भी जोड़ा गया है। नागपंचमी पर नाग की पूजा, दशहरे पर हाथी–घोड़े की पूजा, वट सावित्री पर वट की पूजा, पर्वतों की पूजा, गोवर्धन पूजा पर, आंवले की पूजा आदि सब उनके प्रति असीम प्रेम व स्नेह जताने का उपक्रम हैं। यहां तक कि हमारे संस्कार भी पर्यावरण से जुड़े हुए हैं। शादी विवाह के अवसर पर गूलर, आग, अग्नि की पूजा इसी का परिचायक है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हमारे पूर्वजों ने वर्तमान मनुष्य की तुलना में पर्यावरण

संरक्षण के प्रति ज्यादा बेहतर कार्य प्रतिपादित किए थे, कम–से–कम उन्होंने पर्यावरण सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए विभिन्न विधाओं का सृजन एवं पालन किया। जिनमें से धर्मिक महत्व के आधार पर वृक्षों एवं जीव–जंतुओं की सुरक्षा एवं संरक्षण को अत्याधिक महत्व दिया गया। इसी प्रकार आज भी हम अपनी धार्मिक मान्यताओं को मानें तो प्रकृति के बिगड़े संतुलन को सुधारने में यह एक महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। आवश्यकता है हमें अपने धार्मिक ग्रंथों एवं उनमें वर्णित वृक्षों एवं जीव जंतुओं के महत्व की जानकारी को प्राथमिकता देने की। अतः प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करके ही पृथ्वी पर सह अस्तित्व की कल्पना की जा सकती है। भारत जो संदेश सदियों पूर्व से देता आ रहा है। आज उसी संदेश को अंगीकार करने का समय है कि पेड़–पौधे, जीव–जन्तु, हवा–जल, इन सबसे छेड़–छाड़ करके आदमी स्वयं सुख शांति से नहीं रह सकता। यदि उसे पृथ्वी पर अपना अस्तित्व कायम रखना है तो इन सब के साथ मित्रतापूर्वक व्यवहार करना होगा और उनके समुचित संरक्षण एवं संवर्धन के लिए उपयुक्त परिस्थितियां निर्मित करनी होंगी। अतः आज आवश्यकता है पर्यावरणीय मुद्दों पर संवेदनशील समाज की जिससे प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण संरक्षण हेतु अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी समझे एवं पर्यावरण हित में कार्य करें।

''किसी ने कहा है कि अपनी धरती को नष्ट होने से बचाईएं क्योंकि ऐसे अच्छे ग्रह की खोज कठिन है।''

अध्याय – 2

पुलिस की पर्यावरणीय मुद्दों पर प्रशिक्षण की योजना

प्रकृति और मानवीय क्रियाकलापों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने के लिए शिक्षा तथा संचार माध्यम आज सभी विकसित और विकासशील देशों में अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर जन–जन में पर्यावरण संचेतना जागृत करने का प्रयास कर रहे हैं। पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान भी यही है कि पर्यावरण के बारे में दृष्टिकोण सैद्धांतिक न होकर व्यावहारिक हो। इसी कारण प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाए रखने तथा पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रमों एवं क्रियाकलापों को गति देने के उद्देश्य से शिक्षा एवं विभिन्न संचार माध्यमों का प्रयोग अनिवार्य है। इन माध्यमों को प्रभावशाली बनाने तथा उनकी गुणवत्ता में सुधार के प्रयास भी एक सतत प्रक्रिया होनी चाहिए।

यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्रशिक्षण ऐसे समुदाय को दिया जाना है जिससे उसे अर्थलाभ या जीवकोपार्जन नहीं होना है। व्यक्ति पुलिस सेवा में आ चुका है और अब उसे प्रशिक्षण को रोचक बनाकर देना है जिससे वह प्रशिक्षण उबाऊ और नीरस न रहे और साथ ही पर्यावरणीय अभिवृत्ति का विकास अवश्य करे अन्यथा उद्देश्य प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

यहां पर प्रशिक्षण का माध्यम ही नहीं प्रशिक्षण देने वाला और उसके द्वारा दिए जा रहे प्रशिक्षण का नियोजन पूर्णतया उद्देश्यपरक एवं तरीका इस प्रकार का होना चाहिए कि प्रशिक्षणार्थियों में सक्रियता बनी रहें। प्रशिक्षण की रूपरेखा सेवा पूर्व प्रशिक्षण और सेवा में चयन उपरांत प्रशिक्षण एवं सेवारत रहते हुए समय–समय पर आयोजित होने वाले रिफ्रेशर पाठ्यक्रमों हेतु भिन्न–भिन्न होनी चाहि । साथ ही स्थानीय समस्याओं या क्षेत्रीय समस्याओं को प्रशिक्षण रूपरेखा में स्थान दिया जाना चाहिए।

प्रशिक्षण में संचार साधनों की उपयोगिता

प्रशिक्षण में आधुनिक संचार साधनों का प्रयोग प्रशिक्षण को और प्रभावशाली बनाने में सक्षम है। यहां यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि कि संचार साधन का प्रयोग किया जाए एवं कैसे उस संचार साधन के उपयोग से प्रस्तुतीकरण को प्रभावी बनाया जाए ?

उदाहरण के लिए यदि कोई व्याख्यान देने वाला पावर प्वाइंट प्रेजेन्टेशन का उपयोग करें एवं क्रमवार आ रही स्लाइड एवं प्रस्तुतीकरण में कोई तालमेल न हो तो प्रस्तुतीकरण संचार साधन के उपयोग के बाद भी नीरस और उबाऊ ही रहेगा। अतः प्रशिक्षणकर्ता का प्रशिक्षण भी जिसे "Training of trainer to make them master trainer" कहा जाता है, प्रशिक्षण कार्यक्रमों की एक अनिवार्य प्रक्रिया होनी चाहिए। इस प्रशिक्षण में पर्यावरण संरक्षण से जुड़े मुद्दों पर संवेदनशील बनाने वाले प्रस्तुतीकरण तैयार करना एवं उसके प्रस्तुतीकरण का तरीका दोनों ही बातों को पूर्ण महत्व दिया जाना चाहिए। संचार साधनों का प्रयोग प्रस्तुतीकरण को प्रभावी बनाता है परन्तु इन संचार माध्यमों में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए –

1. माध्यम का प्रसार व्यापक होना चाहिए।

2. माध्यम का प्रस्तुतीकरण रोचक होना चाहिए।

3. यदि माध्यम लिखित विषय वस्तु हो तो उसकी भाषा सरल, सरस और सुबोध होना चाहिए। लिखित विषयवस्तु सचित्र होने पर अधिक प्रभावकारी होती है। कहा भी जाता है कि एक चित्र हजारों शब्दों से शक्तिशाली/प्रभावकारी होता है।

4. माध्यमों को पर्यावरण चेतना के प्रसार हेतु उपयोग करने के प्रयास में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि पर्यावरणीय समस्या केवल वृक्षारोपण या जल प्रदूषण के निदान से ही दूर नहीं होगी। ये समस्याएं समस्त पर्यावरणीय समस्याओं की अंश मात्र है। पर्यावरण आधार है हमारे जीवन का। अतः इसके व्यापक स्वरूप को ध्यान में रखते हुए सामाजिक, राजनैतिक तथा स्वास्थ्य सभी दृष्टिकोणों का समावेश इन माध्यमों में करना चाहिए।

5. माध्यमों द्वारा दी जा रही जानकारी विभिन्न आयु वर्गों में विभाजन के आधार पर दी जानी चाहिए। अर्थात् जानकारी के प्रस्तुतिकरण की तैयारी के पूर्व लक्ष्य श्रोता/दर्शक को ध्यान में रखना अनिवार्य है।

पर्यावरणीय संकट के समाधान हेतु शिक्षा

शिक्षा पर्यावरण संचेतना प्रदान करती है, सभी प्रकार के जीवधारियों के मध्य संतुलित संबंधों की भूमिका बनाती है और वर्तमान और भावी समस्याओं के निष्पादन की प्रेरणा और प्रशिक्षण देती है। शिक्षा का कोई भी पाठ्यक्रम जब तक पर्यावरण को अपनी विषयवस्तु में शामिल नहीं करता वह अधूरा ही रहेगा। ऐसी शिक्षा न तो प्रकृति के साथ न्याय कर सकेगी और न ही मानव सभ्यता के साथ ताल–मेल बैठा पाएगी। परन्तु पर्यावरण शिक्षा का पाठ्यक्रम में होना मात्र ही इस समस्या का समाधान नहीं है। पाठ्यक्रम प्रशिक्षणार्थी में पर्यावरणीय अभिवृत्ति के विकास में सहायक होना चाहिए। पाठ्यक्रम निर्माण में निम्नलिखित बातों पर गौर करना आवश्यक होगा –

1. शिक्षा किस आयुवर्ग के व्यक्ति को दी जा रही है ?
2. आयु के हिसाब से उस व्यक्ति की समझ का स्तर क्या होगा ?
3. पर्यावरण विषय अलग हो यह आवश्यक नहीं है यदि किसी भी विषय के माध्यम से या उसके साथ में यह शिक्षा दी जा सके कोई विशेष अंतर नहीं पड़ेगा।
4. प्रशिक्षण देने वाले को प्रशिक्षित करना सबसे अधिक महत्वपूर्ण होगा।
5. शिक्षण विधि में या विषय में जिज्ञासा अवश्य हो।
6. क्षेत्र शिक्षण (फील्ड टीचिंग) पर जोर दिया जाना चाहिए।

यदि उपरोक्त बातों पर ध्यान नहीं दिया जाना जाएगा तो पर्यावरणीय शिक्षा भी एक और विषय की सैद्धांतिक शिक्षा के रूप में मात्र परीक्षा में अंक प्राप्त करने के विषय के रूप में किताबों में बंद होकर रह जाएगी।

पर्यावरण शिक्षा अभिवृत्तिमूलक है और अभिवृत्ति के विकास और उसे निरंतर बनाए रखने में प्रायोगिक पक्ष अधिक सफल होता है। शिक्षा चाहे किसी भी स्तर पर दी जाए उद्देश्य एक ही है कि प्रशिक्षण पाने वाला पर्यावरण के प्रति सचेत और संवेदनशील बन सकें।

शिक्षा एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। हम जीवन पर्यन्त अर्थात जीवन से मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखते रहते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि शिक्षा के माध्यम बदलते रहते हैं। हमारी शिक्षा के कुछ माध्यम हमारा घर, परिवार, पड़ोस, शाला, महाविद्यालय, बाजार, दोस्त और हमारा स्वयं का अनुभव है। शिक्षा हमारे विकास और अभिवृद्धि का साधन है तथा यह हमें बदलते परिवेश के अनुरूप स्वयं को ढालने अर्थात् अनुकूलित करने में सहायक है।

पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान में शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती

है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सर्वप्रथम तिबिलसी सम्मेलन में इस बिन्दु पर न सिर्फ विचार किया गया अपितु इस क्षेत्र में शिक्षा के महत्व को समझकर कुछ नीतियों का निर्माण भी किया गया है। इन नीतियों में पाठ्यक्रम निर्धारण के अतिरिक्त जो पहलू सबसे महत्वपूर्ण समझा गया वह था विषय का प्रभावी प्रस्तुतीकरण। इसके लिए विभिन्न प्रकार की शैक्षणिक सहायक सामग्रियों के प्रयोग एवं विकास हेतु सहमति व्यक्त की गई।

पर्यावरणीय संकट के समाधान हेतु संचार माध्यम

पर्यावरण शिक्षा के अंतर्गत संचार माध्यम पर्यावरण संकट के प्रति जन चेतना जागृत करने में अहम भूमिका निभा सकते है। संचार माध्यमों से तात्पर्य ऐसे माध्यमों से है जिनके द्वारा विचारों, तथ्यों मूल्यों तथा आदर्शों को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक कम समय में रोचक/मनोरंजक तरीके से पहुंचाया जाता है। संचार माध्यमों को मुख्य रूप से निम्न तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

1. श्रव्य संचार माध्यम (Audio Media) - रेडियो, टेपरिकार्ड, रिकार्डप्लेयर, लेसर डिस्क इत्यादि।

2. दृश्य संचार माध्यम (Visual Media) - पत्र पत्रिकाएं, कार्टून, मूल चलचित्र, पोस्टर, प्रोजेक्टर,
विज्ञापन इत्यादि।

3. दृश्य श्रव्य माध्यम (Audio Visual Media) - चलचित्र, दूरदर्शन, वीडियो, सिटी केबल इत्यादि।

अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो चुका है कि एक औसत छात्र पढ़कर सिर्फ 10 प्रतिशत बातें याद रखता है। जबकि सुनी हुई बातें वह 20 प्रतिशत तथा देखी हुई 30 प्रतिशत बातें याद रहती हैं जिन्हें निरंतर अभ्यास से 70 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि उपरोक्त माध्यमों में से दृश्य–श्रृव्य माध्यम सबसे अधिक प्रभावी है। संचार के विभिन्न साधनों को निम्नानुसार भी वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. पुस्तक एवं पत्र पत्रिकाएं (Book Media) - इस दृश्य संचार माध्यम के अंतर्गत पूर्वमुद्रित पर्यावरणीय समस्या पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, बुलेटिन इत्यादि में लेख, निबंध, सचित्र साहित्य, कार्टून इत्यादि के रूप में रोचक तरीके से प्रस्तुत की जाती है। इस माध्यम में भाषा और विषय के प्रस्तुतिकरण को ध्यान में रखना

अनिवार्य होता है अन्यथा विषयवस्तु बोझिल हो जाती है परन्तु भारतवर्ष में साक्षरता के अल्प प्रतिशत को देखते हुए यह माध्यम प्रभावशाली प्रतीत नहीं होता। लगभग सभी दैनिक समाचार पत्रों में समय–समय पर पर्यावरणीय लेखों/कविताओं/दृष्टांतों/कार्टूनों को स्थान दिया जाता है। इन समाचार पत्रों में समय–समय पर अतिरिक्त पर्यावरणीय घटकों/क्रियाकलापों से संबंधित काफी सामग्री मासिक विज्ञान पत्रिकाओं अविष्कार, विज्ञान प्रगति, जूनियर साइंस डाइजेस्ट (सभी हिन्दी में) एवं Science Reporter, Science, Science Education, Junior Science Refresher CEE-NFS, ECO news आदि में (सभी अंग्रेजी में) एवं समसामायिक विषय के रूप में लगभग सभी पत्रिकाओं में समय–समय पर प्रकाशित की जाती है।

उपरोक्त पत्रिकाओं के अतिरिक्त भारत सरकार सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं, योजना एवं कुरूक्षेत्र (हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रकाशित) में भी समय–समय पर पर्यावरणीय संचेतना के व्यापक प्रसार हेतु लेखों को स्थान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रतियोगी परीक्षाओं से संबंधित सभी पुस्तकों उदाहरणार्थ प्रतियोगिता दर्पण, प्रतियोगिता प्रवेश, प्रतियोगिता निर्देशिका, काम्पटीशन रिफ्रेशर इत्यादि भी समय–समय पर पर्यावरणीय घटनाक्रम से जुड़े लेखों को स्थन देते रहते हैं।

2. यांत्रिक माध्यम (Mechanical Media) – ये साधन श्रव्य या दृश्य या दृश्य श्रव्य तीनों प्रकार के हो सकते हैं। उदाहरण आमतौर पर उपलब्ध साधन रेडियो, टेप, कैमरा, वीडियो, टेलीविजन, स्लाइड, प्रोजेक्टर इत्यादि। इस प्रकार के संचार माध्यमों की व्यापक उपलब्धता को देखते हुए ये साधन अत्यंत प्रभावशाली प्रतीत होते हैं। पर्यावरण के घटकों संबंधी ज्ञान व मानवीय क्रियाकलापों के दुष्परिणाम को रूचिकर तरीके से इन संचार माध्यमों पर लघु नाटिकाओं, डाक्युमेंटरी, गीतों तथा सरल प्रयोगों के माध्यम से घर–घर तक पहुंचाया जा सकता है। जी.टी.वी. द्वारा पूर्व में प्रसारित किया गया धारावाहिक 'हम जमीन' इस दिशा में एक सार्थक पहल रही है। इसके अतिरिक्त डिस्कवरी एवं नेशनल ज्योग्राफिक चैनल पर वन्य जीवों, पेड़ पौधों इत्यादि के जीवन चक्र, रहन–सहन, व्यवहार इत्यादि पर कार्यक्रम दिखाए जाते है। विभिन्न चैनल समय–समय पर इस प्रकार के कार्यक्रमों का प्रसारण करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय दूरदर्शन केन्द्र भी क्षेत्रीय भाषा में कार्यक्रमों का प्रसारण करते रहते है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय दूरदर्शन केन्द्र भी क्षेत्रीय भाषा में कार्यक्रमों का निर्माण कर पर्यावरणीय संचेतना के विकास हेतु प्रयासरत है। कमी है तो सिर्फ स्थानीय स्तर

पर कार्यरत स्वयंसेवी संस्थाओं की इस कार्यक्रम में सक्रिय भागीदारी और उपलब्ध जानकार/विषय विशेषज्ञों को एक सूत्र में बांधने की जिससे न सिर्फ इस प्रकार के कार्यक्रमों को रूचिकर अपितु और ज्ञानवर्धन एवं पर्यावरणीय संचेतना जागृत करने वाला बनाया जा सके।

3. संस्थागत एवं संगठनात्मक माध्यम (Institutional & Organizational Media) – इन माध्यमों को सरकारी और स्वयंसेवी संस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। यद्यपि दोनों के उद्देश्य तो एक ही है परन्तु कार्य प्रणाली और संसाधनों की उपलब्धता में अंतर है। बढ़ती हुई पर्यावरणीय समस्याएं और पर्यावरणीय संचेतना का अभाव सरकारी स्तर पर गठित ''पर्यावरण प्रकोष्ठ'' और ''पर्यावरण शिक्षण केन्द्रों'' के औचित्य पर प्रश्नचिन्ह अवश्य लगाता है। स्वयंसेवी संस्थाओं का गठन और उनके द्वारा पर्यावरणीय संचेतना जागृत करने हेतु परियोजनाओं का संचालन इस क्षेत्र में उत्साहपूर्वक है यद्यपि स्वयंसेवी संस्थाओं के पास आर्थिक संसाधनों की कमी है परन्तु कार्य करने की चाह कार्य को अवश्य संपन्न करती है। अपवाद हो सकते हैं परन्तु आमतौर पर स्वयंसेवी संस्थाएं इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक और सार्थक कार्य करने में सफल रही है। विभिन्न शासकीय योजनाओं में गैर सरकारी संस्थाओं (NGO) की बढ़ती भागीदारी इसका प्रमाण है।

4. सांस्कृतिक एवं मनोरंजनात्मक साधन (Cultural & Recreational Media) - मानवीय सभ्यता और प्रकृति से साक्षात्कार तथा सांस्कृति मूल्यों को जीवित रखने के लिए ये माध्यम क्रियाशील है। उदाहरणार्थ चंडीगढ़ में निर्मित पत्थरों का बगीचा (Rock Garden), आगरा में ताजमहल की ही तर्ज पर बना राधाकृष्ण मंदिर, विभिन्न राष्ट्रीय उद्यान व सेन्चुरी, सांची के स्तूप एलीफेंटा की गुफाएं, जबलपुर में रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर के समीप भेड़ाघाट में स्थित विभिन्न रंगों की संगमरमर की चट्टानें इत्यादि। शासन द्वारा भी युवा महोत्सवों, नृत्योत्सवों, संगीत–उत्सवों, नाट्यशालाओं, प्रदर्शनी इत्यादि का आयोजन सांस्कृतिक एवं मनोरंजक साधनों के अंतर्गत आता है। पर्यावरणीय संचेतना के विकास में चलचित्र भी एक अहम भूमिका निभाते हैं। आमतौर पर हमारी जीवन शैली/संस्कृति पर चलचित्र एक विशिष्ट प्रभाव छोड़ता प्रतीत होता है। युवावर्ग इन चलचित्र के नायक/नायिकाओं को पर्यावरणीय घटनाक्रम से प्रभावित होता दिखाया जाए या फिर उन घटनाक्रमों के प्रति उन्हें संवेदनशील दिखाया जाए तो यह प्रयास निश्चित रूप में सार्थक साबित होगा। काफी समय पूर्व प्रदर्शित एक फिल्म हिन्दुस्तानी में नायक एवं नायिका के वन्य जीवों के प्रति

प्रेम का बड़ा ही सजीव एवं भावात्मक प्रस्तुतीकरण किया गया है। निश्चय ही इस तरह के प्रयासों को सराहा जाना चाहिए।

शिक्षण विधि = पद्धतियां व उसके प्रकार

शिक्षण प्रशिक्षणार्थियों की रूचियों और योग्यताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है। शिक्षा प्राप्त करने वाले प्रशिक्षणार्थियों में व्यक्तिगत विभिन्नताएं होती हैं। इन विभिन्नताओं के ज्ञान के साथ ही शिक्षण पद्धतियों का विकास व परिमार्जन होता है।

यदि शिक्षण पर्यावरण से संबंधित हो तो प्रशिक्षणार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नता के साथ पर्यावरणीय परिस्थितियों में विभिन्नताएं पर्यावरणीय समस्याएं आर्थिक संसाधन एवं शिक्षा तंत्र को भी ध्यान में रखना अनिवार्य हो जाता है।

विभिन्न शिक्षण पद्धतियों के बारे में जानने के पूर्व यहां यह जान लेना आवश्यक होगा कि पद्धति (Method) क्या है ? पद्धति उन सभी क्रियाओं का सम्मिलित रूप है जिसके द्वारा पाठ्यवस्तु (Content) को एक निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु नियोजित एवं संगठित रूप (Planned & Organized way) में प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्येक पद्धति में विभिन्न युक्तियों जैसे प्रश्न करना (Question), वर्णन करना (Narration), व्याख्या करना (Description) प्रदर्शन (Demonstration) का प्रयोग किया जाता है। किसी भी एक पद्धति में कई युक्तियों का प्रयोग भी किया जा सकता है क्योंकि पद्धति का उद्देश्य यह है कि कही गई बात समझने वाले तक वांछित रूप में स्पष्टतया पहुंच जाए।

किसी एक युक्ति का विभिन्न प्रकार से प्रयोग, प्रविधि (Technique) कहलाता है। उदाहरण के लिए प्रश्न करना एक युक्ति है। जिसका प्रयोग किसी भी पद्धति में किया जा सकता है। परन्तु प्रश्न करते समय शिक्षक के हाव भाव प्रश्नों की संख्या, उसकी भाषा, प्रश्न पूछने की गति, प्रश्नों का वितरण इत्यादि प्रविधि (Technique) है । कोई दो शिक्षक एक ही युक्ति का प्रयोग कर सकता है। परन्तु दोनों की प्रविधि ा एक दूसरे से भिन्न होती है। अर्थात किसी युक्ति क विशेष प्रकार से प्रयोग प्रविधि ा है।

पर्यावरण शिक्षा में – शिक्षा पद्धतियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है

1. उद्वरण पद्धति (Authoritative Method) - इस पद्धति में शिक्षक या कोई अन्य साधन जैसे पाठ्यक्रम, आलेख इत्यादि की भूमिका सक्रिय होती है। यहां

पर प्रशिक्षणार्थी को निष्क्रिय रहते हुए ज्ञान को प्राप्त करने वाला समझा जाता है। उदाहरण पाठ्यपुस्तक विधि (Text Book Method), व्याख्यान विधि (Lecture Method) इत्यादि। यह विधि सेवा पश्चात प्रशिक्षण के लिए मूलरूप में प्रभावी नहीं है।

2. विकासात्मक पद्धति (Developmental Method) - इस पद्धति में प्रशिक्षणार्थी एवं शिक्षक दोनों सक्रिय भूमिका निभाते हैं तथा पाठ का विकास या शिक्षण दोनों के सहयोग से सम्पन्न होता है। इस विधि में प्रशिक्षणार्थी एवं शिक्षक दोनों ही सक्रिय भूमिका में होते हैं। सेवारत प्रशिक्षणार्थियों के प्रशिक्षण में यह पद्धति अधिक प्रभावशाली है। इस पद्धति को उद्वरण पद्धति का परिमार्जन या उन्नयन भी माना जा सकता है। इस विधि में व्याख्यान विधि को यदि तर्क, विचार विमर्श एवं दृश्य–श्रव्य माध्यमों के प्रयोग के साथ समायोजित कर दिया जाए तो प्रभाव को कई गुना बढ़ाया जा सकता है। अध्यापन की सर्वाधिक प्रचलित व्याख्यान विधि एवं उसके गुण दोष निम्न है–

व्याख्यान विधि (Lecture Method) - पर्यावरण शिक्षा के किसी पहलू की विषय वस्तु स्पष्ट करने के लिए व्याख्यान विधि उपयोगी है। व्याख्यान देने वाला सम्पूर्ण विषय वस्तु को पूर्व नियोजित सुसम्बद्ध व क्रमबद्ध तरीके से रूचिपूर्ण बनाकर श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत करता है। जिससे श्रोता विषय वस्तु को पूर्ण रूप से समझने का लाभ उठाते हैं। व्याख्यान विधि से पर्यावरण शिक्षा के शिक्षण का उद्देश्य विषय वस्तु को मूल रूप में स्पष्टतया विद्यार्थी तक पहुंचाना होता हैं।

व्याख्यान विधि के गुण

1. इस विधि द्वारा पर्यावरण शिक्षा के शिक्षण में विद्यार्थी विषय वस्तु को कम समय में ग्रहण कर सकते हैं।

2. व्याख्यान देने वाला विभिन्न स्रोतों से एकत्रित तथ्यों को व्यवस्थित रूप से संयोजित कर विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करता है, जिससे विद्यार्थियों को तथ्य समझने और विषयवस्तु की प्रामाणिकता समझने में सहायता मिलती है।

3. विषय वस्तु के विभिन्न सम्प्रत्ययों (Concepts) को स्पष्ट कर प्रस्तुत करने में व्याख्यान देने वाले की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जिससे विद्यार्थियों को कम मेहनत में अधिक विषय सामग्री के अध्ययन का अवसर प्राप्त होता है।

व्याख्यान विधि के दोष :

1. इस विधि का प्रमुख दोष यह है कि विद्यार्थी निष्क्रिय रहकर श्रोता बने रहते है। जिससे शिक्षण अरूचिपूर्ण व निर्जीव हो जाता है।

2. शिक्षक की भूमिका अधिक होने से विद्यार्थियों से खोजवृत्ति व क्रियाशीलता का विकास अवरूद्ध होता है। जो वास्तविक ज्ञान प्राप्ति में अवरोध उत्पन्न करता है।

3. यह विधि अत्यंत जागरूक विद्यार्थी के लिए तो लाभप्रद है परन्तु ज्यादातर विद्यार्थी इससे लाभांवित नही होते हैं।

4. व्याख्यान देने वाला विभिन्न श्रोतों से एकत्रित तथ्यों को व्यवस्थित रूप से संयोजित कर विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करता है, जिससे विद्यार्थियों को तथ्य समझने और विषय वस्तु की प्रमाणिकता समझने में सहायता मिलती है।

5. विषयवस्तु के विभिन्न सम्प्रत्ययों को स्पष्ट कर प्रस्तुत करने में व्याख्यान देने वाले की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिससे विद्यार्थियों को कम मेहनत में अधिक विषय सामग्री के अध्ययन का अवसर प्राप्त होता है।

अब यदि व्याख्यान विधि को थोड़ा विचार विमर्श एवं दृश्य श्रृव्य साधनों के प्रयोग से सजीव बना दिया जाए तो इस विधि की उपयोगिता को कई गुना बढ़ाया जा सकता है।

क्रियान्वयन हेतु शाट टर्म एवं लांग टर्म गोल

शार्ट टर्म गोल – शार्ट टर्म गोल से अभिप्राय है वह लक्ष्य जो आप आज इस हफ्ते या इस महीने प्राप्त करना चाहते हैं। अभिप्राय यह कि ये वे लक्ष्य हैं जिनकी आप त्वरित प्राप्ति करना चाहते है। उदाहरण के लिए प्रशिक्षण देने वाले के रूप में शार्ट टर्म लक्ष्य हो सकता है प्रशिक्षणार्थियों को पर्यावरण प्रदूषण के कारकों के बारे में अवगत कराना। जिसे प्रशिक्षण देने वाला 2 या 3 व्याख्यान का लक्ष्य लेकर पूर्ण कर सकता है।

लांग टर्म गोल – लांग टर्म गोल से अभिप्राय है वह लक्ष्य जो आप एक लंबे समय के अंतराल में भविष्य में प्राप्त करना चाहते हैं। यह लक्ष्य कुछ महीनों का भी हो सकता है और एक वर्ष या अधिक का भी हो सकता है परन्तु इस लक्ष्य की प्राप्ति तभी होगी जब इस लक्ष्य के लिए कार्य में अनुरूप समय दिया जाए और उसका उचित नियोजन किया जाए। उदाहरण के लिए प्रशिक्षण देने वाले के रूप में लांग टर्म लक्ष्य हो सकता है। वे प्रशिक्षणार्थियों में ऐसी अभिवृत्ति का विकास करें कि वे पर्यावरण के

बारे में सकारात्मक सोच रखें और पर्यावरण संरक्षण के लिए व्यक्तिगत स्तर पर प्रयास कर सकें।

रिफ्रेशर कोर्स – रिफ्रेशर कोर्स से अभिप्राय है पुरानी पढ़ी और समझी गई बातों को रिफ्रेश करना या तरोताजा करना। रिफ्रेशर कोर्स संचालित किया जाना एक अनिवार्यता है क्योंकि न केवल इससे पुरानी बताई गई बातों को तरोताजा किया जाना संभव है वरन विषय की नवीन जानकारियों से भी अद्यतन किया जाना संभव है। सेवारत कर्मियों के लिए विशेष रूप से पुलिस के संदर्भ में यह बेहद उपयोगी हो जाता है क्योंकि पुलिस अधिकारियों एवं कर्मियों की संख्या आवश्यकता को देखते हुए काफी कम है, तो स्वाभाविक है कि उन पर कार्य की अधिकता का बोझ भी है ऐसे में स्वयं को अद्यतन रखना प्रायः संभव नहीं हो पाता अतः रिफ्रेशर कोर्स विषय को अद्यतन करने एवं संवेदनशील बनाने में अहम भूमिका का निर्वाहन करते हैं।

अध्याय – 3
पर्यावरण - एक परिचय

सृष्टि में मानव के प्रादुर्भाव के साथ ही मानव और प्रकृति के मध्य एक अदृश्य और अटूट संबंध स्थापित हो गया था। आदिकाल में मनुष्य पूर्णतया प्रकृति पर ही निर्भर था। उसकी प्रारंभिक आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तुओं से ही होती थी। अतः प्रकृति के प्रति उसके मन में आस्था उत्पन्न हुई और मनुष्य उसका उपासक बन गया। वृक्षों को देव के रूप में तथा नदियों को देवी के रूप में पूजा जाता था। मंगल कार्यों में लोग वृक्ष की पूजा करते थे। आज भी बांस, आम केला आदि का प्रयोग मंगल कार्यों में किया जाता है। संभवतः प्रकृति के दुष्प्रकोप की भयावह कल्पना ने ही आदि मानव को प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करने हेतु बाध्य कर रखा था। परन्तु आज अनियोजित मानवीय गतिविधियों का दुष्परिणाम है प्राकृतिक असंतुलन और पर्यावरणीय प्रदूषण जिसने आज मानव के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। आज जहां एक तरफ प्राकृतिक स्त्रोतों का समाज के हित और विकास के नाम पर अंधाधुंध दोहन जारी है तथा जल संरक्षण और ऊर्जा प्राप्ति हेतु बड़े–बड़े बांध बनाए जा रहे है। वाहनों की बढ़ती संख्या और कारखाने वायु प्रदूषित कर रहे हैं। वहीं पर्यावरणविद् इनके दुष्परिणामों को देश व समाज के लिए हानिकारक सिद्ध कर रहे हैं। उत्तर भारतीय आध्यात्मिक दर्शन ने वायु, जल, अग्नि, आकाश, पृथ्वी को मूल तत्व मानकर सृष्टि के निर्माण की कल्पना की। उन्हें देवता की उपमा शायद इसलिए दी गई कि इनका संरक्षण हम करते रहें ताकि उनकी उपयोगता बनी रहे। पर आज हमारे इन पांचों तत्वों में इतना प्रदूषण उत्पन्न हो चुका है कि हमारे कल अर्थात् भविष्य पर ही प्रश्न चिन्ह लग गया है एक यूनानी विचारक का कथन है कि, प्रकृति मानव को भोजन, आवास और रेशा उपलब्ध कराकर उसके जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं (रोटी, कपड़ा और मकान) की पूर्ति करती है। अतः प्रकृति पूज्यनीय है और स्वयं को

दीर्घायु बनाने के लिए प्रकृति की आराधना कर उसे दीर्घायु बनाना ही श्रेयस्कर है। प्रसिद्ध दार्शनिक एवं शिक्षाविद् रूसों ने कहा था कि प्रकृति की ओर लौटो। अर्थात शिक्षा प्रकृति से संबंद्ध होनी चाहिए। इस समस्या का एक मात्र समाधान जो दिखाई दे रहा है वह है पाठ्यक्रय में पर्यावरण शिक्षा का समावेश। कहा भी गया है कि प्रकृति की सच्ची तथा सार्थक मित्रता ही पर्यावरण शिक्षा है। आइए यह जाने कि पर्यावरण क्या है?

पर्यावरण – पर्यावरण (परि बाहर या चारों ओर आवरण–घेरा) शब्द का शाब्दिक अर्थ है ''वह आवरण जो हमें चारों ओर से घेरे हुए हैं या आवृत्त किए हुए है।'' पर्यावरण से तात्पर्य हमारे चारों ओर के उस वातावरण या परिवेश से है जिससे हम घिरे हुए हैं। इस प्रकार प्रकृति में हमारे चारों ओर पाए जाने वाले समस्त जीव जैसे पेड़, पौधे, जंतु तथा अजैविक तत्व जैसे वायु, जल एवं मृदा इत्यादि सभी मिलकर हमारे पर्यावरण की रचना करते है। दूसरे शब्दों में पर्यावरण वह सब कुछ है जो प्राणी को चारों ओर से घेरे हुए है और उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है। यह उन सभी बाहरी दशाओं और प्रभावों का योग है जो प्राणी के जीवन और विकास पर प्रभाव डालते हैं। यदि हम मानव जीवन का ही उदाहरण लें तो हम इसे बहुत सी दशाओं और परिस्थितियों से घिरा पाते हैं। इनमें से कुछ दशाएं जैसे विभिन्न प्रकार के जीव–जंतु, वायु, पानी, मौसम, सामाजिक ढांचा, सामाजिक संस्थाएं, मान्यताऐं, धर्म, नैतिकता, भाषा, आदर्श इत्यादि निरंतर मानवीय जीवन को प्रभावित करते रहते हैं। उपरोक्त सभी दशाओं की सम्पूर्णता ही पर्यावरण है। प्रकृति में उपस्थित उपरोक्त समस्त जीव तथा अजैविक तत्व परस्पर संबंधित है और एक दूसरे को प्रभावित कर एक निश्चित सामंजस्य बनाए रखते हैं। भारतीय चिंतन में भी कहा गया है – ''क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अधम शरीरा'' जिसका तात्पर्य है कि हमारा यह शरीर धरती, जल, अग्नि, आकाश और वायु से मिलकर बना है। यह चिंतन आज वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी सही माना गया है और एक अच्छे पर्यावरण का अर्थ है इन सभी घटकों के मध्य समुचित संतुलन।

गीता में उल्लेखित एक सूत्र पर्यावरण के विभिन्न घटकों का विवरण प्रदत्त करता है।

''भूमि रापो, जलो, वायुः, स्वं, मनोबुद्धिरेव च। अहंकारं इतीयं में भिन्नाः प्रकृतिरष्टधा।।''

अर्थात् पर्यावरण के चार स्थूल घटक भूमि, अग्नि, जल तथा वायु हैं। सूक्ष्म

घटकों में मन बुद्धि अहंकार आते हैं। वर्तमान में सूक्ष्म घटकों को स्वीकार नहीं किया जाता है। वस्तुतः हम अपने चारों ओर जो कुछ देखते हैं और जिससे प्रभावित होते हैं वह पर्यावरण है इसलिए ''पर्यावरण जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त बाह्य परिस्थितियों एवं प्रभावों का योग है।''

पर्यावरण का वर्गीकरण
- भौतिक (जलश्रोत, मृदा)
- जैविक (जीव, जन्तु, पौधे)
- सामाजिक (परिवार, समुदाय)

मानव ने अपनी सुविधा, विकास या मनोरंजन के लिए पर्यावरण से जाने अनजाने छेड़छाड़ की है जिसके परिणामस्वरूप न सिर्फ जैविक व्यवस्था अस्त–व्यस्त हुई बल्कि अजैविक घटकों में भी संगठनात्मक तथा गुणात्मक परिवर्तन हुए। यथा मानव ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जंगलों को काटा, जंगली जानवरों को पालतू बनाया, ऊर्जा प्राप्ति के लिए नदियों की दिशा परिवर्तित की उन पर बांध बनाए, घरेलू एवं औद्योगिक इकाईयों से निकले अपशिष्टों के द्वारा जल स्त्रोतों एवं वायुमंडल को प्रदूषित किया, रासायनिक खादों, उर्वरकों तथा अनेक हानिकारक रसायनों का बिना दूरगामी परिणामों को विचार अत्यधिक उपयोग कर पर्यावरण को क्षति पहुँचायी। उक्त सभी विकासोन्मुख कार्यों के साथ–साथ मानव ने ''मानव निर्मित परितंत्र'' का निर्माण कर प्रकृति पर विजय पाने की लालसा से भी कार्य किया। जिनके सम्मिलित परिणाम पर्यावरणीय प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों में कमी, परिवर्तित भौगोलिक स्वरूप तथा ऊर्जा संकट के रूप में हमारे सामने है जिनका सामना करने में आज हम स्वयं को असहाय पा रहे हैं। आइए अब पर्यावरण के विस्तृत स्वरूप को जाने।

पर्यावरण : विस्तारात्मक या व्यापक अर्थ (Environment : in Broad Sense)

पर्यावरण के शाब्दिक अर्थ से स्पष्ट है कि पर्यावरण का क्षेत्र असीमित है परन्तु पर्यावरण के विस्तारात्मक विश्लेषण द्वारा उसका सीमाकंन कुछ हद तक संभव है।

अ. भौगोलिक/प्राकत्रतिक दृष्टि में पर्यावरण :

स्थल मंडल
- सामान्य क्षेत्र जैसे मैदान, पर्वत, पठार आदि।
- सदाबहार क्षेत्र जैसे जंगल, घास के मैदान आदि।
- शुष्क क्षेत्र जैसे मरूभूमि, रेगिस्तान इत्यादि।

जल मंडल
- भूमिगत जल जैसे कुंओं, हैंडपंप का जल।
- लवणीय जल जैसे समुद्री जल।
- अलवणीय भूमि सतही जल
  - स्थित जल जैसे तालाब।
  - बहता जल जैसे नदी झरना।

वायुमंडल
- गैसें जैस N_2, O_2, CO_2 इत्यादि।
- जलवाष्प।
- धूल के कण।

ब. जैविक दृष्टि से पर्यावरण

जैविक–
- स्वपोषी या उत्पादन, जैसे पौधे।
- परपोषी या उपभोक्ता जैसे मानव एवं अन्य जंतु।
- अपघटक जैसे विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीव।

अजैविक
- वातावरणीय कारण
  - प्रकाश
  - ताप
  - वायु
  - नमी
  - आद्रता
- पोषण संबंधी कारक
  - पोषक तत्व
- भौतिक सतही कारक
  - अम्लीयता/क्षारीयता
  - नमी
  - बाह्य रूप
  - ढलाव
  - ऊंचाई

स. सांस्कृतिक दृष्टि से पर्यावरण–

- धर्म
- नैतिकता
- भाषा
- आदर्श

- प्रथाएं व परंपराएं
- जनरीतियां
- लोकाचार
- अविष्कार

द. सामाजिक दृष्टि से पर्यावरण–

- आवास तथा निवास स्थान
- आवास में रहने वाले लोग अर्थात निवासी।
- निवासियों (जीवों) का कार्यव्यवहार तथा उनका परस्पर समन्वय
- सामाजिक मान्यताएं।

पर्यावरण को भौगोलिक, जैविक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक दृष्टिकोणों के आधार पर सीमांकित किया जा सकता है।

पर्यावरण से संरचनात्मक घटक

आमतौर पर वायुमंडल, जलमंडल, भू मंडल, और जैव मंडल को पर्यावरण के संरचनात्मक घटकों के रूप में जाना जाता है।

वायुमंडल (Atmosphere)

पृथ्वी के चारों ओर पाया जाने वाला सघन गैसों का आवरण वायुमंडल (Atmosphere) कहलाता है। यह पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति द्वारा पृथ्वी के साथ जुड़ा रहता है। यह पृथ्वी को कई सौ किलोमीटर की ऊंचाई तक घेरे हुए हैं। पृथ्वी के धरातल के निकट वायु सघन होती है ज्यों–ज्यों ऊपर जाते हैं, यह बिरल होती जाती है। इसलिए वायुमंडल की कुल वायु राशि का 50 प्रतिशत भाग पृथ्वी के धरातल के पांच किलोमीटर के भीतर और 97 प्रतिशत 29 कि.मी. के अंदर पाया जाता है।

वायुमंडल में गैसों का साद्रण

गैस (Gas)	आयतन (Volume) ¼ppmv-पार्ट पर मिलियन)
Nitrogen (N2)	780,840 ppmv (78.084%)
Oxygen (O2)	209,460 ppmv (20.946%)
Argon (Ar)	9,340 ppmv (0.9340%)
Carbon dioxide (CO2)	397 ppmv (0.0397%)
Neon (Ne)	18.18 ppmv (0.001818%)
Helium (He)	5.24 ppmv (0.000524%)
Methane (CH4)	1.79 ppmv (0.000179%)
Krypton (Kr)	1.14 ppmv (0.000114%)
Hydrogen (H2)	0.55 ppmv (0.000055%)
Nitrous oxide (N2O)	0.325 ppmv (0.0000325%)
Carbon monoxide (CO)	0.1 ppmv (0.00001%)
Xenon (Xe)	0.09 ppmv (9×10-6%) (0.000009%)
Ozone (O3)	0.0 to 0.07 ppmv (0 to 7×10-6%)
Nitrogen dioxide (NO2)	0.02 ppmv (2×10-6%) (0.000002%)
Iodine (I2)	0.01 ppmv (1×10-6%) (0.000001%)
Ammonia (NH3)	trace

वायुमंडल अनेक गैसों का यांत्रिक सम्मिश्रण हैं वायु में भिन्न–भिन्न गैसें एक निश्चित अनुपात में रहती है। वायुमंडल में 78.03 प्रतिशत नाइट्रोजन, 20.99 प्रतिशत आक्सीजन तथा शेष 1 प्रतिशत में अन्य गैसे जैसे – आर्गन, कार्बन डाइआक्साइड, हाइड्रोजन, ओजोन आदि हैं । इस एक प्रतिशत में से आर्गन का भाग सबसे अधिक है। सामान्यतः भारी गैसें वायुमंडल के निचले स्तरों में और हल्की गैसें ऊपरी स्तरों में मिलती है जैसे कार्बन डाइआक्साइड गैस वायुमंडल में 20 कि.मी. की ऊंचाई तक, आक्सीजन और नाइट्रोजन 100 कि.मी. की ऊंचाई तक तथा हाइड्रोजन 125 कि.मी. की ऊंचाई तक मिलती है इसके पश्चात बहुत अधिक ऊंचाई में हल्की गैसें, नियोन, हीलियम, क्रिप्टोन, जेनोन तथा ओजोन पायी जाती है। इस प्रकार भारी गैसों की मात्रा विभिन्न ऊंचाईयों पर क्रमशः कम और हल्की गैसों की मात्रा बढ़ती जाती है। वायुमंडल के निचले भाग में धूल कण और जलवाष्प भी होते हैं इन्हीं के कारण वर्षा और भी होती है ऊंचाई के साथ–साथ वायुमंडल के तापमान और दाब में परिवर्तन के आधार पर इसे चार भागों में बांटा जा सकता है –

1. क्षोभमंडल (Troposphere) – यह वायुमंडल की सबसे निचली परत है। क्षोभमंडल वायुमंडल की सबसे सघन परत है इसमें जलवाष्प और धूल कण भी अधिकता से मिलते हैं। इस परत में वायु का तापमान समान रूप से समुद्र तल से प्रति 165 मीटर ऊंचाई पर 1^0 सेन्टीग्रेट की दर से कम होता है। क्षोभमंडल की ऊपरी सीमा को क्षोभ सीमा कहते हैं।

2. समताप मंडल (Stratosphere) - वायुमंडल की दूसरी परत समताप मंडल है। इस मंडल के निचले भाग में तापमान स्थिर रहता है। इसके बाद तापमान ऊंचाई के साथ तेजी से बढ़ता है। तापमान में इस वृद्धि का कारण इस मंडल में ओजोन

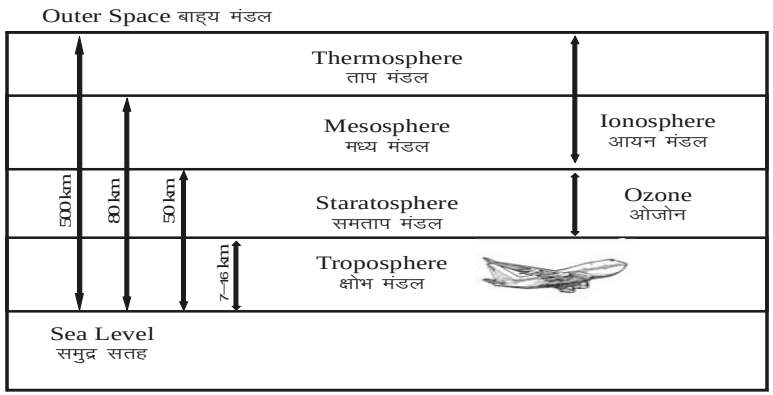

वायुमंडल के विभिन्न स्तर

गैस का पाया जाना है। ओजोन सूर्य से विकिरित हानिकारक पराबैगनी किरणों को अवशोषित कर लेती है। समताप मंडल में ऋतु संबंधी परिवर्तन न होने के कारण यह मंडल हवाई उड़ानों के लिए उत्तम है। इस भाग में जलवाष्प एवं अन्य पदार्थ लगभग नगण्य होते हैं।

3. मध्य मंडल (Mesosphere) – मध्यमंडल में ऊंचाई के साथ–साथ तापमान घटता जाता है। यह वायुमंडल का सर्वाधिक ठंडा भाग है। इस भाग में हवा अत्यंत तेज होती है, अतः तापमान स्थिर नहीं होता है।

4. ताप मंडल (Thermosphere) – मध्यमंडल के ऊपर ताप मंडल का विस्तार है। इसमें ऊंचाई के साथ–साथ तापमान बढ़ने लगता है। इस मंडल का महत्व रेडियो संवाद दृष्टि से विशेष रूप से है क्योंकि रेडियो की विद्युत संचालित तरंगों को पृथ्वी पर यही मंडल परावर्तित करता है।

अतः स्पष्ट है कि वायुमंडल पृथ्वी पर जीवन की रक्षा बाह्य–जगत से आ रही कॉस्मिक किरणों तथा सूर्य से आने वाली विद्युत चुंबकीय विकिरणों एवं ऊतकों को हानि पहुंचाने वाले 300 नैनोमीटर से कम के पराबैगनी विकिरण का अवशोषण भी करता है। पृथ्वी का ऊष्मा संतुलन बनाए रखने में वायुमंडल विशेष योगदान देता है। इसके लिए यह सूर्य से उत्सर्जित तथा परावर्तन के कारण पृथ्वी से पुनरूत्सर्जित अवरक्त विकिरण का अवशोषण करता है। पृथ्वी सतह के आसपास वायुमंडल का तापमान 14 डिग्री सेन्टीग्रेट या 57 डिग्री फेरिनहाईट होता है। संरचना की दृष्टि से वायुमंडल के चार क्षेत्रों की विशेषताएं अग्रानुसार सारणीबद्ध की जा सकती है –

सं.क्र	ऊँचाई (कि.मी.)	क्षेत्र	तापक्रम (सेंटीग्रेड)	महत्वपूर्ण अवयव
1.	0 – 11	क्षोभमंडल	15 से– 56	N_2, O_2, CO_2, H_2O
2.	11 – 50	समतापमंडल	56 से – 2	O_2
3.	50 – 85	मध्यमंडल	2 से – 92	O_2+,NO
4.	85 – 500	तापमंडल	92 से 1200	O_2+O+,NO+

जलमंडल (Hydrosphere)

पर्यावरण का दूसरा महत्वपूर्ण भाग जलमंडल है। जल धरातल के 72 प्रतिशत से अधिक भाग में पाया जाता है। जल की उपलब्धता से ही सभ्यताओं का विकास संभव हो सका है। जल ही जीवन है वाक्य से जल की महत्ता स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है। जलमंडल के अन्तर्गत सभी प्रकार के जलस्रोत (महासागर से लेकर भूमिगत जल तक के स्रोत) सम्मिलित है। पृथ्वी पर 97 प्रतिशत जल समुद्रों में है जिसमें लवण का उच्च सांद्रण होता है। यह मानवीय उपयोग के लिए उपयुक्त नहीं होता। 2 प्रतिशत जल ग्लैशियर तथा बर्फ की ध्रुवीय टोपियों में बंद होता हैं। मात्र 1 प्रतिशत जल स्वच्छ और ताजे जल के रूप में नदियों, झीलों, झरनों तथा भूमिगत जलस्रोतों से मानवीय एवं अन्य उपयोगों हेतु उपलब्ध रहता है।

भूमंडल अथवा स्थल मंडल (Lithosphere)

पर्यावरण का तीसरा भाग भूमंडल है। इसे स्थल मंडल भी कहा जाता है। यह पृथ्वी का बाह्य आवरण भी है और आंतरिक संगठन भी। पृथ्वी के काल्पनिक केन्द्र से लेकर पृथ्वी के पृष्ठ तक का भाग इसमें समाहित है। मिट्टी या मृदा इस भूमंडल का एक महत्वपूर्ण अंग है। यही मृदा वनस्पति जगत, पशुजगत मानव एवं जीवाणुओं के लिए स्थान, भोजन एवं रक्षण उपलब्ध कराती है। पृथ्वी की भूपर्पटी का निर्माण करने वाली चट्टानों का आवरण भी यही है। भौतिक, रासायनिक और जैविक अपक्षय के सतत प्रक्रमों द्वारा चट्टानें प्रभावित होती रहती है। परिणामतः मृदा या मिट्टी प्राप्त होती है। खनिजों, कार्बनिक पदार्थों, वायु एवं जल का जटिल मिश्रण मृदा कहलाता है। इसी प्रकार मृदा पर उत्पन्न वनस्पति का जीवनकाल समाप्त होने पर इसका अवशेष मिट्टी में मिल जाता है । इस प्रकार मिट्टी कार्बनिक पदार्थ से युक्त हो जाती है। इस कार्बनिक पदार्थ को मिट्टी में उपस्थित सूक्ष्म जीवाणु विघटित कर उसे पुनः वनस्पतियों के ग्रहण योग्य रूप में परिवर्तित करते रहते हैं। भूपर्पटी की सबसे ऊपरी परत–मृदा

पौधों के लिए जल एवं पोषक तत्वों का स्रोत है और भोजन श्रृंखलाएं इसमें सतत रूप से चलती रहती है। एक प्राकृतिक उत्पादक मिट्टी में लगभग 95 प्रतिशत अकार्बनिक तथा 5 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ होते हैं।

मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ सूक्ष्म जीवों को भोजन उपलब्ध कराते हैं इसमें अमीनो शर्करा, कार्बनिक सल्फर, कार्बनिक फास्फेट तथा पोलिसैकराइड सम्मिलित है। मिट्टी में सिलिकेट खनिज पाए जाते हैं जिसमें लगभग 74 प्रतिशत सिलिकॉन तथा आक्सीजन होती है। मिट्टी में सामान्य तत्व 46.6 प्रतिशत, आक्सीजन, सिलिकॉन 27. 7 प्रतिशत, अल्युमीनियम 8.1 प्रतिशत, आयरन 5.6 प्रतिशत, कैल्शियम 3.6 प्रतिशत, सोडियम 2.8 प्रतिशत, पोटैशियम 2.6 प्रतिशत, मैग्नीशियम 2.1 प्रतिशत होता है। कुछ मिट्टियों में मैगनीज आक्साइड और ट्राइटेनियम आक्साइड भी पाया जात है। कैल्शियम कार्बोनेट भी एक सामान्य घटक है। मिट्टी ठोस खनिजों, कार्बनिक पदार्थों, वायु एवं स्थान का एक मिश्रण होती है।

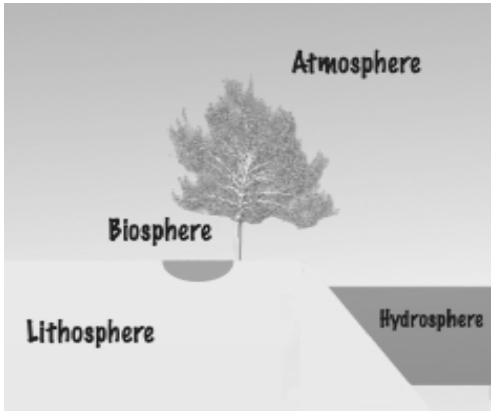

जीवमंडल (Biosphere)

पर्यावरण का चौथा भाग जीवमंडल होता है यह भाग अलग होकर भी अन्य तीन वायुमंडल जल मंडल एवं भूमंडल–भागों से मिलकर बनता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जीवमंडल का एक भाग वायुमंडल में एक भाग जलमंडल में एवं एक भाग भूमंडल में पाया जाता है। जीवमंडल का क्षेत्र आण्विक–कोशिका से लेकर पारिस्थितिक तंत्र तक विस्तृत है। ये विभिन्न स्तर एक दूसरे को प्रभावित करने के अतिरिक्त एक दूसरे पर निर्भर भी होते हैं । जीवमंडल की संरचना जैव एवं अजैव घटकों से मिलकर होती है। इस तंत्र का प्रत्येक घटक एक विशिष्ट कार्य सम्पादित करता है और इस प्रकार के समस्त कार्यों का कुल योग जीवमंडल को क्रियात्मक या प्रकार्यात्मक स्थिरता प्रदान करता है। जीवमंडल को एक बड़े जैवतंत्र की संज्ञा

दी जा सकती है। जीवमंडल के अन्तर्गत प्रमुखतः सजीव तंत्र एवं वातावरण के साथ उनकी पारस्परिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

जीवमंडल पृथ्वी का वह भाग है जिसमें जीवित जीव होते हैं पृथ्वी के जीवित जीवों तथा पर्यावरण के मध्य पारस्परिक क्रिया होती है। इसके अंतर्गत जीवित जीव तथा भौतिक पर्यावरण दोनों ही आते हैं।

पर्यावरण के तत्व (Environmental Elements) : पर्यावरण की संरचना में दो तत्व समूह प्रमुख है अजैव तत्व तथा जैव तत्व।

अजैव तत्व समूह (Abiotic Component) : इसे अनेक वर्गों में बांटा जा सकता है –

1. स्थलीय तत्व समूह– पर्वत, लाल, उच्चावच आदि।
2. जलीय तत्व – नदी, सागर, झील, भूमिगत जल।
3. मृदा – मृदा जल, मृदा वायु, मृदा रूप।
4. खनिज एवं चट्टानें – धात्विक, अधात्विक तथा ऊर्जा खनिज चट्टानें आदि।
5. भौगोलिक स्थिति– पर्वतीय, तटवर्ती, मध्य में।
6. जलवायविक तत्व– वायु, सूर्य, प्रकाश, आर्द्रता, वर्षा, तापमान, वायुमंडलीय गैसें।

जैव तत्व समूह (Biotic Component) : इसके अंतर्गत मानव, जंतु व वनस्पति सम्मिलित हैं।

एक स्थान पर पाए जाने वाले एक प्रजाति के जीवों की संख्या को जनसंख्या कहते हैं विभिन्न प्रजातियों के विभिन्न स्थानों पर पाए जाने वाले जीवों की कुल संख्या को जीवमंडल का सजीव घटक कहा जाता है। ये जीव एक दूसरे से एवं अपने भौतिक वातावरण से सतत पारस्परिक क्रिया करते रहते हैं। इस प्रकार जैव एवं अजैव घटकों के मध्य ऊर्जा एवं पदार्थ का आदान–प्रदान होता रहता हैं यह क्रियात्मक या कार्यात्मक तंत्र पारिस्थितक तंत्र कहलाता है। एक क्षेत्र विशेष में समस्त पारिस्थितिक तंत्र मिलकर एक और बड़ी इकाई जीवोम या बायोम का निर्माण करते हैं । संसार के समस्त बायोम मिलकर विशाल स्वयंपोषी जैवतंत्र का निर्माण करते हैं जिसे जीवमण्डल कहा जाता है।

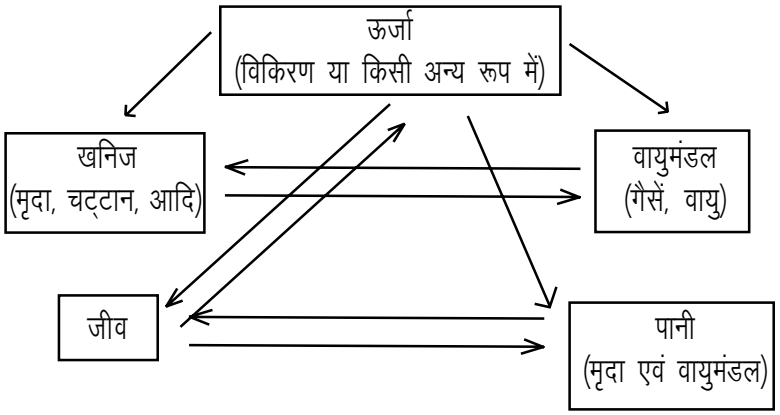

मानवीय मूल्य, पर्यावरण और पुलिस

किसी राष्ट्र की सम्पत्ति है उस राष्ट्र का उत्कृष्ट मस्तिष्क और आदर्श चरित्र। यह अपेक्षा परिवार, समाज और विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं मुख्य रूप से विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों से की जाती है कि वे स्वस्थ मानसिकता वाली पीढ़ी तैयार करे जो समाज और देश के विकास के लिए कार्य करे।

पिछले कुछ दशकों में मानव जीवन की गति पहले की अपेक्षा काफी तीव्र रही है, चाहे वह विकास की दर हो, वैज्ञानिक/तकनीकी परिवर्तन की दर हो, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की दर हो, वैश्विक संबंधों में समन्वय की दर हो या ज्ञान के विस्तार की दर हो इस तेज रफ्तार का उद्देश्य यही रहा है कि जीवन की गुणवत्ता (Quality of life) को बेहतर बनाना है। आज हर आदमी आगे बढ़ना चाहते हैं, जल्दी से जल्दी और किसी भी कीमत पर और यही कारण है हमारे मूल्यों में गिरावट आई है। भावनाओं की परख आज भी है परन्तु उन भावनाओं को महत्व देकर आज कोई भी समय बेकार नहीं करना चाहता। इस परिपेक्ष्य में जबकि आज 'Education for All' का नारा पूरे विश्व में गूंज रहा है। क्या हमें उन खोए हुए मूल्यों को जागृत करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

डा. जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में तैयार की गई एक रिपोर्ट 'Basic Internal Education' में कहा गया था – कि वर्तमान शिक्षा तंत्र में बदलाव आवश्यक है इसे और अधिक संगठनात्मक और मानवीय बनाना चाहिए जो कि हमारी आवश्यकताओं, राष्ट्रीय जीवन के आदेशों और वर्तमान समय की जरूरतों के साथ समन्वय स्थापित कर सके।

श्री एस.एन. सराफ ने "Education in Human Values - Programme Implementation" में लिखा है आज के समय में कैसे ध्यान रखने वाले, प्यार करने वाले और दृढ़ संकल्पित नागरिकों का विकास किया जा सकता है। उन्होंने एक सफल अध्यापक जो कि अपने छात्रों को चाहते थे और उस विषय को पसंद करते थे जिसको वे पढ़ाते थे, अनुभव के बारे में लिखा है कि प्यार मूल बिन्दु एवं मूल मूल्य है बाकी सभी मूल्यों का विकास इसी से होता है।

स्वामी विवेकानंद ने लिखा है – "Love never fails, my son, today or tommorow or ages after, truth will conquer, love shall win the Victory."

जब बात मूल्यों की हो रही है जो बच्चे की प्रथम पाठशाला, परिवार के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। स्वामी विवेकानंद ने परिवार/माता–पिता के द्वारा बच्चे के पालन के निम्न दस नियम बताए हैं –

1. अपने सभी बच्चों से समान लगाव रखे।
2. उनके मित्रों का अपने घर में स्वागत करें।
3. उनके सामने वाद–विवाद/झगड़ा न करें।
4. आपस में सत्यता का रिश्ता रखे।
5. बच्चों से झूठ न बोले।
6. बच्चों के प्रश्नों का सदा उत्तर दें।
7. अपने विचारों और लगाव में स्थिरता रखें।
8. बच्चों को दूसरों के सामने सजा न दें।
9. बच्चों के समीप रहे।
10. बच्चों की अच्छी बातों पर ध्यान केन्द्रित करे उनकी असफलताओं पर नहीं।

यूनेस्को की शिक्षा पर अंतर्राष्ट्रीय कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया है कि इक्कीसवीं शताब्दी के लिए शिक्षा को चार आधारभूत स्तंभों पर स्थापित होना चाहिए।

1. जानने के लिए सीखना (Learning to know)
2. करने के लिए सीखना (Learning to do)
3. साथ रहने के लिए सीखना (Learning to live together)
4. जीने के लिए सीखना (Learning to be)

नागरिकों में मूल्यों के विकास के लिए विभिन्न विशेषज्ञों ने विभिन्न विचार दिए हैं –

1. मूल्य आधारित शिक्षा आरंभ करना।
2. मूल्य आधारित पाठ्यक्रम तैयार करना।
3. मूल्य आधारित अनिवार्य आधार पाठ्यक्रम का विकास।
4. मूल्य आधारित पाठ्य सामग्री का विकास।
5. शिक्षकों एवं छात्रों के लिए आचार संहिता का विकास एवं,
6. शिक्षकों एवं छात्रों में जीवन के दर्शनात्मक पहलू का विकास।

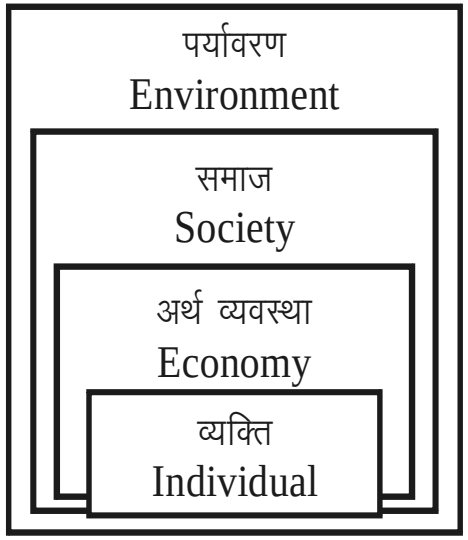

आचार व्यवहार और पर्यावरण

Ethics और सामाजिक जिम्मेदारी मूल्यों के अंतर्गत आती है। विज्ञान यह सिखाता है कि विश्व कैसे कार्य करता है, जबकि Ethics यह सिखाते हैं कि विश्व को कैसे कार्य करना चाहिए और मनुष्यों का व्यवहार कैसा होना चाहिए। यहां यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि हमें शुरुआती समय से ही पहली बात अर्थात विज्ञान ज्यादा सिखाया गया है। अतः यह सब हमारे लिए कठिनाई की बात है कि हम सीखें, सुधार करें, विकसित करें और फिर उसकी शिक्षा दूसरों को दे।

यदि हम शिक्षा के उद्देश्यों को देखे तो मूल्यांकन और मूल्यों का विकास सीखने की प्रक्रिया में एक स्तरीय प्रक्रिया है। किसी छात्र को मूल्य के बारे में

जानकारी प्राप्त करने के लिए काफी Skills और अभिवृत्तियों का विकास करना होगा। जब तक किसी छात्र को पर्यावरण और परितंत्र के आधारभूत ज्ञान और सिद्धांतों की जानकारी नहीं है उससे संबंधित मूल्यों और Ethics की जानकारी देना या देने की सोचना बेकार ही है।

पर्यावरण शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थी में बाल्यकाल से ही पर्यावरणीय घटकों (सजीव एवं निर्जीव) एवं प्राकृतिक वातावरण के प्रति धनात्मक दृष्टिकोण के विकास से है जिससे परिस्थितिक असंतुलन से पर्यावरण को बचाया जा सके। जैसे एक बालक को फूल, पत्ती, छोटे–छोटे पादपों को तोड़ने से मना करना, जीव जन्तुओं के लिए प्रेम व्यवहार संबन्धी दृष्टिकोण के विकास का प्रयास, उन्हें शारीरिक स्वच्छता तथा जल के दुरुपयोग संबंधी जानकारी देना जिससे उनमें क्रमशः वृक्षों के कटाव के विरूद्ध मानसिकता, जीवों से प्रेम, संसाधनों के समुचित उपयोग और उन्हे यथा स्थिति बनाए रखने की मानसिकता का विकास हो सके। पर्यावरण शिक्षा के निम्नांकित लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं।

1. पर्यावरण शिक्षा संदर्भित अभिवृत्तियों और व्यावहारिक परिवर्तनों का विकास : जिससे छात्र में प्रकृति प्रेम और परिस्थितिकीय घटनाक्रमों से संलग्न होकर पर्यावरणीय घटकों से लगाव उत्पन्न हो सके साथ ही वह पर्यावरण संरक्षण संबंधी निर्णय लेने में स्वतंत्र हो सके।

2.पर्यावरण सुरक्षा तथा संरक्षण के प्रति जागरूकता तथा जिम्मेदारी का विकास : जिससे न केवल छात्र में पर्यावरणीय समस्याओं के तात्कालिक एवं दूरगामी परिणाम संबन्धी सोच उत्पन्न हो अपितु उसमें प्रदूषण के व्यक्तिगत तथा सामूहिक (घरेलू तथा औद्योगिक) स्तरों का तथा उनके पर्यावरणीय घटकों पर प्रभावों का विश्लेषण करने की क्षमता का विकास भी हो सकें।

3. भौगोलिक संसाधनों की सुरक्षा एवं संरक्षण हेतु जागरूकता का विकास : जिससे छात्र इन संसाधनों की सीमितता तथा उनके अनियंत्रित उपयोग से होने वाली हानियों को समझ सके साथ ही उनके संरक्षण के लिए भी प्रयास कर सके।

4. पर्यावरण के प्रति सुरक्षात्मक तथा संरक्षणात्मक तकनीकियों का विकास : किसी समस्या के समाधान की एक ही तकनीकि विभिन्न क्षेत्रों में एक सीमा तक ही प्रभावशाली नहीं होती अतः कोई तकनीकि विकसित करने के पूर्व उस स्थान विशेष की परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए जिससे व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में सांस्कृतिक मूल्यों की उपेक्षा न हो।

5. पर्यावरणीय विनाश तथा समस्याओं के बेहतर समाधान के लिए तकनीकी शिक्षा की भूमिका का मूल्यांकन : जिससे वर्तमान शिक्षा तंत्र को स्थापित पर्यावरणीय समस्याओं और स्थितियों के अनुरूप बनाया जा सके। साथ ही साथ समस्या समाधान/निदान की विधियों का विकास भी किया जा सके।

6. पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान मे ंसहभागिता : जिससे छात्र बचपन से ही पर्यावरणीय संरक्षण, संबंधी कार्यक्रमों में अपनी सहभागिता सुनिश्चित कर सके तथा अपने आप को पर्यावरण का अभिन्न अंग माने।

मानवीय मूल्यों को बनाए रखने में पुलिस की अहम भूमिका हो सकती है। समाज में उपलब्ध एक ऐसा शासकीय प्रतिनिधि जिसकी कही बातों को एवं उसके द्वारा किसी कार्य के लिए मना करने पर वह बात मान्य हो सकती है। यह सही है कि आज सामुदायिकता की बात पुलिस तंत्र में भी प्रमुखता से चल रही है अतः समाज में यदि पुलिस इस सामाजिक दायित्व के बोध के साथ पर्यावरण जागरूकता का प्रसार करे या समाज को पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर संवेदनशील बनाए तो यह एक प्रभावी कदम होगा।

अध्याय – 4
पर्यावरण तथा मानव अन्तर्संबंध

मानव जाति के विकास और पर्यावरणीय घटकों में अभूतपूर्व संबंध है। मानव पर्यावरण पर निर्भर है तो पर्यावरण भी मानव के बिना अपूर्ण सा प्रतीत होता है। मानव तथा पर्यावरण की पारस्परिक निर्भरता ने ही दोनों के समुचित विकास हेतु अनुकूलतम परिस्थितियां निर्मित की हैं। इसे इत्तेफाक माने या अज्ञानतावश उठाया गया कदम कि विकास की अंधी दौड़ में पर्यावरण से प्रतिस्पर्धा करते हुए मानव ने लगातार पर्यावरणीय संतुलन को प्रभावित किया है।

मानव दैनिक जीवन के अपने प्रत्येक क्रियाकलापों के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण पर आश्रित है। अपनी दिनचर्या में प्रातः उठने से रात्रि में सोने के मध्य वह जो भोजन करता है, जो वस्त्र धारण करता है, जो पेय पदार्थ ग्रहण करता है आदि सभी के लिए वह पर्यावरण पर ही निर्भर हैं मानव पर्यावरण से निम्न दो रूपों में ऊर्जा प्राप्त करता है –

1. सौर ऊर्जा
2. जीवाष्मीय ऊर्जा

इन स्रोतों के लिए मानव की पर्यावरण पर निर्भरता को निम्न आलेख चित्रों द्वारा समझा जा सकता है–

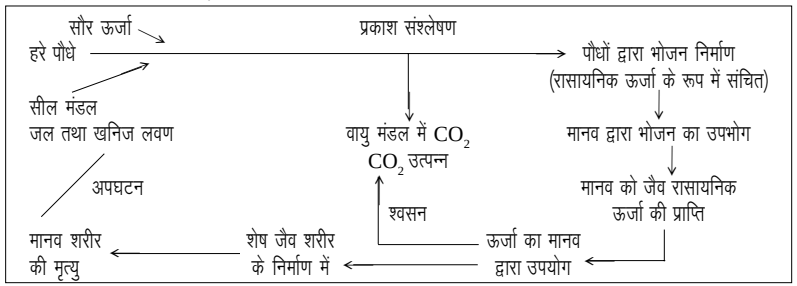

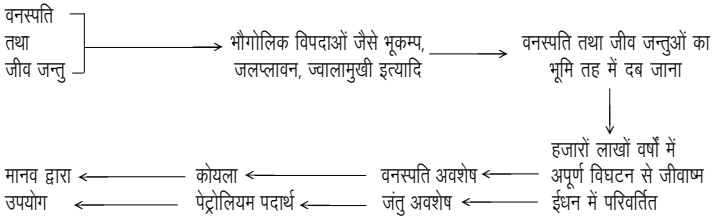

पर्यावरण को प्रभावित करने वाले मानवीय क्रियाकलाप

इस बात में कोई आशंका नहीं है कि पर्यावरण को नुकसान हमारे ही क्रियाकलापों से हुआ है। यदि आज सामने आई पर्यावरणीय समस्याओं के बारे में मंथन किया जाए तो ज्ञात होगा कि समस्याएं तब भी थी जब मानव प्रकृति के अधीन था परन्तु उन समस्याओं की भयावहता इतनी नहीं थी कि उससे संतुलन बिगड़े। परन्तु पिछले कुछ दशकों में बात सिर्फ आगे बढ़ने की हुई। उसके दुष्परिणामों के बारे में पूर्व विचार या नियोजन नहीं किया गया। विकास के नाम पर प्रकृति/पर्यावरण पर विजय प्राप्त करने का लक्ष्य बन गया। विकास तो हुआ परन्तु उसके दुष्परिणाम भी सामने आने लगे।

मानवीय मूल्यों का हास

हम इस बात से सहमत होंगे कि वर्तमान में मानवीय मूल्यों का हास हुआ है जिन पेड़ों को देवी देवताओं का रूप मानकर उनकी पूजा की जाती थी और रात में पेड़ों को हाथ लगाना पाप समझा जाता था उन्हें रातों रात काटकर बेच दिया जाता है। अपनी सुविधा और विकास के नाम पर घने जंगलों को काट दिया जाता है। अगर बच्चे की प्रारंभिक शिक्षा के माध्यम पर गौर किया जाए जो कि पहले संयुक्त परिवार हुआ करता था अब बदल गया है। संयुक्त परिवार तो अब बिखर चुके ही हैं। माता–पिता दोनों की भी अपनी प्राथमिकताएं हैं, व्यस्त दिनचर्या का परिणाम है कि जो शिक्षा बच्चा घर पर बड़ों को देखकर, उनके संपर्क में रहकर प्राप्त करता था उसका स्थान पहले कामिक्स ने लिया फिर टेलीविजन ने और वर्तमान में वह स्थान कम्प्यूटर और मोबाइल ने ले लिया है। परिणाम यह हो रहा है कि जीवन की आपाधापी में रिश्तों की अहमियत और परस्पर प्रेम धीरे–धीरे खोता गया तो जब हम अपने परिवार के प्रति ही संवेदनशील नहीं बचे तो स्वाभाविक है कि पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता । अब जब हमारा बच्चा हमारे इन्हीं

संस्कारों एवं मूल्यों को देखकर बड़ा हो रहा है जिसके जीवन पर टेलीविजन, कम्प्यूटर, इंटरनेट और मोबाइल ने हमसे ज्यादा अधिकार बनाया हुआ है (और इसका दोषी भी बच्चा नहीं है हम ही है), तो यह कैसे कल्पना करें कि हमारा कल सुरक्षित हाथों में है। यह सोच नकारात्मक प्रतीत होती है परन्तु वास्तविकता से परे नहीं है। विद्यालयों में आधुनिकता के नाम पर कुसंगति, अशिष्टता और अश्लीलता अधिक दिखाई देने लगी है इसके लिए भी सिर्फ विद्यालय प्रबंधन ही दोषी नहीं है अभिभावक भी पूर्णतया जिम्मेदार है। अब जब व्यक्ति सही नहीं है तो समाज तो प्रभावित होगा ही। व्यवहार की बदली हुई परिभाषा से हम अब परिचित हो ही चुके हैं। आज व्यवहार का अभिप्राय है काम निकालना। मानवीय सोच के परिणाम स्वरूप उसकी विकृत अभिवृत्ति और फलतः उसके कार्य व्यवहार ने प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ा है जिसने आज हमारे ही अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

वृक्षों को काटना

वन महोत्सव के जन्मदाता के.एम. मुंशी ने वृक्षों की उपयोगिता को बताते हुए कहा है – ''वृक्षों का अर्थ है जल, जल का अर्थ है रोटी और रोटी ही जीवन है।'' एक वैज्ञानिक आंकलन के मुताबिक 50 टन भार का एक सामान्य वृक्ष अपने जीवन काल में जो कि लगभग 50 वर्ष का माना गया है, वातावरण में आक्सीजन प्रदान कर, मिट्टी के क्षरण को रोककर, फल, फूल, चारा, पत्ती देकर एवं प्रदूषण कम करके लगभग 15.70 लाख रूपए का लाभ हमें प्रदान करता है।

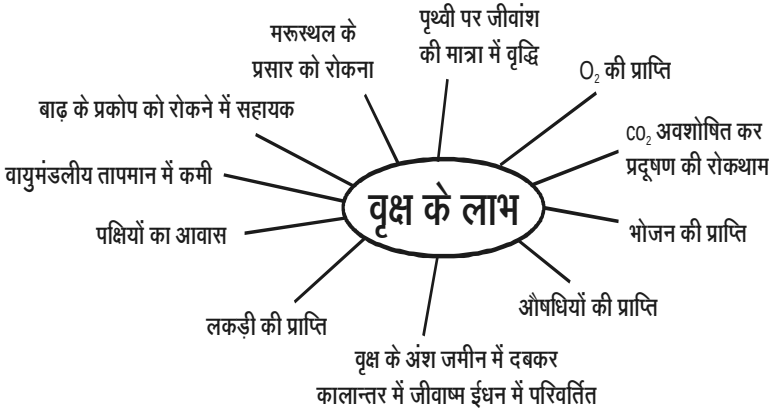

वायुमंडलीय तापमान में कमी

जनसंख्या के दबाव और तथाकथित अंध सभ्यता और विकास की दौड़ में इन वनों का तेजी से विनाश हुआ है। पौधों की अनेक प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं और अनेकों विलुप्तीकरण की कगार पर हैं। 1988 की राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 33 प्रतिशत भाग वनों से ढ़का होना चाहिए। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार द्वारा जारी वार्षिक रिपोर्ट 2010–11 के अनुसार हमारे देश का कुल 21.05 प्रतिशत भाग वनों से आच्छादित है जबकि 77.67 प्रतिशत भूभाग वन विहीन है। तुलनात्मक रूप से देश के सर्वाधिक वन क्षेत्र वाले राज्य निम्न है –

क्र.	राज्य	वन क्षेत्र (स्क्वेयर कि.मी. में)
1.	मध्यप्रदेश	77700
2.	अरूणांचल प्रदेश	67410
3.	छत्तीसगढ़	55674
4.	महाराष्ट्र	50646
5.	उड़ीसा	48903

राज्यों के कुल क्षेत्र के संदर्भ में प्रतिशत वन क्षेत्र –

क्र.	राज्य	प्रतिशत वन क्षेत्र
1.	मिजोरम	90.68
2.	लक्ष्यदीप	84.56
3.	अंडमान निकोबार	81.51
4.	अरूणांचल प्रदेश	80.50
5.	नागालैंड	80.33
6.	मेघालय	77.02
7.	त्रिपुरा	76.07

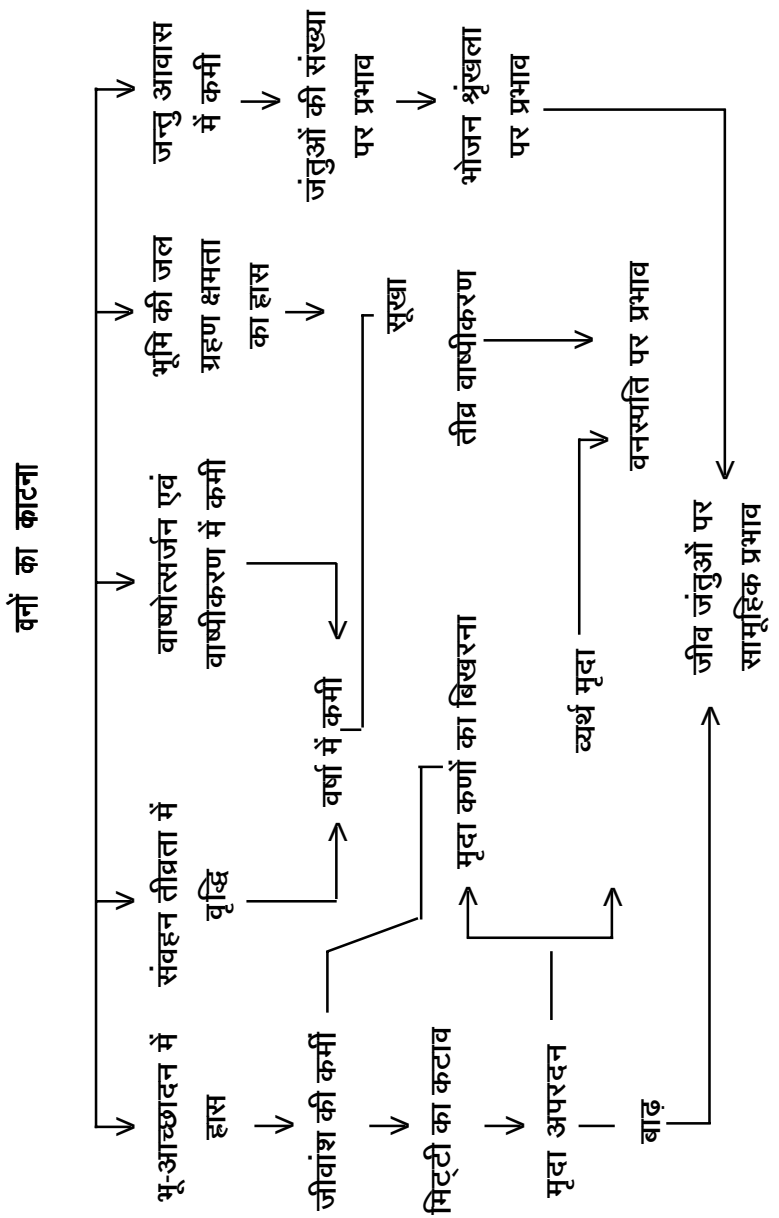

वृक्षों को काटने से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याएं –

1. वायुमंडलीय प्रदूषण (हानिकारक गैसों की मात्रा में वृद्धि)
2. वायुमंडलीय ताप वृद्धि या ग्रीन हाउस प्रभाव।
3. मृदा अपरदन/मृदा के कटाव में वृद्धि।
4. वायुमंडल में प्रदूषकों की मात्रा में वृद्धि क्योंकि वृक्ष कुछ प्रदूषकों के अच्छे अवशोषक हैं।
5. भूमिगत जल स्रोतों में कमी।
6. अनियंत्रित वर्षा और बाढ़।
7. स्थान विशेष की खाद्य श्रंखला प्रभावित।
8. अनेकों उपयोगी पादप प्रजातियां और उन पर निर्भर जंतु प्रजातियां विलुप्त।

भौगोलिक संसाधनों का अति दोहन –

भौगोलिक संसाधनों से अभिप्राय है प्रकृति द्वारा हमारे जीवन के लिए निःशुल्क उपलब्ध उपहार जिन्हें हम अपने वृद्धि एवं विकास हेतु उपयोग में ला रहे हैं। कोई भी वस्तु या तत्व जो जीवन के लिए उपयोगी है संसाधन है। संसाधनों को मूलतः दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

नवीनकरणीय संसाधन (Renewable Resources) – ये वे संसाधन हैं जो लगातार प्रकृति में अपने आप बनते रहते हैं और इनके सतत उपयोग से इनकी कमी नहीं होती है। उदाहरण के लिए वन, वायु।

अनवीनकरणीय संसाधन (Non Renewable Resources) – ये वे संसाधन है जो प्रकृति में लाखों वर्षों की अवधि में बनकर तैयार होते हैं अतः समाप्त होने पर शीघ्र ही दुबारा नहीं बनाए जा सकते। उदाहरण कोयला जीवाष्म ईधन।

संसाधनों के अविवेक पूर्ण अतिदोहन से संसाधनों की कमी हुई है जिसका परिणाम हुआ –

1. संसाधनों की मांग और आपूर्ति में असंतुलन।
2. ऊर्जा के स्रोतों के अति दोहन से ऊर्जा संकट और ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की आवश्यकता।
3. जीवाष्म ईंधन की कमी।
4. संसाधनों का अस्तित्व खतरे में।

5. संसाधनों के अनियोजित दोहन से कई नवीनकरणीय संसाधनों का अनवीनकरणीय संसाधनों में परिवर्तन।

6. विश्व के उच्च कोटि के खनिज भण्डार तेजी से समाप्त हो रहे हैं। मांग में कमी न आने के कारण धातु को निम्न कोटि के अयस्कों से निकाला जाता है।

7. प्रायः सभी खनिज अयस्कों में कई धातुओं का न्यूनाधिक मात्रा में मिश्रण रहता है अयस्क को खोदकर निकाला जाता है तथा उसमें से वांछित धातु निकालकर शेष को अपशिष्ट के रूप में बिखरी स्थिति में पड़े रहने दिया जाता है। इस प्रकार दूसरी धातुओं (जो सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं) का हास होता है। विश्व भर में धातु उत्पादन के लिए जो अयस्क पिघलाए जाते हैं उनसे बहुत बड़ी मात्रा में गंधक, पारा, कैडमियम, निकल, आर्सेनिक, जिंक इत्यादि पर्यावरण में आ जाते हैं। इनसे पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता है। खदानों से खनिज निकालने के प्रत्येक चरण से बहुत बड़ी मात्रा में अपशिष्ट पदार्थ बनते हैं। यह पदार्थ नदियों, झीलों इत्यादि के रास्ते में आकर उन का बहाव बंद कर देते हैं, वायु और मृदा प्रदूषण का कारण बनते हैं। खनिजों के खनन से इतना अपशिष्ट पदार्थ निकलता है कि इसके कारण विश्व में कई पर्यावरणीय आपत्ति क्षेत्र (Environment Disaster Areas) बन गए हैं।

अमेजन नदी के कछार (Basin) में सोने के खनन के लिए हाइड्रोलिक विधि अपनाई जाती है जिसमें अधिक दबाव पर पानी की धाराओं से मिट्टी को बहाया जाता है जिसमें से सोना भारी होने के कारण नीचे बैठ जाता है। इन सोने के कणों को मिट्टी से अलग करने के लिए पारे का प्रयोग किया जाता है। इससे मिट्टी की बहुत बड़ी मात्रा बहकर आती है जो नदियों में जमकर नदी के बहाव को रोकती है साथ ही अमेजन नदी में 100 टन पारा प्रति वर्ष इस प्रकार आता है जिससे घातक जल प्रदूषण होता है।

उत्तर अमेरिका में निम्न कोटि के अयस्कों से सोना निकालने के लिए **'हीप लीचिंग' (Heap Leeching)** तकनीक का प्रयोग होता है। इसमें अयस्क के ढेर पर सायनाइड विलयन छिड़का जाता है वो जब नीचे रिसता है तो उसमें सोना घुल जाता है। इस सोने को निकाल लिया जाता है, परन्तु जिस भूतल में से साइनाइड रिसता है वह तो संपूर्ण जीवों एवं वनस्पतियों के लिए घातक रूप से प्रदूषित हो जाता है। जो कि भूमिगत जल स्त्रोतों को भी प्रदूषित करता है।

अब समुद्र से **नोड्यूल माइनिंग** ने भी सारे विश्व का ध्यान आकर्षित किया है। नोड्यूल धातु से बनी गोल वस्तुएं हैं जिनकी आकृति मटर से लेकर फुटबाल तक

हो सकती है। ये 900 से 6000 मीटर की गहराई तक समुद्र तल पर बिखरी रहती हैं। इसमें विभिन्न धातुएं पाई जाती हैं जिनकी मात्रा निश्चित नहीं है। व्यावसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण खनिज नोड्यूल में 25 से 30 प्रतिशत तक मैगनीशियम, 1.5 प्रतिशत निकल, 0.5 से 1.0 प्रतिशत तक तांबा पाया जाता है। वर्तमान में संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान एवं पश्चिम यूरोप की कई बड़ी कंपनियां इस काम में लगी है और भारत शासन का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ है। नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ ओसीनोग्राफी (National Institute of Ocaenography), CSIR तथा कुछ अन्य शासकीय संस्थाएं हिन्द महासागर के मध्यभाग में धातु नोड्यूलों की खोज संबंधी सर्वे कार्यों में लगी हैं। इसके लिए इकोसाउडिंग, समुद्र तल फोटोग्राफी एवं सैम्पलिंग जैसी तकनीकें प्रयोग में लाई जा रही हैं। भविष्य में समुद्री नोड्यूलों से खनिज प्राप्ति की अपार संभावनाएं हैं।

पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख कारक

अंधाधुंध औद्योगिक प्रगति : शीघ्र विकास की चाह और अनियोजित औद्योगिक प्रगति ने अनेकों समस्याओं को जन्म दिया है। इन समस्याओं में से कुछ प्रमुख समस्याएं निम्न है–

1. अपशिष्ट पदार्थों का जल में निष्कासन।
2. हानिकारक गैसों का वायुमंडल में निष्कासन।
3. उर्वरकों और कीटनाशकों का अनियंत्रित प्रयोग।
4. रेडियो धर्मी पदार्थों की पर्यावरण में मुक्ति।
5. वायुमंडलीय ताप वृद्धि।
6. ध्वनि प्रदूषण।
7. ग्रीन हाउस प्रभाव, प्रकाश रासायनिक कुहासा एवं अम्लीय वर्षा।
8. क्लोरोफ्लोरो कार्बन रिसाव से ओजोन क्षय।

वाहनों का अत्यधिक प्रयोग : आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण के इस दौर में वाहनों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। वाहन वायु प्रदूषण का एक प्रमुख स्रोत है। वाहनों में उपयोग किए जा रहे ईधन से दहन उपरांत अनेकों हानिकारक गैसे वायुमंडल में सीधे छोड़ी जाती है। स्पष्ट है अगर आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वाहनों की संख्या बढ़ेगी तो प्रदूषण बढ़ेगा ही। वायु प्रदूषण के साथ–साथ वाहन ध्वनि प्रदूषण बढ़ाने में भी अहम योगदान देते हैं। अत्यधिक वाहनों के प्रयोग के दुष्परिणाम निम्न हैं –

- वायुमंडल में हानिकारक गैसों (SO_2, NO_2, CO, CO_2) आदि की मात्रा में वृद्धि।
- ध्वनि प्रदूषण में वृद्धि।
- वायुमंडल के ताप में वृद्धि।
- प्रकाश रासायनिक धुंध।
- ग्लोबल डिमिंग।

वाहनों की लगातार बढ़ती संख्या के कारण भारत विश्व का चौथा सबसे अधिक ग्रीन हाउस गैस पर्यावरण में छोड़ने वाला देश है एवं देश का ट्रांसपोर्ट सेक्टर कार्बन डाईआक्साइड को पर्यावरण में छोड़ने वाला विश्व का दूसरा सबसे बड़ा अंशदाता (Contributor) है।

जनसंख्या वृद्धि का पर्यावरण पर प्रभाव (Impact of Population on Environment) : मानव ने ही पृथ्वी की अपार सम्पत्ति को उपयोगी बनाया है एवं उसी के प्रयत्नों के कारण प्राकृतिक संसाधनों का विकास एवं उपयोग हुआ है। मानव के हित में प्रकृति के संसाधनों का सीमित उपयोग ही है। वास्तव में संसाधनों के दोहन में मनुष्य की आवश्यकताओं एवं प्रकृति के संतुलन में सामंजस्य होना चाहिए। संसाधनों के उपयोग में शोषण (ज्यादा से ज्यादा पा लेने की आशा) से प्रकृति को स्थायी क्षति पहुंचती है जो सम्पूर्ण मानव जाति एवं जैव जगत के लिए विनाशकारी है। यदि मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग बुद्धिमानीपूर्वक, प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए करता है तो प्राकृतिक संतुलन बिगड़ेगा नहीं एवं उसे प्रकृति से दीर्घकालीन लाभ प्राप्त होंगे।

पृथ्वी के कुल क्षेत्रफल के एक चौथाई भाग में विश्व की लगभग 90 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। विश्व में अधिक जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्र हैं एशिया महाद्वीप (अरब, ईरान, भारतीय उप महाद्वीप, चीन, मलेशिया, थाईलैंड, वेस्टइण्डीज), सहारा के उत्तर वाले अफ्रीका के क्षेत्र, दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील, चिली, मेक्सिको इत्यादि। 15 प्रतिशत जनसंख्या उन क्षेत्रों में रहती है जिसका अधिकांश भाग या तो शुष्क है अथवा खेती के योग्य नहीं है। भारत का जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद विश्व में दूसरा स्थान है। लेकिन जिस गति से भारत की जनसंख्या बढ़ रही है उसे देखते हुए अनुमान है कि 21 वीं शताब्दी के तीसरे दशक के मध्य तक भारत विश्व का सबसे अधिक आबादी वाला राष्ट्र बन जाएगा। अतः बढ़ती हुई जनसंख्या एक गंभीर चुनौती बनती जा रही है। हमारे देश का क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का केवल 2.5 प्रतिशत है जबकि भारत की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या की 17.31 प्रतिशत है। भारत में जनसंख्या वितरण भी समान नहीं है। जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि

पर निर्भर करता है तथा अत्यधिक घनी आबादी समतल मैदानों तक ही सीमित है। केवल उत्तरप्रदेश, बिहार तथा महाराष्ट्र में देश की एक तिहाई से अधिक जनसंख्या निवास करती है। घनी आबादी वाले क्षेत्र पश्चिमी एवं पूर्वी तटवर्ती क्षेत्र हैं।

भारत की वर्तमान जनसंख्या 1,270272105 (1.27 बिलियन) है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 1.21 बिलियन थी जो वर्ष 2012 में बढ़कर 1.22 बिलियन हो गई थी। विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश चीन की वर्तमान जनसंख्या 1.36 बिलियन है।

जनसंख्या एवं प्राकृतिक संसाधनों का परस्पर संबंध एवं जनसंख्या का प्रकृति पर दबाव (Population resource relationship & Population pressure) : पर्यावरण के ऊपर बढ़ती हुई जनसंख्या का भारी दबाव है। पर्यावरण के असंतुलन का मुख्य कारण बढ़ती हुई जनसंख्या है जितनी अधिक जनसंख्या बढ़ रही है उतनी ही अधिक खेती योग्य जमीन चाहिए जिसके लिए अंधाधुंध पेड़ काटे जा रहे है। पेड़ काटने से कम जमीन पर लगातार व बार–बार खेती से कृषि योग्य भूमि की उर्वरा शक्ति कम हो रही है तथा वह बंजर होती जा रही है (फसल चक्र तथा कुछ समय जमीन खाली न होने के कारण)। अधिक जनसंख्या, अधिक औद्योगिक इकाईयां, अधिक वाहन, पर्यावरण में निरन्तर विषैली गैंसो का धुंआ छोड़ रहे है–नदियों, नालों के स्वच्छ जल में कारखाने का सीवेज एवं कचरा, नगरों का घरेलू सीवेज जल श्रोतों में मिलाया जा रहा है। बढ़ती हुई जनसंख्या पर्यावरण असंतुलन का सबसे बड़ा कारण है।

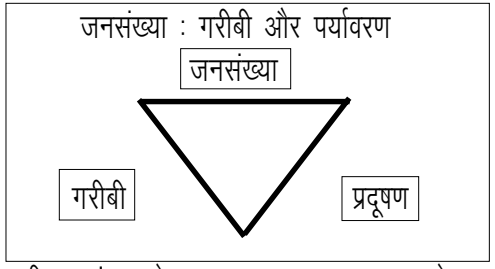

भारत में बढ़ती जनसंख्या के दबाव का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि विश्व में प्रति मिनट 176 जन्म लेने वालों में से 49 बच्चे भारत में ही जन्म लेते हैं। भारत में तीव्र गति से बढ़ रही जनसंख्या के लिए गरीबी, अशिक्षा, धार्मिक अंधविश्वास, सामाजिक परम्पराएं, धीमा आर्थिक विकास आदि मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं। यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद योजनाबद्ध विकास के पथ पर चलकर भारत ने

आर्थिक विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है लेकिन इस बढ़ती जनसंख्या के कारण आर्थिक विकास निष्प्रभावी है। बेरोजगारी की समस्या दिन प्रति दिन गंभीर होती जा रही है। आंकड़े इस बात के साक्षी हैं कि देश में रोजगार के नए अवसर पैदा होने के कारण जितने हाथों को रोजगार मिलता है, जनसंख्या वृद्धि के कारण उससे भी ज्यादा हाथ बेरोजगारों की श्रेणी में शामिल हो जाते हैं। रोजगार की तलाश में लोगों का गांवों से शहरों की ओर पलायन हो रहा है जो शहरों में कई समस्याओं को जन्म दे रहा है।

देश में गरीबी और जनसंख्या वृद्धि का आपस में ऐसा घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया है जिसे अलग नहीं किया जा सकता है। हमारे देश में बेहतर जीवन स्तर को जनसंख्या वृद्धि के संकट से निपटने का आधार माना गया है लेकिन तीव्र गति से जनसंख्या वृद्धि होने के कारण और हमारे तमाम प्रयासों के बावजूद लोगों का जीवन स्तर बेहतर नहीं हो पाया है। अतः जनसंख्या नियंत्रण आज हमारी मूलभूत आवश्यकता बन गयी है। निरन्तर बढ़ती जनसंख्या के भार को आखिर यह पृथ्वी कब तक वहन कर सकती है? धरती की जनसंख्या के भार को सहने की क्षमता निम्न कारकों पर निर्भर करती है –

- पृथ्वी तल का कुल क्षेत्र,
- पृथ्वी की खाद्य उत्पादन की क्षमता,
- ऊर्जा, जल, खनिज एवं अन्य संसाधनों की उपलब्धता,
- तकनीकी ज्ञान का स्तर,
- अपशिष्ट पदार्थों को ग्रहण एवं अपघटन / चक्रीयकरण करने की जैव तन्त्रों की क्षमता, अथवा पर्यावरण के संतुलित बने रहने की क्षमता।

तेजी से बढ़ती जनसंख्या का पर्यावरणीय घटकों पर प्रभाव –

1. जनसंख्या तथा खाद्य सामग्री में असंतुलन – यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारा खाद्यान्न उत्पादन तीन गुना बढ़ा है किन्तु जनसंख्या वृद्धि के कारण आज भी प्रति व्यक्ति उपलब्ध खाद्यान्न काफी कम है। हरित और श्वेत क्रान्ति के बावजूद हमारी स्थिति अच्छी नहीं है, क्योंकि हर साल हमें आस्ट्रेलिया की जनसंख्या के बराबर अधिक लोगों के लिए अन्न जुटाना पड़ता है। वर्तमान समय में कृषि उत्पादन और अधिक बढ़ाने की सम्भावना दिखाई नहीं देती है।

2. प्राकृतिक संसाधनों की कमी – बढ़ती जनसंख्या के लिए वन, वन्य

जीव–जन्तु तथा खनिज का बड़े पैमाने पर विनाश/दोहन किया जा रहा है जिसके कारण प्रदूषण, भू–क्षरण, बाढ़, सूखा आदि समस्याएं पैदा हो रही हैं।

3. गरीबी एवं बेरोजगारी की समस्या – देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था नष्ट हो चुकी हैं। श्रमिक बल में 2.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हो रही है, जिनके लिए रोजगार उपलब्ध नहीं है। भूमिहीन किसानों की संख्या में वृद्धि से उनका नगर की ओर प्रवास बढ़ रहा है जिससे नगरीय व्यवस्था का संतुलन बिगड़ रहा है।

4. जनसंख्या वृद्धि एवं ऊर्जा संकट – जनसंख्या की बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए खाद्य एवं यातायात के साधनों में उपयोग होने वाले ईधन की खपत और अधिक बढ़ने से उर्जा संकट और बढ़ेगा।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि पर्यावरण को मूल समस्या जनसंख्या से ही है जो आवश्यकता से कहीं अधिक बढ़ चुकी है। हमारे देश में कितने लोग अच्छे जीवन स्तर या सुविधा से रह सकते हैं, हम उस सीमा को कब का पार कर चुके हैं। जनसंख्या की सबसे वांछनीय संख्या वह है जिस में अधिकतम उत्पादन, जीवन का उच्चतम स्तर, पर्यावरण संतुलन, राजनैतिक संतुलन, स्थायित्व, आर्थिक सुरक्षा तथा सांस्कृतिक मूल्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने हेतु पर्याप्त स्वतंत्रता एवं अवसर मिल सकें।

जनसंख्या और पर्यावरण के बीच संतुलन बनाए रखने के उपाय : बदले हुए हालात को देखते हुए आवश्यक है कि पर्यावरण तथा जनसंख्या के मध्य संतुलन स्थापित किया जाए। अब इस विषय में चिंताएं उभरने लगी है। विश्व के देश मिलजुल कर सार्थक कदम उठाने की कोशिश कर रहे हैं। ''रियो–डी–जनेरो'' में सम्पन्न विश्व के राष्ट्राध्यक्षों का सम्मेलन इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। मान्ट्रियल तथा म्यूनिख घोषणापत्र संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी इस दिशा में अच्छे प्रयास किए हैं। सन् 1972 में विश्व के 133 राष्ट्रों के सम्मेलन उपरान्त बने घोषणापत्र में कहा गया था कि ''इतिहास उस बिन्दु तक पहुंच चुका है अब हमें हमारे कार्यों को एक निश्चित रूप देना है तथा पर्यावरणीय परिणामों की विद्वतापूर्ण देखरेख करनी है।'' इस सम्बन्ध में पूर्व महासचिव 'पेरेज–द–कइयार' ने कहा था कि ''आज प्रश्न पृथ्वी के भविष्य का है।'' व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक मनुष्य इस संतुलन को बनाए रखने में अपना सहयोग दे सकता है जो निम्नानुसार है –

1. प्रत्येक मनुष्य को ''छोटा परिवार–सुखी परिवार'' की अवधारणा का पालन करना होगा क्योंकि केवल इसी को मूल–मंत्र मानकर जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाई

जा सकती है।

2. सभी मनुष्यों को समान रूप से शिक्षा उपलब्ध कराना। यदि सभी मनुष्य शिक्षित होंगे। तो वे पर्यावरण के प्रति जागरूक होगे। आज इसी जागरूकता की आवश्यकता पर्यावरण को है।

3. सभी शैक्षणिक स्तरों पर पर्यावरण को पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा बनाना होगा।

4. वनों की कटाई रोकना व नए वृक्ष लगाना परन्तु वृक्षारोपण के पूर्व यह सुनिश्चित कर लें कि क्या लगाया जाने वाला वृक्ष उस क्षेत्र के लिए लाभप्रद है।

5. पर्यावरण को बचाने व जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए जन चेतना अभियान चलाना आवश्यक है तथा इस अभियान की डोर नवयुवकों को थामनी होगी।

6. जनसंख्या नियंत्रण हेतु कड़े एवं व्यवहारिक नियम कानूनों का बनाया जाना एवं सभी स्तरों पर उनका क्रियान्वयन भी बहुत आवश्यक है।

जनसंख्या वृद्धि और पर्यावरण

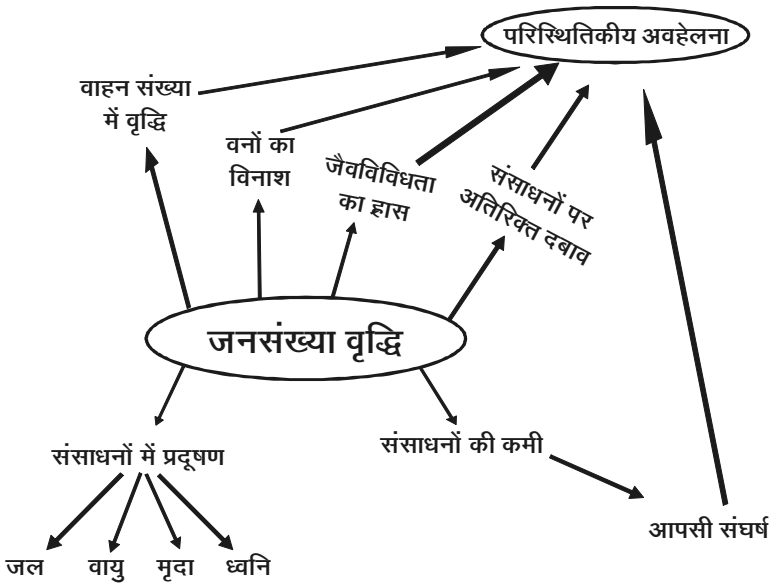

अध्याय – 5
परिस्थितिकी एवं परितंत्र

परिस्थितिकी (Ecology)

हम जितने भी ग्रहों को जानते हैं, उनमें केवल पृथ्वी पर ही जीवन है। पृथ्वी पर लाखों प्रकार के जीव रहते हैं। ये सभी आपस में एक दूसरे से और अपने आस पास की सजीव निर्जीव वस्तुओं से किसी न किसी तरह संबंधित हैं। तरह तरह के जीव प्रकृति में कैसे रहते हैं और एक दूसरे पर उनका क्या असर होता है इसी को परिस्थितिकी या इकोलॉजी कहते हैं। दूसरे शब्दों में प्रकृति के अध्ययन को ही परिस्थितिकी कहते हैं। परिस्थितिकी या इकोलॉजी शब्द दो शब्दों से मिल कर बना है। पहला शब्द है – ओइकोस जिसका अर्थ है घर और दूसरा शब्द है – लोगोस जिस का अर्थ है अध्ययन। दोनों शब्दों को जोड़ने से अर्थ बनता है घर का अध्ययन अभिप्राय है सजीवों के निवास का विस्तृत अध्ययन।

परिस्थितिकी को सर्वप्रथम 1869 में हकेल ने परिभाषित किया था। हकेल के अनुसार जंतुओं का उनके अकार्बनिक और कार्बनिक पर्यावरण से संबंध ही परिस्थितिकी है। आज परिस्थितिकी के अध्ययन में जंतुओं के साथ पादप को भी समाहित कर लिया गया है। ओडम (1963) के अनुसार परिस्थितिकी से अभिप्राय, प्रकृति की संरचना एवं उसमें सम्पादित होने वाले समस्त क्रियाकलापों के अध्ययन से है। उक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि परिस्थितिकी, जीव विज्ञान की एक शाखा है जिसमें जीवों के रहने का स्थान, एक ही स्थान विशेष पर रहने वाले जीवों की संख्या व कार्य तथा उनके उस स्थान पर रहने के कारण का अध्ययन किया जाता है।

एक ही स्थान पर जीवों की विविधता और उनका वितरण पर्यावरण से उनके

सामंजस्य को स्पष्ट करता है। जीवों का पर्यावरण से सामंजस्य निम्न तीन स्तरों पर होता है :

1. व्यक्तिगत (Individual) – व्यक्तिगत रूप में जीव अपने आवास और कार्यव्यवहार से पर्यावरण में सामंजस्य स्थापित करते हैं।

2. समूह या जनसंख्या (Population) – जनसंख्या से अभिप्राय एक विशिष्ट स्थान के प्रति इकाई क्षेत्रफल में पाए जाने वाले जीवों की संख्या एवं उनके सम्मिलित कार्यो से हैं।

3. समुदाय (Community) – समुदाय से अभिप्राय एक ही जाति के जीवों के अन्तर्गत विभिन्न प्रजातियों की संख्या तथा उनके आपसी अर्न्तसंबंध से है।

तृतीय स्तर पर समन्वय की व्याख्या करने में प्रथम एवं द्वितीय स्तर पर भी समन्वय के ज्ञान की आवश्यकता होती है। अतः किसी समुदाय के अर्न्तगत प्रजातियों में विभिन्नता की जानकारी के लिए उनकी कार्यकुशलता तथा उस पर्यावरण के अन्य जीवों के साथ अर्न्तसंबंधों का व्यक्तिगत तथा जनसंख्या स्तर पर ज्ञान आवश्यक है। परिस्थितिकी की इकाई है परितंत्र (Ecosystem) जिसके अन्तर्गत जैवसमुदाय (Biotic Community) और अजैविक पर्यावरण (Abiotic Environment) का अध्ययन किया जाता है।

परितंत्र (Ecosystem)

प्रकृति में कोई भी जीव स्वतंत्र रूप से नहीं रहता वह उसी पर्यावरण में उपलब्ध अन्य पौधों तथा जीवों से सामंजस्य में रहता है। यह संबंध या सामंजस्य आकस्मिक या अनियत नहीं होता है। किसी स्थान विशेष पर पाए जाने वाले सभी जीवों उर्जा और संसाधनों की प्राप्ति के लिए एक समन्वित और नियोजित तंत्र (Coordinated & Planned System) के रूप में कार्य करते है।

अतः कहा जा सकता है कि परितंत्र या ईकोसिस्टम एक सीमाबद्ध तंत्र है जिसमें जीवित जीव और अजैविक संरचनाएं समाहित है। इकोसिस्टम (इको–पर्यावरण, सिस्टम–समन्वयित/व्यवस्थित) शब्द से अभिप्राय है, पर्यावरण का व्यवस्थित ज्ञान या पर्यावरणीय घटकों (सजीव व निर्जीव) की पारस्परिक निर्भरता या अर्न्तसंबंधों का ज्ञान। अतः परितंत्र का ज्ञान न सिर्फ प्रकृति में जीवों के वितरण और उनके अर्न्तसंबंधों की व्याख्या करता है अपितु पर्यावरणीय घटकों तथा संसाधनों के प्रबंधन एवं संरक्षण की संचेतना जागृत करने में भी सहायता करता है।

पर्यावरण में कार्यरत किसी भी तंत्र (System) की एक निश्चित सीमा (Boundary) होती है तथा कोई तंत्र एक या अधिक पारस्परिक निर्भर उपतंत्रों (Subsystems) का बना हो सकता है। आमतौर पर प्रकृति में पाए जाने वाले तंत्र दो प्रकार के हो सकते है :

1. बंद तंत्र (Closed System) – इस प्रकार के तंत्र में कोई पदार्थ या ऊर्जा जो तंत्र में प्रविष्ट होती है वह तंत्र की सीमा से बाहर नहीं जा पाती है।

2. खुला तंत्र (Open System) – इस प्रकार के तंत्र में, तंत्र की सीमा के अंदर और बाहर के मध्य पदार्थो और उर्जा का मुक्त आदान प्रदान हो सकता है। खुले तंत्र में किसी पदार्थ या ऊर्जा के प्रविष्ट होने को Input कहते है। प्रकृति में ब्रम्हांड (Universe) को छोड़कर, परितंत्र सहित सभी खुले तंत्र है। परन्तु आदान प्रदान का क्षेत्र कम या अधिक विस्तृत हो सकता है। उदाहरण के लिए एक नदी के परितंत्र में पानी का प्रवाह निरंतर पदार्थो को अनुप्रवाह (Downstream) में ले जाता रहता है जबकि एक तालाब की स्थिति इससे कहीं भिन्न होती है।

विभिन्न प्रकार के तंत्र

बंद तंत्र खुला तंत्र

(– – – – तंत्र की सीमाएं, आपसी लेनदेन, उपतंत्र)

प्राकृतिक परितंत्र आकार और आपसी निर्भरता में भिन्नता प्रदर्शित करते हैं। सबसे बड़ा और शायद लगभग पूर्ण रूप से आत्म निर्भर तंत्र जैवमंडल (Biosphere) है। समुद्र, नदी, तालाब, जंगल, घास के मैदान इत्यादि कुछ छोटे आकार के परितंत्र है। सैद्धांतिक रूप से पानी की एक छोटी बूंद भी अपने संगठक जीवों व अवयवों सहित एक परितंत्र है। स्थिति, आकार और आत्मनिर्भरता में विभिन्नता के बाद भी आमतौर पर प्रत्येक परितंत्र के आधारभूत संरचना और कार्य एक समान होते हैं। प्राकृतिक परितंत्र जैविक (Biotic or living) तथा अजैविक (Abiotic or Nonliving) घटकों से मिलकर बने होते हैं जिनमें निरंतर पदार्थो और ऊर्जा का आदान प्रदान होता रहता है। इन घटकों के मध्य यही अर्न्तसंबंध परितंत्र की निश्चितता, संरचना तथा कार्यो का कारण होता है।

परितंत्र के घटक (Components of Ecosystem)	
जैविक घटक (Biotic/Living Components)	अजैविक घटक (Abiotic/Nonliving Components)
1. उत्पादक (Producers)	1. वातावरणीय कारक (Climatic Factors)
1.1 हरे पौधे (Green Plants)	1.1 प्रकाश (Light)
1.2 प्रकाश संष्लेशी जीवाणु (Photosynthetic Bacteria)	1.2 ताप (Temperature)
1.3 रसायन संश्लेशी जीवाणु (Chemosynthetic Bacteria)	1.3 गैसें (Gasses)
	1.4 वायु (Air/Wind)
	1.5 नमी (Moisture)
2. उपभोक्ता (Consumers)	2. मृदीय कारक (Edaphic Factor)
2.1 शाकाहारी (Herbivores)	2.1 पोषक तत्व (Nutrient Content)
2.2 मांसाहारी (Cornivores)	2.2 अम्लीयता (Acidity)
2.3 सर्वाहारी (Omnivores)	2.3 नमी (Moisture)
2.4 मृतभोजी (Detrivores)	2.4 मृदीय वायु (Soil Air)
3. अपघटक (Decomposers)	3. भौतिक सतही कारण (Topographic Factor)
3.1 जीवाणु (Bacteria)	3.1 दृष्टिकोण (Aspect)
3.2 कवक (Fungi)	3.2 झुकाव (Angle of Slope)
	3.3 झुकाव की दिशा (Direction of Slope)
	3.4 ऊंचाई (Altitude)

(I) जैविक घटक (Biotic Component) – परितंत्र में पाए जाने वाले समस्त जीवधारियों को जैविक घटक कहते हैं। इनको तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है :

1. उत्पादक : आमतौर पर ये हरे पौधे अर्थात् क्लोरोफिल युक्त पौधे होते हैं जो सौर उर्जा का उपयोग कर वायुमंडल से कार्बन डाई आक्साइड तथा भूमि से पानी तथा खनिज लवण ग्रहण करके शर्करा (भोजन) का निर्माण करते है तथा आक्सीजन

गैस मुक्त करते है। इस प्रक्रिया को प्रकाश संष्लेशण कहते है।

$$6\,CO_2 + 6\,H_2O \longrightarrow C_6H_{12}O_6 + 6\,O_2$$

(वायु मंडल से) (मृदा से) (सौर उर्जा) (पादक कोशिकाओं में) (वायुमंडल में)

हरे पौधों की ही भांति कुछ जीवाणु भी प्रकाश संष्लेशण की प्रक्रिया (सौर ऊर्जा की सहायता से भोजन निर्माण) का प्रयोग भोजन निर्माण हेतु करते हैं इसके साथ–साथ कुछ ऐसे जीवाणु भी है जो सौर उर्जा के स्थान पर उपलब्ध रासायनिक पदार्थो से प्राप्त ऊर्जा का प्रयोग भोजन निर्माण में करते हैं ऐसे जीवाणुओं को रसायन संश्लेशी जीवाणु कहते है। चूंकि इस श्रेणी के जीव अपना भोजन स्वयं बना सकते है अतः इन्हें स्वपोषी (Autotrophs) कहा जाता है।

2. उपभोक्ता : इस श्रेणी में वे जन्तु आते है जो अपना भोजन पौधों या अन्य जन्तुओं को ग्रहण करके प्राप्त करते है। ये अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकते अतः इन्हें विषमपोषी (Heterotrophs) कहा जाता है। अतः इस श्रेणी के जीवों की उर्जा का श्रोत स्वपोशी पौधों या अन्य जीवों से प्राप्त भोजन ही होता है। ये 1. शाकाहारी (जो सिर्फ पादप को भोजन के रूप में ग्रहण करते है।) 2. मांसाहारी (जो जंतुओं को भोजन के रूप में ग्रहण करते है।) और 3. मृतोपजीवी (जो मृत पादप और जंतु शरीरों को भोजन के रूप में ग्रहण करते है) हो सकते हैं।

3. अपघटक : ये सूक्ष्मजीव होते हैं जो मृत कार्बनिक पदार्थो (उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के मृत शरीर या उसके किसी भाग) को सड़ाकर उसे विघटित कर देते है। इस विघटन की प्रक्रिया के फलस्वरूप अकार्बनिक पदार्थ उत्पन्न होते है जो पुनः स्वपोषी (हरे पौधों) द्वारा उपयोग में लाए जाते है। इस प्रकार मृत जीव शरीर के अपघटन की प्रक्रिया को चक्रीयकरण (Recycling) कहते हैं। अपघटक परितंत्र के अनिवार्य घटक है क्योंकि इनकी अनुपस्थिति से चक्रीयकरण की प्रक्रिया नहीं होगी जिससे जीवन के आवश्यक तत्व जटिल पदार्थो के रूप में रहेंगे जिनका उपयोग हरे पौधे नहीं कर पाएंगे। इस श्रेणी के जीवाणु चूंकि अपना भोजन नहीं बना पाते, और मृत जीवों पर निर्भर रहते है अतः इन्हें मृतोपजीवी जीवाणु (Saprobiotic Bacteria) कहते हैं।

मृतोपजीवी जीवाणु (Saprobiotic Bacteria)
- मृत पादप भोजी – जो जीवाणु मृत पौधों को विघटित करते हैं।
- मृत जंतु भोजी – जो जीवाणु मृत जंतुओं को विघटित करते हैं।

(ठ) अजैविक कारक (Abiotic factor) **–** किसी परितंत्र की आधारभूत संरचना एवं कार्यक्षमता निर्धारित करने में ये कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैविक घटकों के वर्णन से भी यह स्पष्ट है क्योंकि परितंत्र के सभी जीवधारी उत्पादकों पर आश्रित होते है और उत्पादक को भोजन निर्माण के लिए ऊर्जा, रासायनिक पदार्थो, अनुकूल वायुमंडलीय स्थितियों, सौर ऊर्जा/उचित मात्रा में प्रकाश, पानी की उपलब्धता पर ही निर्भर रहना पड़ता हैं।

मृदा जीवधारियों के लिए पानी और खनिजों की उपलब्धता का श्रोत है तथा साथ ही यह अपघटकों का आवास भी है। किसी स्थान की जलवायु और वातावरणीय कारकों को प्रभावित करने में भौतिक सतही कारक भी प्रमुख हैं। पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक तत्वों को उनकी पौधे के लिए आवश्यकता के संदर्भ में सूक्ष्म और दीर्घमात्रिक (Micro-& Macro-Nutrients) तत्व कहा जाता है।

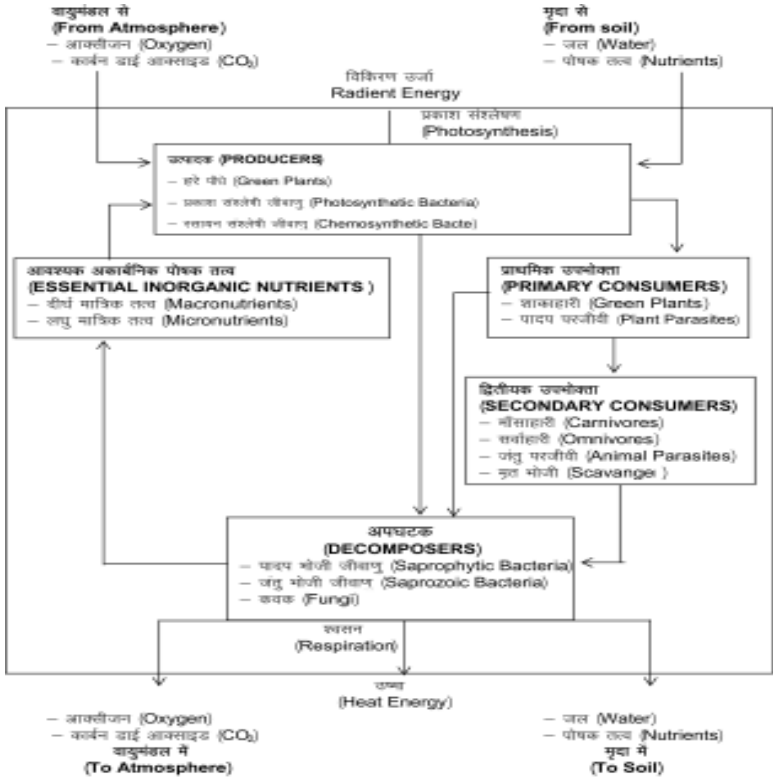

सजीव व निर्जीव घटकों के मध्य अन्तर्संबंध (Interation Between Biotic & Abiotic Factors)

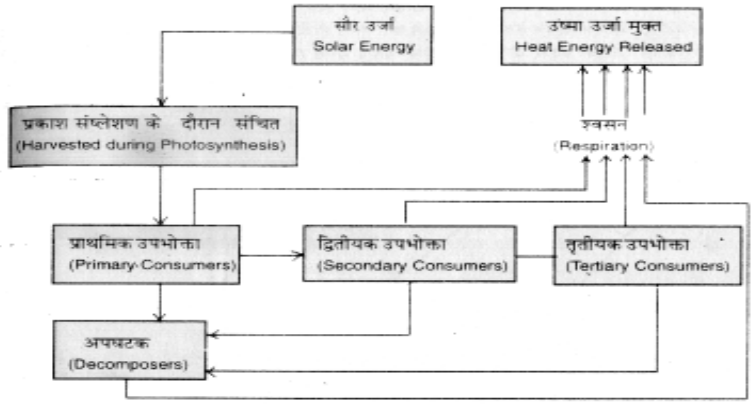

परितंत्र में उर्जा का प्रवाह (Flow of Energy in Ecosystem)

परिस्थितिक तंत्र की पोषक रचना (Trophic Structure of Ecosystem)

परिस्थितिक तंत्र की पोषक रचना के अन्तर्गत पोषक तल (Trophic level), भोजन श्रृंखला (Food Chain) तथा भोजन जाल (Food Web) का समावेश किया जाता है।

(अ) पोषक तल (Trophic Level) : पारिस्थितिक तंत्र मे प्राथमिक उत्पादकों (मुख्यतया पौधो) द्वारा उत्पादित कार्बनिक भोज्य पदार्थों का उपभोग द्वितीयक उत्पादकों द्वारा किया जाता है। द्वितीयक उत्पादकों को प्रथम श्रेणी का उपभोक्ता भी कहते हैं। इनके अन्तर्गत शाकाहारी जन्तु आते हैं। शाकाहारी जन्तुओं को भोजन के रूप में ग्रहण करने वाले जन्तु द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ता कहलाते हैं। इस श्रृंखला में ऐसे मांसाहारी जन्तु जैसे शेर, चीता, गिद्ध इत्यादि भी आते हैं जो अन्य जीवों का भोजन नहीं बनते ये सर्वोच्च द्वितीयक उत्पादक अथवा सर्वोच्च उपभोक्ता (Top Consumers) कहलाते हैं।

"पारिस्थितिक तंत्र की इस उत्पादक उपभोक्ता व्यवस्था के प्रत्येक भोजन स्तर को पोषक तल कहते हैं।" उदाहरणार्थ किसी तालाब या जलाशय के प्राथमिक उत्पादक शैवाल, डेस्मिड्स एवं डायाटम्स (Diatoms) इत्यादि होते हैं। छोटी मछलियां जो इन शैवालों तथा छोटे जलीय पौधों को ग्रहण करती हैं प्रथम पोषक तल का निर्माण करती हैं। इन छोटी मछलियों को बड़ी मछलियां भोजन रूप में ग्रहण करती हैं। वे द्वितीय पोषक तल का निर्माण करती है इन मछलियों को और बड़ी

मछलियां ग्रहण करती है। वे तृतीय पोषक तल कहलाती हैं। इन मछलियों को सारस तथा अन्य जलीय पक्षी तथा जन्तु भक्षण करते हैं वे चतुर्थ पोषक तल के अन्तर्गत आते हैं। इस श्रृंखला के अन्तिम तल के जीव सर्वोच्च उपभोक्ता अथवा सर्वोच्च मांसाहारी कहलाते हैं।

विभिन्न पोषक तलों में उपस्थित जीवित पदार्थ की मात्रा अप्रगामी सस्य (Standing Crop) कहलाती है। इसे किसी इकाई क्षेत्र में कुल जीवों की संख्या के रूप में, ताजे (Fresh) अथवा शुष्क भार (Dry weight) के रूप में तथा जीवित पदार्थ में उपस्थित ऊर्जा की मात्रा के रूप में व्यक्त करते हैं। अप्रगामी सस्य को जब भार के रूप में व्यक्त किया जाता है तब वह जैव भार (Biomass) कहलाता है।

(ब) भोजन श्रृंखला (Food Chain) : किसी परितंत्र में भोजन का स्थानान्तरण क्रमिक या श्रृंखलाबद्ध रूप में होता है। श्रृंखला का प्रत्येक जैविक घटक एक पोषक तल कहलाता है। किसी पारिस्थितिक तन्त्र में जीव जन्तुओं की भोजन से सम्बन्धित उपरोक्त श्रृंखला जिसमें एक छोर पर प्राथमिक उत्पादक व दूसरे छोर पर सर्वोच्च उपभोक्ता होते है भोजन श्रृंखला कहलाती हैं। इस व्यवस्था को, या **"परितंत्र में भोजन स्थानान्तरण की क्रमिक प्रक्रिया को भोजन–श्रृंखला कहते हैं।"** विभिन्न श्रेणी के जीवों उत्पादक, उपभोक्ता, सर्वोच्च उपभोक्ताओं की मृत्यु उपरान्त इन सभी जीवों के मृत शरीर का अपघटन सूक्ष्म जीव करते है जो कि किसी श्रृंखला के अनिवार्य अंग है। ''हरे पौधों से लेकर सर्वोच्च उपभोक्ता तक की श्रृंखला चारण श्रृंखला (Grazing Chain) कहलाती है'' तथा मृत कार्बनिक पदार्थो (मृत जीवो) पर आधारित लघु जीवों की भोजन श्रृंखला को अपरद–श्रृंखला (Detritus Chain) कहते हैं।

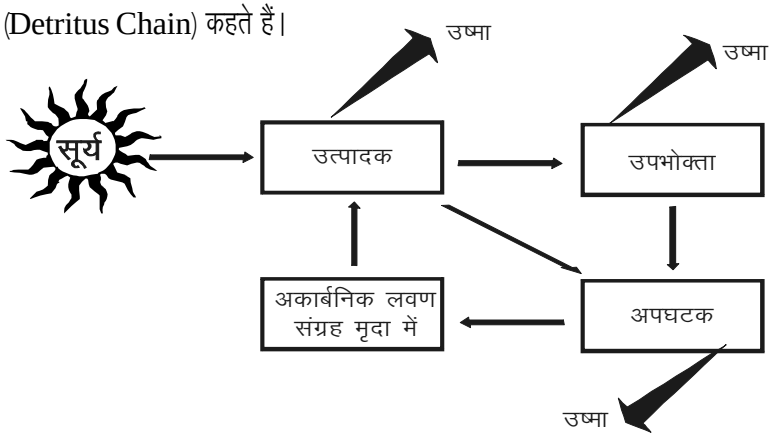

उदाहरण के लिए एक घास के मैदान के परितंत्र की भोजन/खाद्य शृंखला निम्नानुसार हो सकती है –

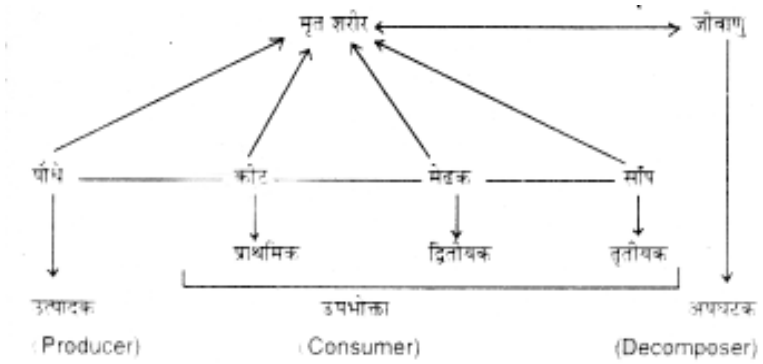

भोजन शृंखला (Food Chain)

(स) भोजन जाल (Food Web) : ''प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र में अनेक भोजन शृंखलाएं होती हैं जो परस्पर कई स्थानों पर जुड़ी रहती है जिससे ये पोषण सम्बन्ध एक रेखा में न होकर एक जटिल जाल का रूप ले लेते हैं जिसे भोजन जाल कहते है।'' उदाहरण के लिए मनुष्य शाकाहारी तथा अनेक स्तरों पर मांसाहारी होता है तथा एक ही समय में विभिन्न भोजन शृंखलाओं में स्थान रखता है जिससे अनेक भोजन शृंखलाएं आपस में जाल की तरह उलझ जाती है। यही भोजन जाल है। आम तौर पर परितंत्र में भोजन का स्थानान्तरण शृंखला बद्ध रूप में नहीं होता है। एक ही परितंत्र में एक से अधिक भोजन शृंखलाएं होती है। ''अतः परितंत्र में उत्पादक तो एक ही होता है परन्तु उस पर आधारित विभिन्न पोषक स्तरों पर भोजन की स्पर्धा होती है और परिणाम स्वरूप एक ही भोजन जीव को एक से अधिक प्रकार के उपभोक्ता भी ग्रहण करते है। इस व्यवस्था को भोजन जाल कहते है।''

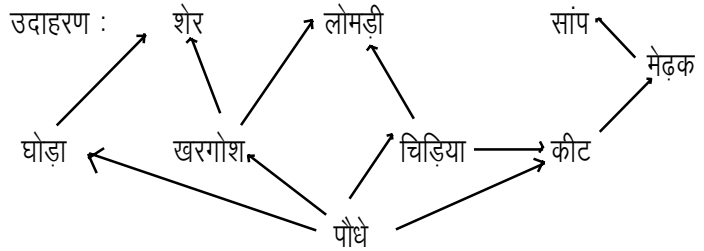

भोजन जाल (Food Web)

पारिस्थितिक तन्त्र तथा खाद्य–शृंखला के अध्ययन से आभास होता है कि खाद्य – ऊर्जा का प्रभाव एक रेखीय रूप (Linear arrangement) में होता है लेकिन वास्तव में पारिस्थितिक तन्त्रों में जीवों का आपसी सम्बन्ध कई विभिन्न शृंखलाओं द्वारा हो सकता हैं जिस समय हम सभी सम्बन्धों के बारे में एक साथ विचार करते हैं तो यह खाद्य–जाल (Food web) कहलाता है। भोजन शृंखला में उत्पादक तथा उपभोक्ता का संबंध स्पष्ट हो जाता है। घास के मैदान के परितंत्र में घास भोज्य पदार्थों का उत्पादन करती हैं, टिड्डा 2घास को, टिड्डे को मेढ़क, मेढ़क को सांप और सांप को बाज भोजन के रूप में ग्रहण करता हैं। यह एक सामान्य खाद्य शृंखला है। इसी प्रकार की अनेक शृंखलाएं जैव मंडल में आपस में जुड़ी रहती हैं। क्योंकि एक जन्तु कई प्रकार के जन्तुओं को आहार रूप में ग्रहण करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि बहुत सी खाद्य शृंखलाएं एक दूसरे पर आश्रित या अन्तर संबद्ध होती हैं। इस कारण कई खाद्य शृंखलाएं मिलकर एक संयुक्त रचना बनाती हैं जिसे खाद्य जाल कहते है। इस प्रकार खाद्य–जाल एक सम्पूर्ण समुदाय के सभी जीवित प्राणियों का एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करता है। उदाहरणार्थ, एक वनीय पारिस्थितिक तन्त्र में यदि सर्वोच्च श्रेणी के उपभोक्ता, जैसे शेर को द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ता न मिलें तो वह हिरन, खरगोश, भैंस, गाय आदि प्राथमिक उपभोक्ताओं को भी अपना भोजना बना सकता है।

(द) परिस्थितिक पिरामिड्स (Ecological Pyramids) : एक समुदाय में बहुत सी खाद्य–शृंखलाएं होती हैं तथा प्रत्येक खाद्य–शृंखला के शिखर पर सर्वोच्च मांसाहारी पशु होता है। एक खाद्य–शृंखला में उत्पादक तथा प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणियों के उपभोक्ताओं की संख्या तथा उनके बीच के सम्बन्ध का एक निश्चित अनुपात होता है तथा सबसे अन्त में मांसाहारी उपभोक्ता की संख्या सबसे कम होती है। यदि इस अनुपात का आंकलन किया जाए तो एक शंकु (Pyramid) के सदृश्य रचना बन जाती है । किसी पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न स्तर के उत्पादक एवं उपभोक्ताओं के आपसी सम्बन्ध को, उनकी संख्या; जैविक भार अथवा ऊर्जा की मात्रा के सम्बन्ध द्वारा बताया जा सकता है' इसी को पारिस्थितिक पिरामिड के अन्तर्गत अध्ययन करते हैं। इसमें उत्पादक जीवों एवं विभिन्न उपभोक्ताओं (क्रम से प्रथम, द्वितीय एवं सर्वोच्च उपभोक्ता) की संख्या जैविक भार या ऊर्जा की मात्रा पिरामिड बना कर दर्शायी जाती है जो क्रमशः आधार से शिखर की ओर दी जाती है।

अब यदि हम संख्या के स्थान पर जीवों के भार अथवा वजन के आधार पर पिरामिड की रचना करें तो हम पाएंगे कि पारिस्थितिक तंत्र में प्राथमिक उत्पादकों

(पौधों, वनस्पति) का जैव भार शाकाहारी जीवों से अधिक होता है। इन शाकाहारी जीवों का भार मांसाहारी प्राणियों से अधिक होता है। इस प्रकार आगे के सभी भोजन स्तरों में जैवभार कम होता चला जाता है। इस प्रकार जैवभार का एक सीधा पिरामिड बनता है। उदाहरण के लिए किसी वन के एक वर्गमीटर क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले कुल वृक्षों का भार, उसी क्षेत्रफल में पाए जाने वाले जन्तुओं के भार से अधिक होगा। इसके विपरीत जलीय परिस्थितिक में पाए जाने वाले जैवभार पिरामिड उल्टे होते हैं, उदाहरणार्थ मछलियों वाले तालाब में प्राथमिक उत्पादक जैसे शैवाल तथा डेस्मिड्स का भार शाकाहारी मछलियों से कम होता है जो इनको ग्रहण करती हैं। मांसाहारी मछलियां जो इन शाकाहारी मछलियों को खाती हैं यद्यपि संख्या में कम होती हैं पर उनका भार अधिक होता हैं। इस प्रकार जलीय पारिस्थितिक तंत्रों का जैवभार पिरामिड उल्टा दृष्टिगत होता है। शुष्क जैव भार की मात्रा ही इन पिरामिडों में दी जाती है।

जैव परितंत्रों के प्रकार : जैव परितंत्रों को मूल रूप से दो भागों में बांटा जा सकता हैं –

1. जलीय परितंत्र (Water Ecosystem)
2. स्थलीय परितंत्र (Terrestrial Ecosystem)

1. जलीय परितंत्र (Water Ecosystem)

जलीय परितंत्रों को मूल रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है

1. स्थिर और चारों और से घिरे हुए जैसे – तालाब
2. बहते हुए सतही जैसे – नदियां
3. समुद्री परितंत्र

परितंत्र चाहे किसी भी प्रकार का हो उसकी आधारभूत संरचना और कार्य एक ही प्रकार का होता है। उदाहरण के लिए जलीय परितंत्र में उत्पादक, उपभोक्ता और अपघटक तीनों ही प्रकार के प्राणी पाए जाते है।

● जलीय परितंत्र में भोजन बनाने का कार्य अर्थात उत्पादक सूक्ष्म तैरने वाले पौधे होते हैं जिन्हे पादप प्लवक (Phytoplankton : Phyto = Plant; Plankton = Floating) भी कहते है। ये सूक्ष्म आकार के जीव जल में घुलित विभिन्न कार्बनिक पदार्थों को अवशोषित कर सूर्य के प्रकाश की सहायता से भोजन का निर्माण करते हैं। पादप प्लवकों के अतिरिक्त कुछ मात्रा में बड़े प्लवनशील पौधे भी तालाबों में पाए जाते हैं। जड़युक्त ये पौधे कम गहराई वाले जलीय क्षेत्र में उगते है क्योंकि प्रकाश

संश्लेशण हेतु प्रकाश की आवश्यकता के लिए इन पौधों को पानी की सतह तक आना अनिवार्य है।

● जलीय परितंत्र में द्वितीय स्तर अर्थात – प्राथमिक उपभोक्ता जन्तु प्लवक, अनेक प्रकार के लार्वा, छोटी–छोटी मछलियां आदि पाई जाती हैं। ये प्राथमिक उपभोक्ताओं या उनके उत्पाद्यों को भोजन रूप में ग्रहण करते हैं।

● जलीय परितंत्र में तृतीय स्तर पर बड़ी मछलियां एवं बड़े कीट पाए जाते हैं। जो द्वितीयक उपभोक्ता होते है ये प्राथमिक उपभोक्ताओं पर अपने भोजन के लिए आश्रित होते हैं।

● उत्पादक एवं विभिन्न श्रेणी के उपभोक्ताओं की मृत्यु उपरान्त परितंत्र में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के कवक और जीवाणु अपघटक का कार्य करते हैं। यह मृत पादप/जीवों के शरीर को अपघटित कर देते है जिससे उन जीवों के शरीर में संचित पोषक पदार्थ जलीय वातावरण में स्वतंत्र हो जाते हैं और पुनः उत्पादकों द्वारा ग्रहण किए जाने हेतु उपलब्ध हो जाते हैं।

1. स्थिर और चारों तरफ से घिरे हुए जलीय तंत्र जैसे तालाब : उपरोक्त व्यवस्था चारों ओर से सीमाबद्ध या घिरे हुए जलीय परितंत्र की है जिसमें पानी या कोई अन्य पदार्थ तंत्र में आ तो सकता है परन्तु उसके तंत्र से बाहर जाने की संभावना कम ही होती है। उदाहरण के लिए तालाबों का परितंत्र। यही कारण है कि ये परितंत्र एक जटिल समस्या से ग्रस्त हो जाते हैं और वह समस्या है **यूट्रोफिकेशन**। किसी जलीय तंत्र में यदि पोषक तत्वों उदा. फास्फेट, नाइट्रेट आदि पदार्थो की अधिकता हो जाती है तो इन तंत्रों में उत्पादकता बहुत बढ़ जाती है अर्थात उत्पादक समूह की प्रजातियों की वृद्धि इस तंत्र में बहुत बढ़ जाती हैं और ये उत्पादक इतने ज्यादा संख्या में बढ़ जाते है कि वे जलीय तंत्र की उपरी सतह को ढक लेते हैं इस अवस्था को Bloom कहते हैं। इस अवस्था में सूर्य प्रकाश तंत्र में प्रवेश नहीं कर पाता और तंत्र में सड़ने की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है जिससे ये तंत्र बदबूदार गड्ढों का रूप ले लेते हैं।

जलीय तंत्रों को उनकी उत्पादकता के आधार पर दो भागों में बांटा गया है **यूट्रोफिक** (पोषक पदार्थो की अधिकता वाले तंत्र) और **आलिगोट्राफिक** (पोषक पदार्थो की कमी वाले तंत्र) आज के समय की एक और समस्या जन्म ले चुकी है और वह है तंत्रों में मलजल (सीवेज) प्रवाहित कर उन्हें अन्जाने में कृत्रिम रूप से यूट्रोफिक बनाना।

इस प्रकार कृत्रिम यूट्रोफिकेशन यद्यपि तंत्र में अकार्बनिक पदार्थो की मात्रा बढ़ाकर तंत्र को अधिक उत्पादक बना सकता है और इससे उपभोक्ताओं की संख्या में भी वृद्धि हो जाएगी परन्तु तंत्र का प्राकृतिक स्वरूप परिवर्तित हो जाता है जिससे उदाहरण के लिए इस नए वातावरण में सामंजस्य रखने वाली मछलियों की प्रजाति बढ़ जाएगी। जो शायद उस पर्यावरण के लिए उपयोगी न हो। इसी प्रकार साफ और आक्सीजन की अधिकता एवं अपेक्षाकृत ठंडे पानी में जीवित रहने वाली मछलियां उस तंत्र से गायब हो सकती है।

इन तंत्रों का एक और महत्वपूर्ण गुण है वह है स्तरीकरण (Zonation)। गर्म (Temperate) क्षेत्रों में, गर्मियों और ठंड में अक्सर इन तंत्रों के उपरी और निचले भाग, तापमान विभिन्नता (Temperature Difference) के कारण पृथक हो जाते हैं। इनका उपरी भाग इपिलिम्निीआन (Epilimnion) और तली वाला भाग हाइपोलिम्नीआन (Hypolimnion) कहलाता है। तापमान विभिन्ता के कारण अलग हुई इन दो परतों के मध्य पदार्थों का आदान प्रदान नहीं हो पाता और परिणामस्वरूप तलीय भाग (Hypolimnion) को आक्सीजन नहीं मिल पाती और सतही भाग (Epilimnion) को पोषक पदार्थ नहीं मिल पाते हैं परिणामस्वरूप दोनों ही स्तरों में चलने वाली जैविक प्रक्रियाएं इससे प्रभावित होती हैं। बरसात और Spring मौसम में इन दोनों स्तरों की तापमान विभिन्नता समाप्त हो जाती है और स्तरीकरण (Zonation) समाप्त हो जाता है।

2. बहते हुए सतही जैसे नदियां–स्वच्छ जलीय परितंत्र (Fresh Water Ecosystems) : उदाहरण के लिए नदियों के परितंत्र का गठन तो उत्पादक, उपभोक्ताओं और अपघटकों से ही होता है परन्तु बहता हुआ जल होने के कारण यह तंत्र अपने आप में विशिष्ट होता है। जलग्रहण क्षेत्र (Catchment Area) पर होने वाली गतिविधियां भी तंत्र को प्रभावित करती है। परन्तु बहते हुए जल होने का एक प्रमुख लाभ यह है कि आने वाली अशुद्धियां/रसायन (जो किसी भी स्त्रोत से प्रविष्ट हो सकते हैं) का तनुकरण काफी हद तक उसके प्रभाव को कम कर देता है। इस बात को एक सरल उदाहरण से समझा जा सकता है कि आप एक चुटकी रंग को एक ग्लास पानी में डालेंगे तो रंग आपको दिखेगा और यदि आप उसी मात्रा को एक बड़ी बाल्टी में डाल देंगें तो शायद ही उसका कोई देखने योग्य परिवर्तन आपको मिले। जलीय परितंत्रों का उपयोग मानव द्वारा अनेकों उपयोगों जैसे पीना, नहाना, पूजा सामग्री विसर्जन, मछली उत्पादन, वर्ज्य पदार्थ निष्पादन (Waste

Disposal) आदि के लिए अनियंत्रित रूप से किया जाता है। इन तंत्रों में उत्पादकता का दायित्व प्रायः जल ग्रहण क्षेत्रों से इस तंत्र में प्रविष्ट हो रहे रासायनिक पदार्थों पर निर्भर करता है। बहते हुए जलीय तंत्र में परितंत्र के घटक के रूप में पादप प्लवक, जंतु प्लवक, कीट एवं मछलियां प्रमुख रूप से पाई जाती हैं।

3. समुद्री परितंत्र (Marine Ecosystem) : विश्व के प्रमुख समुद्र अटलांटिक, पैसीफिक, भारतीय, आर्कटिक और अंटार्कटिक और उनके विस्तार पृथ्वी की सतह का लगभग 70 प्रतिशत भाग ढके हुए है। समुद्रों में हर गहराई पर जीवन है और इनका विस्तार अधिक है अतः इन्हें सबसे बड़ा एवं जैव विविधता की दृष्टि से काफी धनी परितंत्र माना जा सकता है। समुद्री परितंत्र में सूक्ष्म जीवाणु से लेकर स्थूलाकार प्राणी तक पाए जाते हैं। इस परितंत्र का बहुत थोड़ा सा भाग ही उत्पादक होता है। परन्तु यह थोड़ा सा भाग भी भोजन श्रृंखला के लिए पर्याप्त होता हैं। उदाहरण के लिए एक समुद्रीय खाद्य श्रृंखला निम्नानुसार हैं –

पादप प्लवक ⟶ जन्तु प्लवक ⟶ छोटी मछली ⟶ बड़ी मछली ⟶ सूक्ष्म जीव

2. स्थलीय परितंत्रों (Terrestrial Ecosystem)

स्थलीय परितंत्रों को भी मूल रूप से तीन भागों में विभाजित किया जाता है –

- घास के मैदान का परितंत्र (Grassland Ecosystem)
- रेगिस्तानी या मरूस्थलीय परितंत्र (Desert Ecosystem)
- वनीय परितंत्र (Forest Ecosystem)

घास के मैदानों का परितंत्र (Glassland Ecosystem) : यह एक प्रमुख स्थलीय परितंत्र है क्योंकि यह तंत्र जैवविविधता के लिए आदर्श परिस्थितियां निर्मित करता है। ओडम के अनुसार इस तंत्र को भी उसके किए गए उपयोगों के आधार पर चार प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है –

- सामान्य घास के मैदान,
- अत्यधिक पशु चराई वाले घास के मैदान जो मानव निर्मित रेगिस्तान का रूप ले लेते है,
- सामान्य पशु चराई परन्तु अच्छी स्थिति वाले घास के मैदान, तथा,
- घास के मैदान जिन्हें अनाज उत्पादन के लिए उपयोग किया जा रहा है।

छोटे हरे पौधे (घास) से लेकर बड़ी झाड़ियां और कुछ बड़े पौधे तक इस परितंत्र में उत्पादक होते हैं। ये परितंत्र इस दृष्टि से भी विशिष्ट होते है कि इन्हें पानी की

पर्याप्त उपलब्धता होती है और साथ ही इन्हें पोषक पदार्थ भी पर्याप्त मात्रा में मिलते रहते हैं क्योंकि अधिकतर छोटे पौधों का जीवन कम समय का होता है और वे मृत्यु उपरान्त मृदा में ही सड़कर ह्यूमस पदार्थों की मात्रा बढ़ाते रहते है। यह चक्र निम्नानुसार चलता है –

हरे पौधे ⟶ मृत्यु उपरान्त सड़ने की प्रक्रिया ⟶ ह्यूमस निर्माण ⟶ सूक्ष्म जीवों की विघटन प्रक्रिया द्वारा

↓ Mineralization

मृदा की उर्वरता में वृद्धि ⟵ पोषक तत्व मृदा को प्राप्त

उपरोक्त प्रक्रियाओं में से ह्यूमस निर्माण की प्रक्रिया कम समय लेती है परन्तु इनसे पोषक तत्वों को मुक्त करने वाली प्रक्रिया Mineralization एक लम्बी प्रक्रिया है जिसमें काफी समय लगता हैं। घास के मैदान वाले परितंत्रों में वनीय परितंत्रों की अपेक्षा ह्यूमस की मात्रा 5 से 10 गुना अधिक होती है।

छोटे हरे पौधों को भोजन रूप में ग्रहण करने वाले बड़े शाकाहारी जीवों की इस तंत्र में अधिकता होती है मुख्य रूप से ये उपभोक्ता स्तनी वर्ग के प्राणी होते है। इसके अतिरिक्त कुछ कीट और अन्य प्रजातियों के जीव भी इस तंत्र में प्राथमिक और द्वितीयक उपभोक्ता होते हैं। उदाहरण के लिए घास के मैदान के परितंत्र का एक उदाहरण निम्नानुसार हैं–

घास ⟶ कीट ⟶ मेढ़क ⟶ सांप ⟶ सूक्ष्म जीव

घास के मैदान की खाद्य श्रृंखला बहुत छोटी भी हो सकती है। उदाहरण के लिए –

घास ⟶ कीट ⟶ सूक्ष्म जीव

प्राकृतिक आवासों में खाद्य श्रृंखला इससे बड़ी भी हो सकती है। उदाहरण के लिए –

घास	⟶	कीट	⟶	टिड्डे	⟶	मेढ़क	⟶	सांप	⟶	सूक्ष्म जीव
↓		↓		↓		↓		↓		↓
उत्पादक		शाकाहारी		I मांसाहारी		II मांसाहारी		III मांसाहारी		अपघटक

रेगिस्तानी क्षेत्रों (Desert Area) के परितंत्र ऐसे क्षेत्र होते है जो पानी की कमी से जूझते रहते है। यहां कुल वर्षा लगभग 10 इंच होती है। इस क्षेत्र के जीव भी विशिष्ट प्रकार से इस शुष्क वातावरण के लिए अनुकूलित होते हैं इस अनुकूलन का प्रमुख कारण यह है कि इस क्षेत्र के जीवों को अपने शरीर के तापक्रम का नियंत्रण करने के लिए समुचित पानी उपलब्ध नहीं होता है। जबकि आम तौर पर सभी जीव

धारी पानी के द्वारा अपने शरीर के तापक्रम को नियंत्रित करते है। शुष्क झाड़ियां, कांटें युक्त पौधे एवं पानी की मात्रा को संचित करने के लिए सरस (Succelent) पौधे इस क्षेत्र के प्रमुख उत्पादक होते हैं। उपभोक्ता मूल रूप से सरीसृप प्रजाति (रेंगकर चलने वाले जीव समूह जिनके शरीर पर शल्क (Scales) पाए जाते है) के जीव, कुछ कीट और ऊंट जैसे जीव जिनमें अपने शरीर में काफी लम्बे समय तक के उपयोग के लिए पानी संचय करने की क्षमता होती है, इस क्षेत्र की पहचान होते हैं।

वनीय परितंत्र (Forest Ecosystem) वनीय परितंत्र खुले समुद्रीय परितंत्र के समान ही अत्यधिक विस्तृत जैव तंत्र होते है। इन परितंत्रों में जैव प्रजातियों का विस्तार अति सूक्ष्म से अति वृहद जीवों तक होता है। उदाहरण के लिए वनीय परितंत्र की एक खाद्य श्रृंखला निम्नानुसार हैं –

छोटे हरे पौधे ⟶ खरगोश ⟶ भेड़िया ⟶ शेर ⟶ सूक्ष्म जीव

मानव और परितंत्र (Man & Ecosystem)

मानव, जीव विज्ञान की दृष्टि से जंतु और प्राकृतिक वातावरण का ही एक अभिन्न अंग है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि मानव पर्यावरण के बेहतर उपयोग और पर्यावरण के प्रति अपनी जिम्मेदारी को समझे। मानव का स्थान उसकी सर्वाहारी प्रवृत्ति के कारण खाद्य श्रृंखला में उपभोक्ता स्तर है। अपनी खाद्य व्यवहार आदत के अनुसार मानव शाकाहारी या प्राथमिक उपभोक्ता, मांसाहारी या द्वितीयक उपभोक्ता, तथा सर्वाहारी या तृतीयक उपभोक्ता हो सकता है।

आदिकाल में मानव प्रकृति पर पूर्ण रूप से निर्भर था। तात्पर्य यह कि उसने प्रकृति से छेड़छाड़ तो की परन्तु वह प्रभावी नहीं हुई क्योंकि जनसंख्या कम थी। धीरे–धीरे जनसंख्या बढ़ी तो मूलभूत आवश्यकताओं में वृद्धि हुई। जनसंख्या में अचानक वृद्धि का कारण हुआ नई दवाइयों की खोज, नई चिकित्सकीय प्रणालियों की खोज जिसका परिणाम यह हुआ कि मृत्यु दर कम हो गई। 18 वीं शताब्दी के आते–आते मानव ने प्रकृति को काफी हद तक अपने आधिपत्य में ले लिया और बिना किसी अंकुश के, भविष्य से अनजान रहते हुए प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन प्रारंभ कर हर संभव प्रकृति को अपनी आवश्यकतानुसार ढालने का प्रयास किया। नवीन तकनीकियों और सभ्यता के विकास के सम्मिलित परिणाम स्वरूप अनजाने में उसने अनेकों समस्याओं जैसे संसाधनों की कमी और बचे हुए संसाधनों में प्रदूषण, वायुमंडल में तापवृद्धि, ओजोन परत क्षय तथा जैव प्रजातियों के विलुप्तीकरण आदि को जन्म दे

दिया है, जो आज स्वयं मानव के अस्तित्व के लिए ही खतरनाक साबित हो रही है।

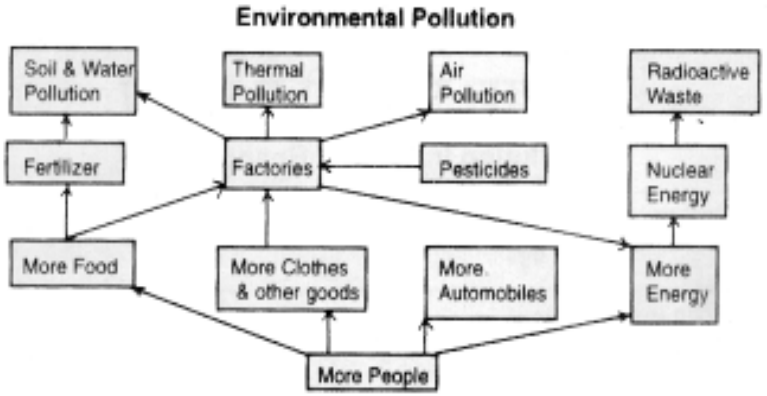

उपरोक्त मानवीय क्रियाकलापों तथा उनसे उत्पन्न होने वाली समस्याओं के परिपेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि परिस्थितिक तंत्र और मानव एक दूसरे के अभिन्न अंग है। मानवीय क्रिया–कलाप परिस्थितिक तंत्र को प्रभावित करने की क्षमता अवश्य रखते हैं परन्तु परितंत्र के प्रभावित होने पर अहित भी मानव का ही है। आधुनिक काल में मानव ने अपनी बुद्धि के बल पर पर्यावरण के प्रति अनुकूल होने के स्थान पर पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास किया जिसके परिणामस्वरूप आज मानव अपने ही क्रिया कलापों के परिणामों से जूझ रहा है।

अध्याय – 6

ठोस अपशिष्ट

आज हम अपनी वैज्ञानिक एवं औद्योगिक प्रगति से गौरवान्वित हैं क्योंकि इसी के द्वारा हमें अनेक सुख सुविधाएं उपलब्ध हुई है। परन्तु इसके द्वारा जहां एक ओर जीवन की गुणवत्ता में सुधार हुआ है, वहीं पर्यावरण अपकर्षण की समस्या का जन्म हुआ है, जिससे आज सम्पूर्ण विश्व चिंतित है। औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा में निरंतर वृद्धि हो रही है और इनके निस्तारण की उचित व्यवस्था न होने से पर्यावरण के गुणवत्ता स्तर में कमी आ रही है। अतः इस समस्या का समुचित विश्लेषण एवं निदान आवश्यक है। तीव्र शहरीकरण एवं गांवों से लोगों के शहरों में विस्थापन के कारण बढ़ती जनसंख्या भयावह स्थिति में पहुंच चुकी है। इससे नगरीय ठोस अपशिष्ट प्रबंधकों पर शहर को स्वच्छ एवं वातावरण को प्रदूषण मुक्त रखने में अत्यधिक दबाव बढ़ा है। परिणामस्वरूप, हमारे शहरों को पर्यावरण की गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

ठोस अपशिष्ट पदार्थ

ठोस अपशिष्ट पदार्थों से तात्पर्य उन पदार्थों से है, जिन्हें प्रयोग के पश्चात् अनुपयोगी मानकर फेंक दिया जाता है। इसमें एक ओर मानव द्वारा उपयोग में लाए पदार्थ जैसे कागज, बची फल, सब्जियां, कपड़ा, प्लास्टिक कांच, रबर आदि है तो दूसरी ओर हैं उद्योगों से निस्तारित तरल पदार्थ एवं ठोस अपशिष्ट। यह समस्या ग्रामों की अपेक्षा नगरों में अधिक है क्योंकि जनसंख्या के जमाव तथा उद्योगों के केन्द्रीकरण से नगरों मेंअपशिष्ट पदार्थों की मात्रा में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका जैसे विकसित देश में नगरीय अपशिष्टों की मात्रा प्रतिवर्ष 4.34 करोड़ टन होती है। भारत जैसे देश में जहां कूड़ा करकट निस्तारण की व्यवस्था नहीं है, वहीं

इसकी मात्रा कई गुना अधिक है। अपशिष्ट पदार्थों को उनकी उत्पत्ति के आधार पर चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

1. घरेलू अपशिष्ट – घरों में प्रतिदिन सफाई के पश्चात गंदगी निकलती है जिसमें धूल मिट्टी के अतिरिक्त कागज, गत्ता, कपड़ा, प्लास्टिक, लकड़ी, धातु के टुकड़े, सब्जियों एवं फलों के छिलके, सड़े–गले पदार्थ, सूखे फूल, पत्तियां आदि सम्मिलित होते हैं। ये सभी पदार्थ घरों से बाहर, सड़कों, निर्धारित स्थानों के साथ कहीं पर भी डाल दिए जाते हैं जहां इनके सड़ने से न केवल प्रदूषण बल्कि अनेक रोगों की उत्पत्ति भी होती है। एक अध्ययन के अनुसार एक शहरी नागरिक प्रतिदिन 300 से 1000 ग्राम कचरा उत्पन्न करता है। इस प्रकार भारत के दिल्ली महानगर में 4000 हजार टन, बैंगलूर में 850 टन, अहमदाबाद में 1280 टन, कलकत्ता में 3150 टन और मुंबई में 6050 टन, कचरा प्रतिदिन निकलता है। शहरी कचरे में प्लास्टिक, कागज, धातु और कांच की मात्रा 15 प्रतिशत तक पाई गई है। जलाने योग्य सामग्री 40 प्रतिशत तक होती है। शेष व्यर्थ पदार्थ होता है जिसे उपयोग में नहीं लाया जा सकता। यह व्यर्थ पदार्थ कचरे का ढेर बन जाता है, जिन स्थानों पर इसका सही ढंग से निवारण ;क्पेचवेंसद्ध नहीं होता वे बैक्टीरिया, चूहों, मक्खियों तथा मच्छरों के घर बन जाते हैं। इससे प्लेग, डायरिया जैसी अनेक बीमारियां फैलती हैं। भारत में कुछ वर्ष पूर्व प्लेग की महामारी से सम्पूर्ण देश आतंकित था तथा स्थान–स्थान पर कचरे के ढेर से प्रदूषण का खतरा और अधिक बढ़ रहा है।

भारत के नगरों में राख मिश्रित पदार्थ एवं कार्बन के रूप में लगभग 90 प्रतिशत कूड़ा कर्कट होता है। विकसित देशों में इसकी प्रकृति भिन्न होती है जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में 42 प्रतिशत कागज एवं गत्ते की वस्तुएं, 24 प्रतिशत धातु पदार्थ और 12 प्रतिशत अपशिष्ट खाद्य पदार्थ होते हैं। इनमें मकानों के तोड़ने से निकले अवशेष तथा वर्कशाप आदि से फेंके गए पदार्थ भी सम्मिलित होते हैं। वास्तव में शहर/कस्बे की संपूर्ण गंदगी इसमें सम्मिलित है। इसकी मात्रा नगर की जनसंख्या एवं विस्तार पर निर्भर हैं एक अनुमान के अनुसार भारत के 45 बड़े नगरों से कुल मिलाकर प्रतिदिन लगभग 50000 टन नगरपालिका अवशिष्ट निकलता है। एक अन्य अध्ययन के मुताबिक भारत में 55 मिलियन टन से अधिक शहरी कचड़ा निकलता है। कचड़ा उत्पन्न होने की वार्षिक वृद्धि दर 5 प्रतिशत आंकी गई। ऐसा आंकलन है कि छोटे, माध्यम और बड़े शहरों में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन क्रमशः 0.1 कि.ग्रा. 03 से 04 किग्रा. और 05 किग्रा कचड़ा उत्पन्न होता है।

2. **औद्योगिक एवं खनन अपशिष्ट –** विभिन्न उद्योगों जैसे कागज एवं गत्ता मिलें, तेल शोधन कारखाने, रासायनिक एवं उर्वरक उद्योग, चीनी उद्योग, ताप विद्युत गृह आदि भूमि प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं। इनसे निकले औद्योगिक व्यर्थ पदार्थों में विषैली धातुएं होती हैं। इन औद्योगिक व्यर्थ पदार्थों का निपटारा एक कठिन समस्या है। कल कारखानों के अवसाद, टीन एवं कांच के टुकड़े, पॉलीथीन के थैले, प्लास्टिक की वस्तुएं आसानी से विघटित नहीं होते और आसपास की भूमि को कुछ समय के बाद अनुपयोगी बना देते हैं। औद्योगिक अपशिष्टों में भारी धातुएं (कैडमियम, लेड, क्रोमियम, निकेल, जिंक, ताम्र आदि) भी रहती हैं। जिससे कुछ समय बाद जब खेती की जाती है तो अधिक मात्रा में उपस्थित होने से ये धात्विक अवशेष अंकुरण से लेकर बीज निर्माण तक प्रभावित करते हैं। जब इन अन्नों, सब्जियों एवं फलों को खाद्य रूप में ग्रहण किया जाता है तो स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। भारत में कैडमियम बैटरी बनाने वाले उद्योगों में प्रदूषण के कारण 4000 व्यक्तियों की मृत्यु हो चुकी है।

तालिका : औद्योगिक अपशिष्ट

उद्योगों के प्रकार	अपशिष्ट
औषधि निर्माण उद्योग	सूक्ष्मजीव, कार्बनिक रसायन
कपड़ा उद्योग	रेशा एवं व्यर्थ कपड़ा
रासायनिक उद्योग	कच्चा माल, मध्यक एवं अमित उत्पाद
पेट्रोलियम उद्योग	शोध रसायन
उर्वरक उद्योग	आमंक के रूप में ठोस अपशिष्ट
तापीय ऊर्जा संयंत्र	उड़न राख, अधजले कार्बन
रबर एवं रबर उत्पाद	रबर

उद्योगों से बड़ी मात्रा में कचरा एवं उपयोग में लाए गए पदार्थों के अपशिष्ट बाहर फेंके जाते हैं। इनमें धातु के टुकड़े, रासायनिक पदार्थ जैसे अनेक विषैले ज्वलनशील पदार्थ, तेलीय पदार्थ, अम्लीय तथा क्षारीय पदार्थ, जैव अपघनशील पदार्थ, राख आदि सम्मिलित होते हैं। ये सभी पदार्थ पर्यावरण को हानि पहुँचाते हैं।

3. कृषि अपशिष्ट – कृषि के उपरांत उसका बचा भूसा, घास, पत्तियां, डंठल आदि एक स्थान पर एकत्र कर दिए जाते हैं । भारत में प्रतिवर्ष लगभग 27.33 करोड़ टन कृषि अवशेषों का उत्पादन होता है। ये अवशेष प्रायः अनाज, दलहन, तिलहन, रेशेदार फसल तथा फल एवं सब्जियों से प्राप्त होते हैं, इन अवशेषों का उपयोग अनेक उपयोगी कार्यों जैसे चारा बनाने, छत बनाने एवं कागज मिलों आदि में किया जाता

है। इन सभी अवशेषों के उपयोग के अतिरिक्त लगभग 4 करोड़ टन कृषि अवशेष अनुपयुक्त रह जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार ये प्रदूषण में योगदान देते हैं। इन अवशेषों को प्राकृतिक रूप से उपयोग करने में कुछ समस्याएं हैं – जैसे इन अवशेषों का कम घनत्व होना, प्रति इकाई आयतन लघु उष्मा उत्पादन, अधिक ढुलाई लागत तथा भण्डारण की कीमत आदि।

4. मानव पर दुष्प्रभाव – आज जमीन पर जगह–जगह कचरे के ढेर लगे हैं। कचरे में प्लास्टिक थैली, सड़ी सब्जियां, घरेलू कचरा, आदि होते हैं। विभिन्न घातक रसायनों में पेंट, व्यर्थ सीसे की बैटरियां, कीटनाशक आदि हैं। यदि हम अपने कमरे में नजर घुमाएं तो पाएंगे कि ज्यादातर सामान औद्योगिक विधियों से प्राप्त किया गया है। उत्पादन की इस विधि में प्रत्येक पद पर कुछ अवशिष्ट निकलता है। नगर पालिका के कचरों में 1/5 भाग पैकिंग पदार्थ होते हैं। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि बाजार में उपलब्ध सॉफ्ट ड्रिंक के मूल्य का 50 प्रतिशत से अधिक भाग उसकी बोतल के लिए होता है। अपशिष्ट पदार्थों के एकत्रित होने का पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य पर अत्यधिक हानिकारक प्रभाव होता है। कुछ प्रमुख संक्षेप में ये दुष्प्रभाव निम्न है –

● अपशिष्ट पदार्थ पर्यावरण अपकर्षण में वृद्धि का कारण होते हैं क्योंकि इनसे भू–प्रदूषण के अतिरिक्त जल एवं वायु प्रदूषण में भी वृद्धि होती है।

● कूड़ा–करकट से सड़ने गलने से अनेक प्रकार की गैस एवं दुर्गन्ध निकलने से क्षेत्रीय वातावरण दूषित हो जाता है। यदि इनमें रसायनों की मात्रा होती है तो यह और भी अधिक हानिकारक होता है।

● अपशिष्ट पदार्थ, जिनमें मल, जल एवं डिटर्जेन्ट मिश्रित होते हैं, जब नालियों से बहकर जल स्रोतों में पहुंच जाते हैं तो जल को प्रदूषित करने के अतिरिक्त अनेक रोगों का भी कारण बनते हैं।

● रसायन मिश्रित जल एवं अन्य गंदगी रिसाव द्वारा भूमिगत जल तक पहुंचकर उसे भी प्रदूषित कर देती है।

● अपशिष्ट पदार्थों को समुद्र में डालने से सामुद्रिक पारितंत्र असंतुलित हो जाता है।

● मल–जल द्वारा लगातार सिंचाई करने से मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीव नष्ट हो जाते हैं, जो भूमि की उर्वरता के लिए आवश्यक है।

● नगरों में जहॉ अपशिष्ट पदार्थ एकत्र होते है, वहां सामान्यतः गंदी बस्तियों

का विस्तार हो जाता है। यहां रहने वाले लोग नारकीय जीवन व्यतीत करते हैं। दिल्ली, मुंबई, कोलकत्ता, चेन्नई या राज्यों की राजधानियों में इनका विस्तार होता जा रहा है।

● नगरपालिकाओं के सीमित साधनों, उदासीनता एवं जन सामान्य में जागरूकता न होने के कारण आज सभी नगरों में अपशिष्ट पदार्थों का फैलाव रिहायशी क्षेत्रों में हो रहा है। यह फैलाव रोग प्रसारक कीटों (मक्खी–मच्छरों आदि) की वृद्धि में भी सहायक है।

● तिलचट्टे जो ठोस कूड़े के ढेरों में छिपे रहते हैं रात को आसपास के रसोईघरों पर आक्रमण करते हैं और वहां संक्रामक सामग्री छोड़ देते हैं। चूहे मानव सम्पत्तियों और अनाजों को हानि पहुॅचा सकते हैं।

● मृदा छिद्रों की संख्या में कमी आने से मृदा ठोस हो जाती है।

ठोस कचरे का निपटान – कचरे को साधारणतः खुले गड्ढों में भर दिया जाता है यहां कार्बनिक पदार्थ सड़ते है। जो कीड़ों और चूहे जैसे जंतुओं के आकर्षण का केन्द्र होते हैं। बोतल, चिथड़े, रद्दी, धातुओं की कतरने यह सब कबाड़ी द्वारा एकत्रित की जाती हैं। फिर भी खुले गड्ढे कई गंभीर समस्याएं और रोग पैदा करते हैं। कूडे करकट को ठिकाने लगाने का सर्वाधिक प्रचलित तरीका यह है कि उन्हें गड्ढों में डालकर पाट दिया जाता है इससे रोग, प्रदूषण आदि पैदा नहीं होते और स्वच्छता भी रहती है। परन्तु दूसरी ओर कचरे को धरती में दबाने से कई दूसरी हानिकारक समस्याएं पैदा होती हैं, इससे प्राकृतिक संसाधन भी प्रभावित होते हैं। गंदगी जो खाद के रूप में काम में लाई जा सकती थी उसे जमीन के अंदर दबा दिया जाता है और चक्रित होने वाली धातुएं भी नीचे दब हो जाती हैं। कचरे से निपटने के लिए चक्रीकरण सबसे बेहतर तरीका है। इसमें किसी पदार्थ को लंबे समय तक उपयोग में लाया जा सकता है। यदि एक वस्तु को सुधारा या उपयोग नहीं किया जा सकता है तो उसका चक्रीकरण कर उसे फिर से काम में ला सकते हैं। लेकिन ऐसा चक्रीकरण तभी उपयोगी होगा जबकि वह वर्तमान सामाजिक व आर्थिक तंत्र से तालमेल रखता हो। सामान्यतः चक्रीकरण पदार्थ के स्रोतों की रक्षा ही नहीं करता बल्कि उसे आगे के लिए सुरक्षित भी रखता है।

ठोस कचरे का एकत्रीकरण, परिवहन और निराकरण – नगरपालिका और निगमों के लिए ठोस कूड़े–कचरे का एकत्रीकरण, परिवहन और निराकरण एक बड़ी समस्या रही है। यह सेवा केवल खर्चीली ही नहीं अपितु अत्यधिक श्रमोन्मुखी है। दैनिक कूड़े–कचरे के समुचित निपटान में बरती जाने वाली कमियां निम्नलिखित है –

1. नागरिकों को अपने घरेलू कचरे के निराकरण के लिए उपयुक्त सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं।

2. कचरा एकत्रीकरण के स्थल सामान्यतया खुले और अस्वास्थ्य कर होते हैं।

3. कचरा उठाने की वर्तमान विधियां प्राचीन हैं जिससे इस काम में लगे को सम्मुख स्वास्थ्य संकट उत्पन्न होता है।

4. हाथों से ट्रकों में भरने और कूड़े–कचरे के एकत्रण स्थल से उठाकर नगर की सीमा से बाहर ले जाने की परिवहन प्रणाली अनुपयुक्त है।

5. सामान्य कूड़े–कचरे के साथ–साथ औषधालयों के संक्रामक कूड़े–कचरे का निराकरण का आमतौर पर कोई प्रबंध नहीं है।

6. एकत्रण स्थलों को वैज्ञानिक ढंग से नहीं चुना जाता और कूड़े–कचरे का निराकरण एवं दशाएं स्वास्थ्य संकट उत्पन्न कर रहे है। हमें स्वास्थ्यकर ढंग से कूड़े–कचरे को एकत्र करने और उसका निराकरण करके नगर को स्वस्थ और प्रदूषण रहित बनाने की दिशा में प्रयास करना चाहिए।

ठोस कचरे के नियंत्रण के उपाय –

1. कचरे का समुचित निपटान किया जाए। सड़कों पर कचरा फेंकने पर जो आर्थिक दंड का प्रावधान है उसे सख्ती से लागू किया जाए।

2. कूड़ा–संग्रहण, निष्कासन, निस्तारण प्रबंधन कार्य हेतु नगर प्रबंधन संस्था को अधिक कार्यशील बनाना चाहिए।

3. स्वच्छ शौचालयों, सुलभ कॉम्पलेक्स आदि का विशाल पैमाने पर निर्माण व प्रयोग हेतु प्रोत्साहन देना।

4. औद्योगिक संस्थानों पर कचरा बिना उपचारित किए ही फेंकने पर कठोर प्रतिबंध।

5. कृषि हेतु उपयोगी रसायनों में स्थाई प्रकृति के तथा अत्यधिक विषैले रसायनों के उपयोग पर प्रतिबंध।

6. अनियंत्रित उत्खनन के प्रयास रोके जाएं।

7. बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के दौरान नगरीय स्वच्छता का पाठ पढ़ाया जाय जिससे उनमें व्यक्तिगत प्रयास हेतु सोच विकसित हो।

8. कृषि के अवशिष्ट गोबर आदि कार्बनिक पदार्थों को खुले में फेंकने फैलाने, या जलाने के स्थान पर, बायोगैस संयंत्र के द्वारा अधिक ऊर्जा उत्पादन तथा उचित खाद के उत्पादन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

9. ठोस कचरे से ऊर्जा उत्पादन तकनीक का विस्तार किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अपशिष्ट पदार्थों के एकत्रीकरण एवं विस्तार की समस्या एक गंभीर समस्या है। आज यह बड़े नगरों में हैं कल छोटे नगरों में होगी। यही नहीं, नगरीय विकास के साथ–साथ यह और विकट होती जाएगी। विकास एक नैसर्गिक प्रक्रिया है जिसे रोका नहीं जा सकता। आवश्यकता है उसे एक उचित दिशा देने की जिससे विनाशरहित विकास की कल्पना को मूर्तरूप दिया जा सके। यह कार्य उचित प्रबंधन द्वारा संभव है जिसे सरकारी तंत्र, स्वयंसेवी संस्थओं और नागरिकों के सहयोग से किया जा सकता है।

भारत सरकार ने सन् 1975 में शिवरामन समिति का गठन इस कार्य हेतु किया था जिसके सुझाव थे बड़े–बड़े कूड़ेदानों की स्थापना, मानव द्वारा अपशिष्ट मल–मूत्र निष्कासन की उचित व्यवस्था नगरों में कूड़ा–कचरा उठाने की समुचित व्यवस्था, कूड़े के ढेर को जलाकर भस्म करना आदि।

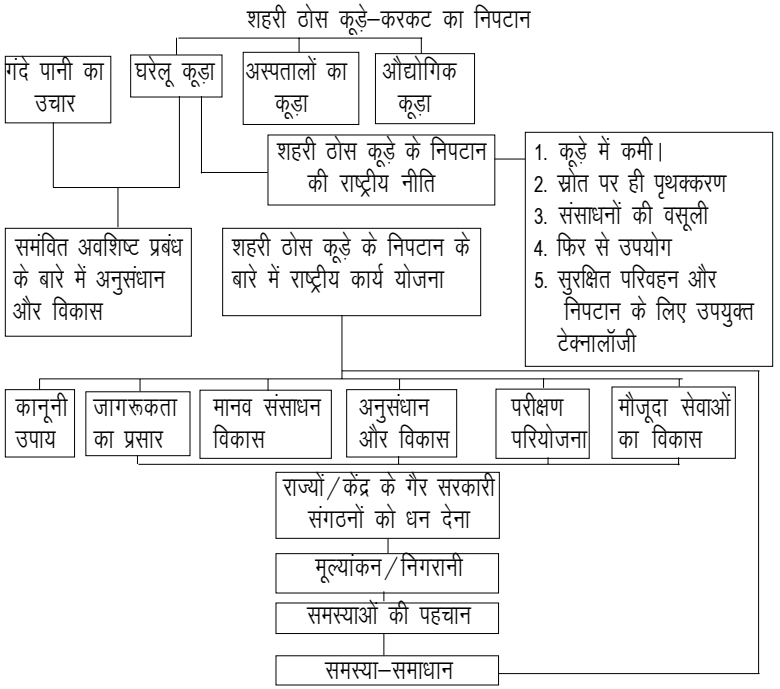

स्रोत : शहरी ठोस कूड़े के बारे में भारत सरकार के योजना आयोग की उच्च स्तरीय समिति की रिपोर्ट।

अपशिष्ट पदार्थों की समस्या के नियंत्रण तथा प्रबंधन हेतु निम्न कदम उठाने आवश्यक हैं –

1. अपशिष्ट पदार्थों को नष्ट करना : अपशिष्ट पदार्थों को नष्ट कर उनके कुप्रभाव से पर्यावरण एवं मानव को बचाया जा सकता है। इन्हें नष्ट करने की एक सहज विधि भस्मीकरण है जिससे इसकी मात्रा 60 से 80 प्रतिशत कम की जा सकती है। इसके लिए दहन भट्टी या विशाल दहन प्लान्ट का उपयोग किया जाना चाहिए किन्तु इस क्रिया में वायु प्रदूषण न फैले इसका ध्यान रखना चाहिए। रासायनिक क्रिया द्वारा भी अनेक अपशिष्ट पदार्थों को नष्ट किया जा सकता है अथवा उन्हें पुनः उपयोगी बनाया जा सकता है। गहरे महासागरों में अपशिष्टों का निस्तारण किया जा सकता है किन्तु इसमें यह ध्यान देना आवश्यक है कि सागरीय पर्यावरण प्रदूषित न हो।

2. अपशिष्ट पदार्थों से कम्पोस्ट बनाना : नगरीय अपशिष्टों को भूमि में दबाकर, सड़ा–गलाकर उत्तम उर्वरक बनाया जा सकता है जो विशेषकर सब्जियों के उत्पादन में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

3. दारण (रेनडरिंग) : इसके अंतर्गत हड्डियों, वसा, पंख, रक्त आदि पशु अवशेषों को पकाकर चर्बी प्राप्त की जा सकती है जिसका प्रयोग साबुन बनाने में किया जाता है तथा इसके प्रोटीन वाला अंश पशु चारे के रुप में उपयोगी होता है।

4. विद्युत उत्पादन : अपशिष्ट पदार्थों से विद्युत उत्पादन का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा चुका है इस दिशा में समुचित ध्यान आवश्यक है। इसी प्रकार इसमें मिश्रित कार्बनिक पदार्थों को विशेष प्रक्रिया से गर्म कर मीथेन गैस प्राप्त की जा सकती है जिसका उपयोग ईधन के रुप में किया जाता है।

5. कूड़े करकट को अत्यधिक दबाव से ठोस ईटों में बदला जा सकता है।

6. नगरों में मल जल निकासी हेतु उचित सीवेज प्रणाली का विकास आवश्यक है।

7. उद्योगों को अपशिष्ट निस्तारण हेतु कानूनी रूप से बाध्य किया जाना आवश्यक है।

8. अपशिष्ट पदार्थों का पुनर्चक्रण कर रद्दी कागज से लिफाफे, लोहे की कतरनों से स्टील, एल्युमीनियम के टुकड़ों से पुनः एल्युमीनियम, व्यर्थ प्लास्टिक से प्लास्टिक बनाने आदि की समुचित व्यवस्था होना आवश्यक है। इस प्रकार के उद्योगों को जो वर्तमान में कार्यरत हैं, और विकसित करने की आवश्यकता है।

9. सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर अपशिष्ट पदार्थों के निस्तारण एवं उनके

उपयोगों के संबंध में निरंतर शोध की आवश्यकता है।

10. अपशिष्ट पदार्थों की बढ़ती समस्या एवं पर्यावरण सुरक्षा हेतु प्रत्येक क्षेत्र, यहां तक कि प्रत्येक नगर हेतु एक दीर्घकालीन 'मास्टर प्लान' बनाया जाना आवश्यक है जिससे नियोजित रुप से इसका निराकरण हो सके।

उपर्युक्त प्रबंधन संबंधी उपायों के अतिरिक्त सर्वाधिक आवश्यकता है – सामान्य नागरिकों के व्यवहार में सुधार लाने की। यदि हम में से से प्रत्येक अपने घर के अपशिष्ट पदार्थों को उचित स्थान पर एकत्र करें तो यह समस्या स्वतः कम हो जाएगी। इसी प्रकार नगरपालिकाओं को भी अपनी उदासीनता त्यागनी होगी और सफाई कर्मचारियों के कार्यों में कुशलता एवं कर्त्तव्यपरायणता लानी होगी। अपशिष्ट पदार्थों से पर्यावरण प्रदूषित न हो और हमारे स्वास्थ्य पर इसका प्रतिकूल प्रभाव न हो, इसके लिए सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है क्योंकि पर्यावरण एक विरासत है, जिसे हमें सुरक्षित रखना है।

वर्मी कम्पोस्ट क्या है ?

केुचओं द्वारा विच्छेदनशील कार्बनिक पदार्थों का अपघटन कर फसल उपयोगी कार्बनिक खाद में परिवर्तित करने की प्रक्रिया को वर्मी कम्पोस्टिंग कहते हैं तथा केंचुओं द्वारा उत्सर्जित पदार्थों का ऐसा मिश्रण जिसमें विच्छेदित कार्बनिक पदार्थ, ह्यूमस, जीवित छोटे–छोटे केंचुऐं व कोकून मिले रहते हैं, वर्मी कम्पोस्ट कहलाता है।

मिट्टी की संरचना और इसकी उपजाऊ शक्ति बनाए रखना आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। रासायनिक उर्वरकों के दूरगामी दुष्परिणामों को देखते हुए जैविक खाद की मांग बढ़ती जा रही है। केचुए की सहायता से अत्यन्त उत्तम और प्रभावशाली जैविक खाद कम समय में तैयार की जा सकती है। केंचुआ हर प्रकार के जैविक कचरे को तीव्रगति से खाद में बदल सकता है। केचुएं पालना व खाद बनाना दो अलग–अलग परन्तु मिली जुली क्रियाएं है। इन दोनों क्रियाओं को सम्मिलित रूप से वर्मीकल्चर कहते हैं। सरल शब्दों में बेकार कार्बनिक पदार्थों से केचुआ पालन द्वारा जैविक खाद बनाने की क्रिया को वर्मीकम्पोस्टिंग कहते हैं। वर्मीकम्पोस्ट में गोबर खाद की अपेक्षा अधिक नाइट्रोजन फास्फेट व पोटाश है। इसके अलावा इसमें हार्मोन व एन्जाइम भी पाए जाते हैं जो पौधों का सम्पूर्ण विकास करते हैं। वर्मीकम्पोस्ट में 1.2–1.6 प्रतिशत नाइट्रोजन पर 1.8–2.0 प्रतिशत फास्फेट होता है। प्रायः सभी किस्म के बेकार कार्बनिक पदार्थों का उपयोग वर्मीकम्पोस्टिंग में किया जा सकता है।

केंचुआ संवर्धन (वर्मी कल्चर): केंचुआ पालन व संवर्धन की वह तकनीक जिसमें नियंत्रित दशा में केंचुओं के प्रजनन व पालन पोषण हेतु अनुकूल परिस्थितियां निर्मित की जाती है, ताकि वांछित प्रजाति के केचुओं का प्रगुणन एवं विकास तीव्रगति से हो सके। वर्मीकम्पोस्ट तैयार करने के लिए सतही केचुएं जिन्हें एजीजाइक (ह्यूमस फोर्मर) कहते हैं। प्रयोग किए जाते है।

वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से लाभ

1. जीवांश पदार्थों के विच्छेदन से प्राप्त कोलायडी ह्यूमस रेतीली मृदा कणों को बांधें रखने में सहायक होता है।

2. वर्मीकम्पोस्ट डालने से भूमि की जलधारण क्षमता बढ़ती है एवं यह चिकनी काली मृदाओं को भुरभुरी एवं स्पंजी बनाता है जिससे कृषि क्रियाओं में बाधा नहीं होती।

3. यह रासायनिक खादों जैसा नुकसानदायक भी नहीं है।

4. वर्मीकम्पोस्ट में लाभदायक सूक्ष्म जीवाणु बहुतायत में रहते हैं जो कि मृदा में जैविक क्रियाओं द्वारा उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा को बढ़ाते है।

5. दूसरे उपयोग से मृदा संरचना में सुधार होता है।

6. वर्मीकम्पोस्ट में केचुओं द्वारा उत्सर्जित अनेक हार्मोन्स, एन्जाइम्स एंटीबायोटिक्स आदि मिले रहते हैं, जो कि फसल में रोग रोधिता पैदा करते हैं तथा फसल वृद्धि में सहायक होते हैं।

7. भूमि की उर्वरता एवं उत्पादकता को स्थायित्व प्रदान करता है।

8. उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ उत्पाद की गुणवत्ता में भी सुधार होता है।

9. वातावरण को प्रदूषण मुक्त रखता है एवं उत्पादन लागत को कम करता हैं।

वर्मीकम्पोस्ट बनाते समय ध्यान देने योग्य बातें –

1. केंचुऐं गर्मी व धूप के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं इस कारण वे अंधेरे, नम व ठंडे स्थान में रहना पसंद करते हैं। अतः बनाई गई ढेरियां या प्रयुक्त गड्ढों को सूखे घास–पत्तियों या जूट की बोरियों आदि से ढककर रखना चाहिए ताकि गड्ढे में वायु का आवागमन बना रहे और तापक्रम नियंत्रित रखा जा सके।

2. कम्पोस्ट निकालने के 2–3 दिनों पहले पानी डालना बंद कर देना चाहिए।

3. वर्मीकम्पोस्ट की संपूर्ण क्रिया के दौरान पानी की अधिकता न होने पाए अर्थात गड्ढे में पानी भरा न रहें क्योंकि पानी भरने से अवायवीय दशा उत्पन्न हो जाती है।

4. तैयार कम्पोस्ट को ठंडे छायादार स्थान पर भंडारित करना चाहिए ताकि तापक्रम की अधिकता से लाभदायी सूक्ष्म जीवाणुओं पर हानिकारक प्रभाव न पड़े और मिले हुए छोटे–छोटे केचुएं व कोकून भी गर्मी व धूप से प्रभावित न हों।

5. बेड का तापक्रप 10–30 सेल्सियस के बीच ही रहना चाहिए। कम तापमान होने पर केचुओं की क्रियाशीलता कम हो जाती है और तापमान की अधिकता से केचुएं मर जाते हैं।

6. प्रयुक्त ढेर या गड्ढे में ताजा गोबर नहीं डालना चाहिए क्योंकि कच्चे गोबर की ढेरी लगने पर उसमें गर्मी पैदा होती है जो केुचओं को नुकसान पहुंचाती है।

7. बेड के ऊपर से तैयार कम्पोस्ट की तह को समय–समय पर हटाते रहना चाहिए।

अध्याय – 7
पॉलीथिन/प्लास्टिक प्रबंधन

पॉलीथीन (रासायनिक नाम पॉलीइथीलीन) सबसे सामान्य प्लास्टिक है। इसका वार्षिक उत्पादन लगभग 80 मीट्रिक टन है। पॉलीथीन ने पिछले कुछ दशकों में अपनी स्थायी प्रवृत्ति के कारण जनमानस के दिलो दिमाग और जीवन शैली में अपनी उपयोगिता सुनिश्चित कर ली है। आज लगभग हर व्यक्ति पॉलीथीन का उपयोग कर रहा है और उससे प्रभावित है। परन्तु पॉलीथीन के जिस गुण स्थायी प्रवृत्ति ने इसे लोकप्रिय बनाया है वही गुण पर्यावरण और परोक्ष रूप में हम सभी के लिए अत्यंत हानिकारक सिद्ध हुआ है।

पॉलीथीन एवं प्लास्टिक क्या है ?

पॉलीथीन एक अविघटनीय (Non Biodegradable) संश्लेषित पॉलीमर है। जो मूलतः पेट्रो जीवाष्म फीडस्टाक (Petro Fossil Feedstock) के व्युत्पन्न है, और मूलतः हाइड्रोकार्बन की लंबी श्रृंखलाओं के बने होते हैं। इन पॉलीमर को उपयुक्त उत्प्रेरक की उपस्थिति में मोनोमर इथीलीन, प्रोपीलीन, विनाइल, स्ट्रीन और बेन्जीन में तोड़ा जा सकता है एवं इन मोनोमर को पुनः रासायनिक रूप से बहुलीकृत कर प्लास्टिक के विभिन्न श्रेणियों के उत्पाद बनाए जा सकते हैं।

प्लास्टिक को निम्न 2 श्रेणियों में बांटा गया है –

1. पुनर्चक्रण योग्य प्लास्टिक या थर्मो प्लास्टिक (Recyclable Plastics or Thermoplastics) जैसे PET, HDPE, LDPE, PP, PVC, PS एवं अन्य–इस श्रेणी के प्लास्टिक गर्म करने पर मुलायम हो जाते हैं और ठंडा होने पर पुनः कड़े हो जाते हैं। अतः इन्हें मनचाहे आकार में ढाला और पुर्नचक्रण किया जा सकता है।

2. गैर पुर्नचक्रण योग्य प्लास्टिक या थर्मोसेट एवं अन्य (Non- Recyclable Plastics or Thermoset or others)- इस श्रेणी में बहुपरत एवं लेमीनेटेड प्लास्टिक बेक लाइट, पॉली कार्बोनेट, मेलामाइन एवं नायलोन आदि आते हैं। इस श्रेणी के प्लास्टिक, गर्म करने के बाद मुलायम नहीं होते हैं।

वर्तमान उपभोक्तावादी युग में प्लास्टिक से निर्मित वस्तुओं का चलन अत्यधिक बढ़ गया है। फर्नीचर, किचन में प्रयुक्त होने वाला सामान या अन्य कोई उपयोग की सामग्री हो प्लास्टिक/पी. व्ही. सी. या पॉलीथीन का प्रचलन बढ़ता ही जा रहा है और यह पूरी दुनिया पर हावी हो गया है। प्लास्टिक के बढ़ते हुए उपयोग के संबंध में यह कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि जिस प्रकार से इतिहास में पाषाण युग, ताम्र युग व लोह युग आदि का विवरण मिलता है वैसे ही आज की इस सभ्यता को प्लास्टिक युग के रूप में जाना जाएगा। प्लास्टिक की एक सबसे बड़ी समस्या यह है कि यह जैव विघटनीय (बायोडीग्रेडेबल)नहीं है। अतः इसके कचरे को नष्ट करना आसान नहीं होता।

प्लास्टिक का पुर्नउपयोग एक अभिनव प्रयास –

जहां एक ओर प्लास्टिक कचड़े से सम्पूर्ण विश्व जूझ रहा है और दैनिक जीवन में पूर्ण रूप से स्थापित हो चुके हैं प्लास्टिक को हटाने के प्रयास विफल साबित हो रहे हैं वहीं पर प्लास्टिक के पुर्नउपयोग के प्रयासों को भी उतना ही महत्व यदि दिया जाए तो काफी प्लास्टिक सड़क, पानी, मिट्टी और पर्यावरण में जाने से हम रोक

प्लास्टिक के पुर्नउपयोग

प्लास्टिक के
पुर्नउपयोग

Source: http://www.designrulz.com/product-design/2012/11/45-ideas-of-how-to-recycle-plastic-bottles/

पाएंगे। प्लास्टिक के पुर्नउपयोग के कुछ उदाहरण दी गई बेवसाइट पर उपलब्ध है हम स्वयं में इस तरह के प्रयासों से अपने पर्यावरण को बचा सकते हैं ।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार केवल दिल्ली शहर और आसपास के इलाकों में 10 मिलियन से अधिक प्लास्टिक कैरी बैग रोज कचड़े के रूप में फेंकें जाते हैं। अनेकों अध्ययन यह प्रमाणित कर चुके हैं कि इनके निर्माण में लगने वाले रसायनों के साथ इनको रंग देने वाले रसायन भी विषैले होते हैं और इनमें अत्यंत विषैले रसायन लेड की उपस्थिति भी पाई गई है। यह एक ध्यान देने वाली बात है कि 2009 में दिल्ली में प्लास्टिक बैग पर प्रतिबंध लगाया जा चुका है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि जब तक हम स्वयं जागरूक नहीं होंगे कोई भी प्रावधान या नया एक्ट पर्यावरणीय समस्याओं का समाधन नहीं करने में सफल नहीं हो पाएगा। डिपार्टमेंट ऑफ केमीकल्स एवं पेट्रोकेमिकल्स के अंतर्गत प्लास्टिक डेवलपमेंट काउंसिल द्वारा दिए गए एक अध्ययन के अनुसार भारत इस वर्ष प्लास्टिक का तीसरा सर्वाधिक प्लास्टिक उपयोग करने वाला देश बन रहा है। प्रतिवर्ष विश्व भर में 500 बिलियन प्लास्टिक बैग उपयोग किए जाते हैं अभिप्राय यह कि प्रत्येक

मिनट एक मिलियन प्लास्टिक बैग विश्व भर में उपयोग में लाया जा रहा है और ये पर्यावरण के लिए एक बड़ा खतरा बन ही चुके हैं।

प्लास्टिक स्टेटीस्टिक्स (Plastic Statistics) -	
विश्व भर में उपयोग हो रहे प्लास्टिक	– 500 बिलियन से 1 ट्रिलियन
चाइना में प्लास्टिक बैग की प्रतिदिन खपत	– 3 बिलियन
प्रतिमिनिट उपयोग में लाए जा रहे प्लास्टिक बैग	– 1 बिलियन
प्लास्टिक बैग में पुर्नचक्रण में लगने वाला समय	– 1000 वर्ष
2008 में कुल फेंके गए प्लास्टिक बैग	– 3.5 मिलियन टन
समुद्र में प्रति हजार स्क्वेयर मील में फैली प्लास्टिक	– 46000 टुकड़े
एक परिवार की किराना दुकान में 4 ट्रिप में लगने वाली पॉलीथीन	– 60
घरों से निकलने वाले कचड़े में पॉलीथीन	– 11 प्रतिशत

श्रोत : www.statislicbrain.com on 17.8.2013

प्लास्टिक एवं पॉलीथीन का पुर्नचक्रण एक जटिल एवं काफी लागत वाली प्रक्रिया है और जन भागीदारी और जन मानस में संचेतना के अभाव में उपयोग के पश्चात इसका पुर्नचक्रण हेतु एकत्रीकरण भी एक जटिल और असंभव सी बात प्रतीत होती है। पिछले कुछ वर्षों में जो प्रक्रिया भारत में सर्वाधिक अपनाई जा रही है वह है पालीथिन का जमीनी भराव।

पॉलीथीन हटाओ पर्यावरण बचाओ एक पर्यावरण संरक्षण की अभिनव स्कीम है जो हिमांचल प्रदेश द्वारा 2009 से चलाई जा रही है। हिमांचल प्रदेश में पॉलीथीन बैग को पूर्णतया प्रतिबंधित कर दिया गया है और डिस्पोजेबल प्लास्टिक कप प्लेट आदि को भी पूर्णतया प्रतिबंधित करने के प्रयास जारी है। राज्य पब्लिक वर्क्स विभाग द्वारा प्रयोग के तौर पर 40 टन प्लास्टिक टुकड़े के प्रयोग से 40 किमी की सड़क भी हिमांचल प्रदेश में बनाई गई है जो कि एक अभिनव और सराहनीय प्रयास है।

पॉलीथीन के कुछ प्रमुख दुष्परिणाम –

1. नालियों का चोक होना और पानी का भराव फलतः बीमारियों के जनक सूक्ष्मजीवों की वृद्धि।

2. पॉलीथीन खा लेने से जानवरों की मृत्यु।

3. समुद्री प्राणियों की मृत्यु।

4. जलने पर कैंसरकारक गैसें निकलती है।

5. रंगीन पाली बैग में लेड या कैडमियम जैसे हानिकारक रसायन होते हैं जो रखे गए खाद्य पदार्थों को भी संदूषित कर सकते हैं।

केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी इन्वायरमेंट प्रोटेक्शन एक्ट 1986 के द्वारा प्लास्टिक कैरी बैग के उपयोग को प्रतिबंधित किया जा चुका है। रिसाइकल्ड प्लास्टिक मेन्यु फैक्चरर एंड यूसेज रूल 1999 (संशोधित 2003) के अनुसार 8'12 इंच आकार से कम एव 20 माइक्रान मोटाई से कम के पॉलीथीन बैग पूर्णतया प्रतिबंधित हैं ।

अध्याय – 8
अपशिष्ट प्रबंधन

ऐसा पदार्थ जो किसी मानवीय कार्य या मानव द्वारा किसी संसाधन को उपयोग किए जाने उपरांत उत्पन्न होता है एवं पर्यावरण को प्रभावित करता है।

सामान्य दृष्टि में पर्यावरण एक जैव तंत्र है जिसमें रहने वाले समस्त जीवधारियों को आपसी समन्वय के साथ रहना चाहिए। साथ ही प्रत्येक जीवधारी का यह भी दायित्व है कि वह पर्यावरण के अन्य जैव एवं अजैव कारकों के मध्य आपसी समन्वय स्थापित रख। पर्यावरण विज्ञान में जैव एवं अजैव कारकों में मध्य आपसी समन्वय को परिस्थितिकी के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है। पर्यावरण में जैव एवं अजैव कारकों के मध्य आपसी संबंधों का ज्ञान न सिर्फ प्रकृति में जीवों के वितरण और उनके अंर्तसंबंधों की व्याख्या करता है अपितु पर्यावरणीय घटकों तथा संसाधनों के प्रबंधन और संरक्षण संबंधी संचेतना जागृत करने में भी सहायक होता है।

पर्यावरण में जैव अजैव कारकों में से किसी की भी संख्या या मात्रा का बढ़ना इस संतुलन को प्रभावित करता है। इसके साथ ही उस वातावरण का हिस्सा न रहने वाले जंतु, पादप, या पदार्थ (यहां पर अपशिष्ट) भी पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। ठोस अपशिष्ट से अभिप्राय है कि ऐसी कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थ को किसी घरेलू औद्योगिक, कृषि या किसी अन्य इकाई द्वारा उत्पन्न हुआ है और जिसका उसे उत्पन्न करने वाले के लिए कोई मूल्य नहीं है। ठोस अपशिष्ट यदि कार्बनिक प्रवृत्ति के हैं तो काफी हद तक पुर्नचक्रण योग्य होते हैं परन्तु यदि ये अकार्बनिक प्रवृत्ति के हैं तो इनका पुर्नचक्रण सामान्यतया संभव नहीं है। ठोस अपशिष्ट की समस्या की विकरालता का अंदाजा आप आसानी से लगा जाएंगे यदि आप इसकी विस्तृत व्यापक और वृहद सूची का एक नमूना देखें।

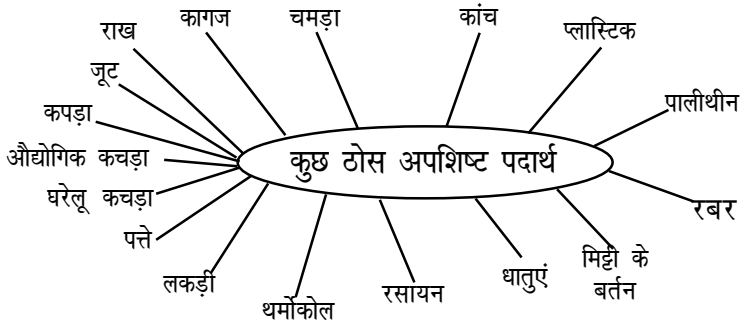

यदि आप इस सूची पर गौर करेंगे तो पाएंगे कि इस सूची में पाए जाने वाला प्रत्येक पदार्थ दूसरे पदार्थ से रासायनिक रूप से भिन्न हैं। अतः उनके निष्पादन की योजना बनाना भी आसान नहीं है। मूलतः अपशिष्ट पदार्थो को मोटे तौर पर उनके उत्पन्न होने के श्रोतों के आधार पर निम्नानुसार वगीकृत किया जा सकता है –

1. ग्रामीण अपशिष्ट – ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाला अपशिष्ट
2. शहरीय अपशिष्ट – शहरीय क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाला अपशिष्ट
3. औद्योगिक अपशिष्ट – औद्योगिक ईकाईयों द्वारा उत्पन्न अपशिष्ट

ठोस अपशिष्ट प्रबंधन में **3 R** महत्वपूर्ण हैं और इनका प्राथमिकता का क्रम भी निम्नानुसार है –

1. Reduce – कचड़ा उत्पन्न करने में कमी करना
2. **R**euse – पुनः उपयोग (जैसे उपयोग हो चुके कागज से लिफाफे)
3. **R**ecycle – पुर्नचक्रण (जैसे चमड़े से खाद)

कचरे के प्रबंधन की रूपरेखा सुनिश्चित करने में अनुभव और कार्यात्मक योजना बनाने में निम्नानुसार अपनाए जाने वाले उपायों को सबसे उत्कृष्ट उपाय और कार्यरूप में लाने हेतु सबसे जटिल उपाय के रूप में चिन्हित किया जा सकता है :

बचाव (Avoid or Prevention)	**सबसे उत्कृष्ट उपाय**
कमी करना (Reduction or Minimisation)	
पुनः उपयोग (Reuse)	
पुर्नचक्रण (Compositing and Recycling)	
ऊर्जा प्राप्ति (Waste to energy or Energy recovery)	
निपटान (Disposal)	**सबसे जटिल उपाय**

अपशिष्ट प्रबंधन का एक और स्वरूप

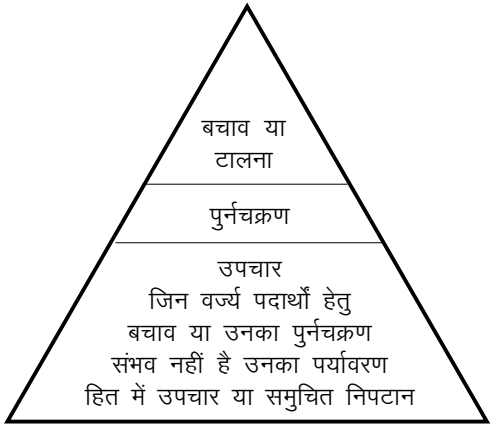

अपशिष्ट निपटान के तरीके

1. जमीन भराव (Land Fill) – कचरे की समस्या से जूझ रहे देशों में कचरे के निपटान का यह सर्वाधिक प्रचलित तरीका है। बेकार पड़ी जमीनों, खदानों आदि में कचरा डालना वर्षों से एक सामान्य प्रक्रिया रही है। लगभग इसे वैसे ही देखा जा सकता है जैसे कि हम घरों में अपने उपयोग पश्चात उत्पन्न कचड़े को घर के बाहर फेंकते हैं। आमतौर पर रिहायशी बस्तियों में खाली पड़े प्लाट पूरी बस्ती के लिए सुलभ कचड़ादान होते हैं। यही प्रक्रिया बड़े स्तर पर अब आपको दिखाई देती है जब आप किसी शहर में प्रविष्ट हो रहे होते हैं तो सबसे पहले यही कचरे के ढ़ेर आपका स्वागत करते हैं।

ठीक प्रकार से डिजाइन किए गए और उचित प्रकार प्रबंधित जमीनी भराव (लैंडफिल) कचड़े के निपटान हेतु एक सस्ता तरीका हो सकते हैं। जबकि अनियोजित लैंडफिल निम्न कारणों से काफी नुकसानदायक होते हैं –

- हवा में हल्के अपशिष्टों का उड़ना।
- कीड़ों का आकर्षण केन्द्र
- कचड़े के विघटन से उत्पन्न तरल का बहाव।
- कचड़े के अपूर्ण विघटन से दुर्गंध।

● कचड़े में आक्सीजन की अनुपस्थिति में विघटन मीथेन एवं कार्बन डाइआक्साइड जैसी ग्रीन हाउस गैसों का निकलना

● सतही वनस्पतियों का नाश।

● चूहे जैसे जंतुओं का आवास।

2. भस्मीकरण (Incineration) – कचरे को एकत्र कर जलाना निपटान की दूसरी सबसे अधिक प्रचलित प्रक्रिया रही है। इसी जलाने की प्रक्रिया को वैज्ञानिक रूप से विकसित की गई विद्युत चिमनियों के माध्यम से भी अपना लिया गया है। इन्हें इन्सीनिरेटर कहा जाता है। कुछ खतरनाक अपशिष्टों (जैसे–जैव चिकित्सीय अवशिष्टों) हेतु यह सर्वाधिक प्रचलित विधि है। यह प्रक्रिया उन देशों में ज्यादा अपनाई गई है जिनके पास जमीन की कमी है, जैसे–जापान। परन्तु इस विधि में अपूर्ण दहन से उत्पन्न डायक्सिन, फ्यूरान एवं PAHS जैसे हानिकारक रसायन बड़े पर्यावरणीय खतरे हैं।

3. पुर्नचक्रण (Recycling) – वर्ज्य पदार्थों जैसे कांच और प्लास्टिक की बोतलें, धात्विक तार, आदि को उपयोग उपरांत एकत्र कर उनका पुर्नचक्रण कर भिन्न रूप में उपयोग में लाया जा सकता है।

इलेक्ट्रानिक कचड़ा प्रबंधन

भारत प्रतिवर्ष 380000 टन ई–कचड़ा प्रतिवर्ष उत्पन्न करता है। ई–कचड़े में शामिल हैं पुराने खराब मोबाइल, फ्रिज, टी.वी. वाशिंग मशीन, कम्प्यूटर प्रिंटर्स इत्यादि। भारत ई कचड़े को ठिकाने लगाने का स्थान बनता जा रहा है और भारत में इसकी मात्रा लगातार बढ़ती जा रही है। इस कचड़े में समान्य कचड़े की समस्या के साथ–साथ अनेकों अत्यंत विषैले रसायन सीसा, पारा कैडमियम भी होते हैं। जिनका प्रबंधन भी किसी चुनौती से कम नहीं है। इस कचड़े का 90 प्रतिशत भाग अनौपचारिक रूप से पर्यावरण सुरक्षा एवं मानव स्वास्थ्य पर ध्यान न देते हुए निपटान किया जा रहा है। वैश्विक स्तर पर भारत के अतिरिक्त चीन भी इस कचड़े का निर्यात कर रहा है । पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार की रिपोर्ट के अनुसार 2005 में भारत में 146,800 टन ई–कचड़ा उत्पन्न हुआ था जो कि 2012 में बढ़कर 800 000 टन हो गया हैं। भारत के 65 शहर देश में कुल उत्पन्न होने वाले ई कचड़े का 60 प्रतिशत अंश प्रदान करते हैं। भारत के सर्वाधिक ई कचड़ा प्रदान करने वाले शहर हैं दिल्ली, बैंगलोर, चेन्नई, कोलकाता, अहमदाबाद, हैदराबाद, पुणे, सूरत और नागपुर। भारत के

सर्वाधिक ई कचड़ा उत्पन्न करने वाले राज्य है महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, उत्तरप्रदेश, गुजरात वेस्ट बंगाल, दिल्ली, कर्नाटक, मध्यप्रदेश और पंजाब। यूनाईटेड नेशन्स इन्वायरमेंट प्रोग्राम (यूनेप) द्वारा जारी अनुमान के अनुसार 2020 तक भारत में कम्प्यूटर के रूप में उत्पन्न होने वाला ई कचड़ा 500 गुना तक बढ़ जाएगा। साथ ही उपयोग उपरांत निकलने वाले मोबाइल फोन, टेलीविजन आदि इस ई कचड़े की मात्रा को कई गुना तक बढ़ा देंगे।

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार द्वारा मई 2010 में पहली बार ई कचड़े के प्रबंधन हेतु एक ड्राफ्ट लाया गया था। परन्तु इसका जमीनी प्रयोग और व्यावहारिक रूप से लागू होना दोनों ही अत्यंत जटिल हैं। **मई 2012 में ई कचड़े के प्रावधानों को भारत सरकार द्वारा लागू किया गया**। इन प्रावधानों के तहत प्रत्येक निर्माता को अपने द्वारा निर्मित उत्पादों से उत्पन्न होने वाले ई कचड़े को ठिकाने लगाने के लिए एवं पुर्नचक्रण की व्यवस्था सुनिश्चित करनी है। साथ ही इस प्रकार के पुर्नचक्रण की व्यवस्था हेतु जो ईकाई उत्पादनकर्ता बनाएंगे उनकी राज्य प्रदूषण निवारण मंडल से मान्यता/अथराइजेशन भी आवश्यक है। एक आंकड़े के अनुसार केवल दिल्ली में ही 9.730 टन ई कचड़ा प्रत्येक वर्ष उत्पन्न होता है। ई कचड़े की समस्या घरेलू कचड़े से बिल्कुल भिन्न हैं क्योंकि इससे होने वाले खतरे बिल्कुल ही अलग हैं।

अध्याय – 9
मानवीय गतिविधियों का पर्यावरण पर प्रभाव

आधुनिक एवं पाश्चात्य अवधारणाओं पर आधारित अन्धाधुंध औद्योगिकीकरण से उत्पन्न प्रदूषकों ने संपूर्ण प्रकृति को विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। वर्षो पूर्व प्रसिद्ध दार्शनिक फ्रेंडरिक एंगेल्स ने कहा था कि प्रकृति पर अपनी भौतिक विजय के कारण हमें आत्मप्रशंसा में विभोर नहीं हो जाना चाहिए, क्योंकि वह हर ऐसी विजय का प्रतिशोध लेती है। आज समस्याओं से घिरे होने के बाद एंगेल्स की उपरोक्त पंक्तियां अक्षरशः सही साबित होती दिखाई दे रही है। आज मानवीय क्रियाकलापों ने स्वयं मानव के ही अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। मानवीय क्रियाकलापों के कारण उत्पन्न कुछ प्रमुख पर्यावरणीय समस्याएं निम्न हैं –

1. ओजोन संकट, (Ozone Crisis)
2. ग्रीन हाउस प्रभाव, (Green House Effect)
3. अम्लीय वर्षा, (Acid Rain)
4. प्रकाश रासायनिक धुंध, (Photochemical Fog)
5. ग्लोबल डिलिंग या प्रकाश की उपलब्धता में कमी
6. जलवायु परिवर्तन और वायुमंडलीय ताप वृद्धि

ओजोन संकट (Ozone Crisis)

ओजोन सामान्य ताप पर रंगहीन एवं तीव्र गंध वाली गैस है। द्रवीय अवस्था में यह गहरे नीले रंग के विलयन के रूप में दिखाई देती है। रासायनिक रूप से ट्राइआक्सीजन कहीं जाने वाली ओजोन का निर्माण वायुमंडल के ऊपरी भाग स्ट्रेटोस्फियर में उच्च ऊर्जा युक्त पराबैगनी प्रकाश विकिरणों की उपस्थिति में

आक्सीजन के तीन अणुओं के पुर्नव्यवस्थापन से होता है। वायुमंडल में ओजोन निर्माण की क्रिया विधि –

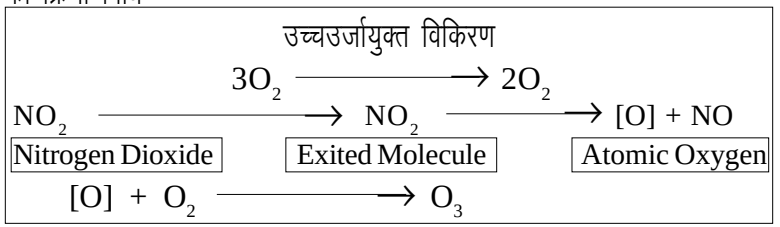

ओजोन वायुमंडल का सूक्ष्म घटक है। यदि वायुमंडल में उपस्थित सम्पूर्ण ओजोन को पृथ्वी पर फैलाएं तो मात्र 3 कि.मी. मोटी परत का ही निर्माण होगा। वायुमंडल में ओजोन संकेन्द्रण के कई स्तर है। वायुमंडल में ओजोन संकेन्द्रण पहले 16 कि.मी. की ऊंचाई तक घटता है। इसके पश्चात् 16 से 30 कि.मी. तक बढ़ता है और फिर घटता है। **ओजोन का सर्वाधिक संकेन्द्रण 20 से 35कि.मी. ऊंचाई के मध्य होता है। इस स्तर को ही ओजोन परत कहा जाता है।** यह परत यद्यपि जीवन से सीधे संबंध नहीं रखती परन्तु यह सूर्य से निकलने वाली पराबैगनी विकिरण के अधिकांश भाग को पृथ्वी तक पहुंचने से रोकती है। और ओजोन परत के कारण इन हानिकारक विकिरणों का केवल 2–3 प्रतिशत भाग ही पृथ्वी पर पहुंचता है। ओजोन परत सूर्य और पृथ्वी के मध्य एक फिल्टर का कार्य करती है।

वैज्ञानिकों के अनुसार ओजोन परत के नष्ट होने से आने वाली पराबैगनी किरणों की बढ़ती मात्रा के कारण पृथ्वी वीरान एवं बंजर हो सकती है। यह विकिरण जीव–जन्तुओं के लिए खतरनाक है इसके सीधे संपर्क में आने से मनुष्य में त्वचा कैंसर और मोतियाबिन्द की संभावना बढ़ जाती है। ओजोन में एक प्रतिशत की कमी से त्वचा कैंसर के पांच हजार रोगी प्रतिवर्ष उत्पन्न हो सकते हैं। यह मनुष्य की रोग अवरोधक क्षमता भी प्रभावित करती है और कोशिकाओं की मौलिक संरचना बदलने में सक्षम हैं।

पराबैगनी किरणों के प्रभाव

1. मानव स्वास्थ्य पर – ◆ रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी, ◆ आंखों पर बुरा प्रभाव, ◆ मोतियाबिन्द की घटनाओं में वृद्धि, ◆ त्वचा कैंसर में वृद्धि।

2. स्थलीय पेड़ पौधों पर – ◆ कुछ फसलों जैसे सोयाबीन के उत्पादन

में कमी, ◆ पत्तियों के क्षेत्र तथा पौधों की ऊंचाई में कमी। ◆ जैव–विविधता में कमी।

3. जलीय पौधों पर – ◆ जन्तु और पादप प्लावक पर बुरा प्रभाव, ◆ जैविक उत्पादन क्षमता में कमी, ◆ जैव विविधता में कमी।

4. वायु गुणवत्ता पर – प्रकाश रासायनिक स्मोग में वृद्धि।

5. अन्य पदार्थों पर – प्लास्टिक और अन्य पॉलीमर युक्त पदार्थों को क्षति।

वातावरणीय ओजोन – ओजोन का रासायनिक फार्मूला O_3 है। आक्सीजन की स्थायी अणु की अपेक्षा ओजोन एवं अस्थायी पीली नीले से रंग की गैस है जिसकी महक अत्यंत तीक्ष्ण होती है। यह गैस 1120C पर द्रव रूप में परिवर्तित हो जाती है और .2510C पर ठोस अवस्था में परिवर्तित हो जाती है। यह एक घनी गैस है एवं पानी में विलेय है और साथ ही तीव्र आक्सीकारक है। ओजोन की वातावरण में मात्रा बहुत ही कम है और वातावरण के स्ट्रेटोस्फियर में इस गैस का सर्वाधिक सान्द्रण (लगभग 90 प्रतिशत) होता है। केवल 10 प्रतिशत ओजोन ही पृथ्वी के निचले वातावरण जिसे ट्रोपोस्फियर कहते हैं,में मौजूद होती है। यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि पराबैगनी किरणों से हमारी रक्षा करने वाली ओजोन की काफी कम मात्रा भी मनुष्य के लिए हानिकारक पाई गई है।

तालिका – मनुष्यों पर ओजोन का प्रभाव

ओजोन की सान्द्रता (ppm)	**निरीक्षण करने पर देखा गया प्रभाव**
0.2	कोई दुष्प्रभाव नहीं
0.3	नाक व गले में क्षोभ
1.0–3.0	2 घंटे बाद अत्याधिक थकान
9.0	तीव्र श्वसन संबंधी रोग

ओजोनछिद्र व क्लोरोफ्लोरो कार्बन वर्ग के रसायन : आठवें दशक के प्रारंभ में कैलीफोर्निया के वैज्ञानिक द्वय एम. शेखुड एवं मारियों मोलिन ने सर्वप्रथम यह बताया कि पृथ्वी के वायुमंडल पर स्थित यह छत्र ध्रुवों के ऊपर नष्ट होता जा रहा है और इसकी वजह बताई गई सी.एफ.सी. (क्लोरोफ्लोरोकार्बन) वर्ग के रसायन। सन् 1985 में इंग्लैड के वैज्ञानिकों के एक दल द्वारा किए गए अंटार्कटिका के सर्वेक्षण में ज्ञात हुआ कि बसंत ऋतु में सितम्बर से अक्टूबर के मध्य ओजोन की सान्द्रता में लगभग 50 प्रतिशत की कमी आती है। यह भी ज्ञात हुआ कि ओजोन पर्त में एक छिद्र हो गया है जिसकी गहराई और चौड़ाई बढ़ती ही जा रही है। इस घटना के तुरंत बाद क्लोरोफ्लोरो कार्बन वर्ग के रसायनों को हानिकारक कहा जाने लगा। 1988 में

इस बात के पूरे प्रमाण मिल गए कि दक्षिण ध्रुव प्रदेश के ऊपर ओजोन छिद्र के प्रमुख कारक क्लोरोफ्लोरो कार्बन ही है।

आज हानिकारक कहे जाने वाले इस रसायन (क्लोरोफ्लोरोकार्बन) के गुणों की व्याख्या सर्वप्रथम चौथे दशक में डा. थामस मिजले ने अमेरिकन केमिकल सोसायटी में अपने शोध प्रपत्र में की थी। डॉ. मिजले ने बताया था कि ये रसायन रंगहीन, गंधहीन तथा अज्वलनशील होने के साथ असंक्षारक और आदर्श प्रशीतक भी है। इस खोज ने प्रशीतन उद्योग को नए आयाम दिए और इस वर्ग के रसायनों का उत्पादन और खपत अचानक कई गुनी बढ़ गई। समय के साथ इन रसायनों के और भी उपयोग ढूढ़ निकाले गए। इन रसायनों का सर्वाधिक उपयोग रेफ्रीजिरेटर व एयरकंडीशन निर्माण में, एयरोसोल प्रोपेलैंट में, प्लास्टिक फोम के निर्माण में, अग्निशमन यंत्रों में, फोम के निर्माण में, विलायक के रूप में तथा शुष्क धुलाई में किया गया है।

क्लोरोफ्लोरोकार्बन का एक अणु कई हजार ओजोन अणुओं को हानि पहुंचाने की क्षमता रखता है। ओजोन परत को नुकसान पहुंचाने वाले रसायनों को एक सामान्य नाम ओजोन डिप्लीटिंग केमिकल्स (Ozone depleting chemicals or substances) दिया गया है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि इनमें सबसे प्रमुख है क्लोरोफ्लोरो कार्बन वर्ग के रसायन। इन रसायनों में क्लोरिन एवं ब्रोमीन अणु संरचनात्मक अवयव होते हैं तथा इनका वायुमंडल में स्थायित्व अत्यधिक होता है। जो कि 40 से 150 वर्षों तक हो सकता है। ओजोन को हानि पहुंचाने वाले रसायनों में शामिल हैं –

- ◆ क्लोरोफ्लोरो कार्बन
- ◆ हैलोन
- ◆ मेथिल क्लोरोफार्म
- ◆ हाइड्रो ब्रोमो फ्लोरो कार्बन (HBFCS)
- ◆ हाइड्रोक्लोरोफ्लोरो कार्बन (HCFCS)
- ◆ ब्रोमो क्लोरो मीथेन (BCM)

उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि उपरोक्त सभी रसायन मानव निर्मित है और मानव द्वारा बहुतायत से उपयोग किए जाने वाले हैं।

भारत में उपयोग होने वाले ओजोन डिप्लीटिंग पदार्थ व उनके उपयोग

(स्रोत : ओजोन परत सेल बेवसाईट भारत सरकार, दिनांक : 21/8/13)

1. क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC 12)	–	रेफ्रीजेरेशन एवं चिलर्स में
2. हाइड्रो क्लोरोफ्लोरो कार्बन (HCFCS-22)	–	एयर कंडीशनर में
3. कार्बन टेट्रा क्लोराइड (CTC)	–	धातु सफाई एवं कपड़ा उद्योग में

हैलोन्स श्रेणी के रसायनों का उत्पादन हमारे देश में 1 अगस्त 2008 से बंद हो गया है। इसका प्रयोग पहले अग्निशमन यंत्रों में किया जाता था। हैलोन्स का प्रयोग डिफेंस सेक्टर में अभी भी होता है जो कि मांट्रियल प्रोटोकाल की परिधि में नहीं आता है।

1. विएना कन्वेशन : सन् 1985 में यूरोपीय आर्थिक समुदाय और 21 अन्य देशों ने मिलकर ओजोन परत में हो रही क्षति पर चिंता व्यक्त करते हुए जैव समुदाय की रक्षा के लिए एक समझौता किया। जिसमें सदस्य राष्ट्रों द्वारा ओजोन परत को क्षति पहुंचाने वाले रसायनों के उपयोगों पर प्रतिबंध लगाने संबंधी कुछ निर्णय लिए गए।

2. मान्ट्रियल प्रोटोकाल : सन् 1985 में यूनेप (संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम) ने मॉट्रियल, कनाडा में 48 विकसित राष्ट्रों के एक अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलन में कुछ निर्णय लिए। इन निर्णयों के अर्न्तगत यह प्रावधान था कि विकसित देश अपनी सी.एफ.सी. की खपत को धीरे–धीरे घटाएंगे जबकि विकासशील देशों में इन रसायनों की खपत तत्काल प्रभाव से रोकनी थी। परन्तु इस निर्णय के कारण विकसित और विकासशील देशों में मतभेद उत्पन्न हो गए और अंततः विकासशील देशों ने इस समझौते को स्वीकार नहीं किया।

तालिका–मांट्रियल प्रोटोकाल द्वारा नियंत्रित कुछ प्रमुख क्लोरोफ्लोरो कार्बन के गुण व उपयोग

कोड	आण्विक सूत्र	आयु वर्षो में	क्वथनांक	ओ.डी.पी.	मुख्य उपयोग
CFC-11	$CFCl_3$	71	23.7	1.0	फोम निर्माण
CFC-12	CF_2Cl_2	150	-29.8	1.0	प्रशीतक
CFC-113	$CF_2ClCFCl_2$	117	47.5	0.8	धुलाई (विलायक)
CFC-114	CF_2ClCF_2Cl	320	3.6	1.0	कूटने में
CFC-115	CF_3CF_2Cl	550	-39.1	0.6	कूटने में

ओ.डी.पी. (ODP) – ओजोन को नष्ट करने की क्षमता (Ozone Depletion Potential)

3. मांट्रियल प्रोटोकाल (प्रथम संशोधन) : सन् 1990 लंदन में हुए संशोधन में विकासशील देशों नें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एकत्र होकर मांट्रियल प्रोटोकाल में संशोधन हेतु आवाज उठाई। और मांट्रियल प्रोटोकाल में संशोधन हुआ तथा यह निश्चय किया गया कि सी.एफ.सी. का उपयोग तुरंत बंद न कर एक समयबद्ध योजना

बनाई जाए तथा इस हेतु 240 मिलियन डॉलर का एक विश्व कोष भी बनाया गया जिससे विकासशील देश सी.एफ.सी के विकल्पों की खोज हेतु आर्थिक सहायता प्राप्त कर सकें। इसमें यह निर्णय भी लिया गया था कि सन् 2000 तक सी.एफ.सी. का उत्पादन बंद कर दिया जाएगा। इस सम्मेलन/संशोधन में CFC-11, CFC-12, CFC, 113, CFS-114, CGC-115, हैलोन– 2402, मेथीलीन ब्रोमाइड और दस अन्य हैलोजनीकृत CFCs को पूर्ण नियंत्रित किए जाने वाले रसायनों/पदार्थों की श्रेणी में रखा गया है इनके उपयोग को पूर्णतया बंद करने के लिए समय सीमा भी निर्धारित की गई थी। इसके अतिरिक्त हाइड्रोफ्लोरोकार्बन जैसे HCFC-22, HCFC-123, HCFC-141, HCFC-142 रसायन नियंत्रित रसायनों की श्रेणी में नहीं रखे गए। जिन देशों का नियंत्रित रसायनों का वार्षिक स्तर 0-3 kg/capita से कम है उन्हें इन पदार्थों का उपयोग बंद करने की समय सीमा 2010 तक निर्धारित की गई थी।

4. कोपेनहेगेन वार्ता : सन् 1992 मांट्रियल प्रोटोकाल में कुछ और आवश्यक संशोधन किए गए और कई विकासशील देशों के साथ–साथ भारत ने भी इस समझौते का समर्थन किया। चूंकि भारत भी मांट्रियल प्रोटोकाल का समर्थक है और भारत को भी ओजोन नाशी सी.एफ.सी. के उपयोग को धीरे–धीरे बंद करना है। अतः भारत में पर्यावरण मंत्रालय के अधीन एक विशिष्ट ओजोन प्रकोष्ठ बनाया गया है जिससे सी. एफ.सी. उत्पादों का उपयोग बिल्कुल बंद किया जा सके। भारत में पर्यावरण वन मंत्रालय के द्वारा गणित ओजोन सेल इस हेतु सार्थक प्रयास करने वाला संस्थान है। (Website - www.ozone cell.com)

पता : ओजोन सेल, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार कोर 4B द्वितीय तल, हेवीटेट सेन्टर लोधी रोड, नईदिल्ली– 110003

5. विश्व मौसम संगठन : 12 सितम्बर, 1995 को इस संगठन की जिनेवा में जारी एक रिपोर्ट में बताया गया कि ओजोन परत में छिद्र का आकार काफी बढ़ गया है हालांकि अमरीका स्थित ''वर्ल्डवाच इंस्ट्रीट्यूट'' नामक संस्थान के सर्वेक्षण के अनुसार सन् 1988 से 1998 तक में सी.एफ.सी. के उत्पादन में 46 प्रतिशत की गिरावट आयी परन्तु ओजोन परत को नष्ट करने वाले रसायनों की जीवनावधि 60 से 100 वर्ष होती है अतः 2040 तक यह खतरा बना ही रहेगा। ओजोन परत के क्षरण से बचाव के लिए संयुक्त राष्ट्र ने अपने पर्यावरण कार्यक्रमों के अर्न्तगत **16 सितम्बर का दिन "विश्व ओजोन दिवस"** के रूप में मनाने का निर्णय लिया है। इस कार्यक्रम का

उद्देश्य निश्चित ही ओजोन परत को क्षति पहुंचाने वाले रसायनों के प्रति विश्व को सावधान करना है। आशा है कि 1995 से आरंभ यह कार्यक्रम इस समस्या को समाप्त करने में और ओजोन परत के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में मील का पत्थर साबित होगा।

6. क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFC) के विकल्प : सी.एफ.सी. के विकल्पों की खोज भी इस दिशा में एक सकारात्मक कदम है। विभिन्न उद्योगों हेतु विभिन्न विकल्पों की खोज एवं प्राप्त विकल्पों का परीक्षण किया जा रहा है। विभिन्न प्रशीतन प्रणालियों में CFC के प्रयोगों को धीरे–धीरे समाप्त कर निम्न विकल्पों का विकास किया जा रहा है।

वर्तमान में विभिन्न कार्यों में भारत में उपयोग में लाए जा रहे विकल्प रसायन

घरेलू फ्रिज	HFC-134a, HFC-152a and HCFC-22, CFC-22 + 142b, HCFC-141b फोमिंग है। हाइड्रोकार्बन
रेफ्रीजेरेटेर केबिनेट	HCFC-134a, HFC-152a हाइड्रोकार्बन रेफ्रीजेरेंट and HCFC-22, HCFC-22+142b HCFC-22, HFC-134a
आइस कैंडी मशीन एवं वाक इन कूलर	HCFC-22, HFC-134a रेफ्रीजेरेंट HCFC-14b फोमिंग
कोल्ड स्टोरेज प्रोसेस चिलर्स	HCFC-22, HFC-134 अमोनिया
	HCFC-22, HFC-134a अमोनिया
खराब होने वाली सामग्री के ट्रांसपोर्ट में	HCFC-22, HFC-134a
चिलर्स एवं ओटोमोटिव एयर कंडीशनिंग	HCFC-22, HFC-134a HCFC-22, HFC-134

स्रोत : www.ozone cell.com, दिनांक 21.8.2013

विकसित किए जा रहे विकल्पों के चयन में इस बात का विशेष ध्यान दिया जा रहा है कि वे –

- रासायनिक रूप से स्थाई व निष्क्रिय हों।
- इनकी ओजोन पर्त को नष्ट करने की क्षमता या ओ.डी.पी. (ओजोन डिप्लीटिंग पोटेंशियल) निम्नतम हों।

- ये ग्रीन हाउस प्रभाव (वायुमंडलीय ताप वृद्धि) को न बढ़ाए।
- अविषाक्त व अज्वलनशील हो।
- इनकी कीमत कम हो।
- इनका द्रवीय तथा गैसीय अवस्थाओं में परिवर्तन (द्रवीय से गैसीय तथा गैसीय से द्रवीय अवस्था) आसान हो, तथा इनका चक्रीयकरण हो सके अर्थात् आसानी से अपघटित होने वाले होने चाहिए अन्यथा एक नया विकल्प फिर किसी नयी समस्या को जन्म देगा।

ग्रीन हाउस या पौधाघर प्रभाव (Green House Effect)

शीत प्रधान देशों में फल और सब्जियों के उत्पादन के लिए हरित कांच गृह का प्रयोग होता है। इस हरित गृह में सूर्य किरणें निर्बाध पहुंचती हैं, लेकिन इन घरों से अवरक्त किरणें बाहर नहीं निकल पाती हैं नतीजन गृह के भीतर ताप वृद्धि होती है जिसका प्रयोग वनस्पति उगाने के लिए किया जाता है इसे हरित गृह प्रभाव कहते हैं। पिछले दशकों से यह अनुभव किया जा रहा है कि पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है, उसके कारण की व्याख्या इसी हरित गृह प्रभाव के आधार पर की गई।

वायुमण्डल में हैलोजन, कार्बनडाइआक्साइड, जलवाष्प एवं विभिन्न गैसें इत्यादि

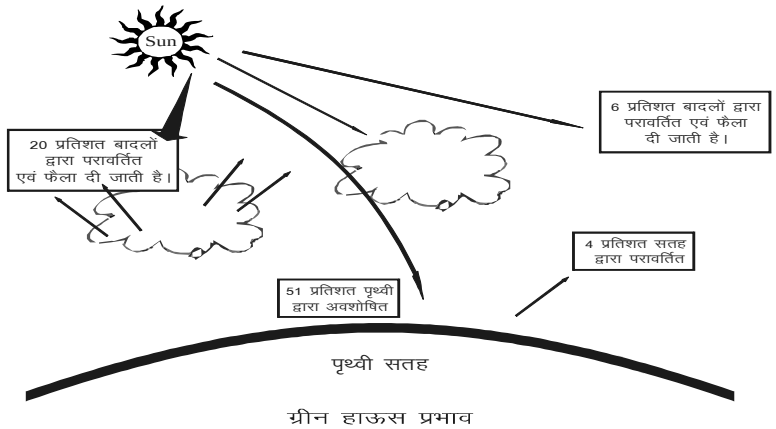

ग्रीन हाऊस प्रभाव

होती है। ये गैसें सूर्य से आने वाले दृश्य प्रकाश को पृथ्वी तक आने देती है, पर अवरक्त किरणों के अधिकांश भाग को अवशोषित कर लेती हैं। पृथ्वी तक पहुंचने वाली ऊष्मा

से पृथ्वी का ताप बढ़ जाता है और वह गर्म पिण्डों की भांति विकिरण उत्सर्जित करने लगती हैं। वायुमण्डल में कार्बनडाइऑक्साइड की अधिकता होने से उत्सर्जित ये विकिरण वायुमण्डल में अवशोषित होने के स्थान पर पृथ्वी पर ही परावर्तित हो जाते हैं। परिणामतः पृथ्वी का ताप बढ़ता जा रहा है। पृथ्वी के समीप निचले बादल भी अवरक्त किरणों को बाहर जाने से रोकते हैं। इस तरह से कार्बनडाइआक्साइड जैसी गैसों की बढ़ती मात्रा के कारण विकरणों के द्वारा पृथ्वी के ताप में वृद्धि की घटना को ग्रीन हाउस प्रभाव कहते हैं। ग्रीन हाउस वायु मंडल के टोपोस्फियर में एक कम्बल जैसे काम करता है। **जल वाष्प, कार्बनडाइआक्साइड, क्लोरीन, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड इत्यादि गैसें ग्रीन हाउस गैसों के रूप में जानी जाती है।** इनमें से जल वाष्प तथा कार्बन डाइआक्साइड मुख्य हैं जो सौर मंडल से किरणों को आने तो देती है परन्तु उन्हें वापिस जाने से रोकती है। जिसके कारण कि पृथ्वी का तापमान बना रहता है। अगर ये किरणें वापस चलीं जाए तो पृथ्वी का तापमान जल के हिमांक से कम हो जाएगा। इसी प्रकार अगर इनमें से कुछ गैसे कम ज्यादा होती हैं तो पृथ्वी के तापमान में परिवर्तन आना शुरू होने लगता है। वायु मंडल में कार्बन डाइआक्साइड, मीथेन और नाइट्रोजन के आक्साइडों के साथ सम्मिलित रूप से पृथ्वी से परावर्तित होकर जाने वाली सौर विकिरणों की कुछ मात्रा को अवशोषित कर लेते हैं और पृथ्वी के वायुमंडल का ताप लगभग 60^0F बनाए रखते हैं, जो जीवों की समुचित वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक है। विगत वर्षों में रसायनों के बढ़ते हुए उपयोग, जीवाष्म ईधन के जलने से और वृक्षों के अनियंत्रित कटाव से वायुमंडल में इन ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा भी बढ़ी है। और इसी का परिणाम है कि पृथ्वी के वायुमंडल का ताप इसकी उत्पत्ति के समय के ताप से 2.5^{0}C तक बढ़ गया है और ऐसा अनुमान है कि यह ताप वृद्धि बढ़ती ही जाएगी और अगली शताब्दी तक तापमान के 3 से 4.5^{0}C तक बढ़ जाने की आशंका है।

ग्रीन हाउस गैंसों के प्रभाव के कारण वायुमंडल में होने वाली ताप वृद्धि को ही ग्रीन हाउस प्रभाव या पौधाघर प्रभाव कहते हैं।

वातावरणीय सेवा, आन्टारियो के प्रख्यात पर्यावरणविद् डा. वाने इवान्स (Dr. Wayne Evans) का मानना है कि पिछले दो दशकों में ग्रीन हाउस गैसों द्वारा अवशोषित विकिरण की मात्रा दुगनी हो गई हैं, और विगत वर्षो में ग्रीन हाउस गैसों में क्लोरोफ्लोरो कार्बन, जिसे सामान्य तौर पर फ्रेआन (Freon or CFC) भी कहा जाता है, भी सम्मिलित हो गई है। CFC के एक अणु में CO_2 के एक अणु की

तुलना में 20,000 गुना अधिक ताप समाहित करने की क्षमता होती है। ऐसा अनुमान लगाया गया था कि सन् 2000 तक ग्रीन हाउस गैसों का कुल प्रभाव CO_2 के प्रभाव के बराबर हो जाएगा और सन् 2000 के बाद यह CO_2 के प्रभाव से भी बढ़ जाएगा। यह अनुमान था जो सत्य भी साबित हुआ।

तालिका – ग्रीन हाउस गैसें उनका वायुमंडल में स्थायित्व तथा उनकी वार्षिक वृद्धि दर

ग्रीन हाउस प्रभाव से गैस संबंधित	अणु सूत्र	स्थायित्व वर्षो में	सांद्रण	वार्षिक वृद्धि दर
1. कार्बन डाई आक्साइड	CO_2	2-3	345 ppm	0.5%
2. नाइट्रस आक्साइड	N_2O	150	301 ppb	0.25%
3. मीथेन	CH_4	11	1650 ppb	1.0%
4. क्लोरोफ्लोरो कार्बन CFC-11	$CF Cl_3$	75	0.20 ppb	7.0%
5. CFC-12	$CF Cl_2$	111	0.32 ppb	7.0%

(आंकड़े 1985 में किए गए एक शोध का परिणाम है)

तालिका – विभिन्न ग्रीन हाउस गैसें और उनके प्रभावों को बढ़ाने वाले संभावित कारक

ग्रीन हाउस गैंसे	प्रभाव को बढ़ाने वाले संभावित कारक
1. कार्बन डाईआक्साइड	किसी कार्बनिक ईधन का जलना, वृक्षों का कटाव
2. मीथेन	भूसी, बायो गैस व बायो मास का दहन, कोयले की खान मिट्टी का भराव
3. नाइट्रस आक्साइड	जैव ईंधन का दहन, जीवाष्म ईंधन का दहन
4. क्लोरोफ्लोरो कार्बन विशेष रूप से CFC-11, CFC-12	प्रशीतन संयंत्र निर्माण, शुष्क धुलाई, प्लास्टिक फोम का निर्माण

ग्रीन हाउस प्रभाव के दुष्परिणाम

मौसम में परिवर्तन : लगातार गर्मी में वृद्धि, अनियमित व अनिश्चित वर्षा आदि इसी के परिणाम है। 0.5 से 0-9ºC तक तापमान में वृद्धि एक शताब्दी में हो गयी

है। ऋतु में परिवर्तन की गति तेज है और गर्मी के मौसम की अवधि बढ़ने लगी है जिससे खेती पर भी विपरीत प्रभाव एवं सूखा पड़ने की संभावना है। आंधी, तूफान और बाढ़ की मात्रा भी बढ़ जाएगी।

हिम द्रवण : गर्मी से बर्फीली चोटियों और ध्रुवों की बर्फ पिघल कर समुद्र के जल स्तर को ऊंचा करेगी। लगातार तापमान में वृद्धि होने से अंटार्कटिका जैसे बर्फीले स्थानों पर बर्फ पिघलना शुरू हो गई है। परिणामस्वरूप समुद्र तल में वृद्धि हो रही है। समुद्र का जल स्तर बढ़ने से छोटे बड़े द्वीप और खेती योग्य भूमि पानी में डूब जाएगी। इससे लाखों लोग बेघर हो जाएंगे।

मनुष्य पर प्रभाव : मनुष्य, वनस्पति और जीव जन्तुओं का जीवन भी प्रभावित होगा। तरह–तरह के रोग, चर्मरोग, कैंसर, एनीमिया आदि में वृद्धि हो रही है।

जन्तुओं पर वनस्पति पर प्रभाव : पत्ते झड़ना, झुलसना, पोषण में कमी अब दिखने लगे है। जानवरों की अनुवांशिक संरचना में परिवर्तन की भी आशंका है।

पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव : पारिस्थितिक तंत्र पर व्यापक प्रभाव पड़ रहा है। परितंत्र के विभिन्न घटकों की संख्या में कमी हो रही है।

ओजोन पर्त का अपक्षय : जीवन सुरक्षा करने वाली ओजोन पर्त पर संकट आ ही चुका है। ग्रीन हाउस प्रभाव के कारण ओजोन पर्त में छेद बढ़ रहा है।

ग्रीन हाउस प्रभाव से भावी आशंकाएं

● वायुमण्डल के ताप में वृद्धि जिसके परिणामस्वरूप औसत वर्षा की मात्रा बढ़ जाएगी परन्तु पृथ्वी की सतह के वाष्पीकरण की दर भी बढ़ जाने के कारण अधिकांश क्षेत्रों की मृदा सूख जाएगी।

● समुद्रों के उष्मीय प्रसार के कारण समुद्रों का तल धीरे परन्तु स्थिर गति से बढ़ जाएगा और शायद इसका कारण ध्रुवीय क्षेत्रों से बर्फ का पिघलना होगा। ग्लेशियर के पिघलने से समुद्रों के क्षेत्र विस्तार की सम्भावना भी व्यक्त की जा रही है।

● वायुमण्डल में कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा बढ़ने से धरती के तापमान में होने वाली वृद्धि से विकासशील देशों की पैदावार के भी प्रभावित होने की आशंका है। 25 देशों के वैज्ञानिकों और अर्थशास्त्रियों के एक दल द्वारा संयुक्त राष्ट्रसंघ के लिए तैयार की गई एक अध्ययन रिपोर्ट में यह आशंका व्यक्त की गई है कि विकासशील देशों की अनाजों की पैदावार घट सकती है, जबकि इसके विपरीत विकसित देशों में उपज में बढ़ोत्तरी की संभावना व्यक्त की गई है। इस दल ने 1992 में अपनी रिपोर्ट में बताया कि तापमान में होने वाली वृद्धि कुछ इलाकों में सूखा,

अंधड़ और समुद्र तल में वृद्धि का भी कारण बन सकती है।

ग्रीन हाउस प्रभाव से बचाव के उपाय

● कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा पर नियंत्रण के लिए सामाजिक वानिकी तथा वृक्षारोपण जैसे कार्यक्रमों का आयोजन आवश्यक है क्योंकि कार्बन डाईआक्साइड की बढ़ती हुई मात्रा के लिए वृक्ष अच्छे नियंत्रक हैं।

● वनों की कटाई को बंद करके वनों के क्षेत्रफल का विस्तार आवश्यक है।

● जीवाष्म ईधनों के विकल्पों की खोज संबंधी शोध को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

● CFC या फ्रेयान का प्रयोग प्रतिबंधित होना चाहिए।

● कारखानों से निकलने वाले धुएं की ग्रीन हाउस गैसों के संबंध में जांच कर आवश्यक प्रतिबंध लगाए जाने चाहिए।

● वाहनों के उपयोग पर नियंत्रण होना चाहिए।

● प्रदूषक उपकरणों पर रोक लगाई जानी चाहिए।

● ऐसे वैकल्पिक स्रोतों की खोज जो ग्रीन हाउस प्रभाव उत्पन्न न करें।

● संचार माध्यमों द्वारा जागरूकता उत्पन्न करने का प्रयास।

अम्लीय वर्षा (Acid Rain)

ऐसी वर्षा जिसमें सल्फ्यूरिक या नाइट्रिक अम्लों (pH मान 5.5 से 5.6 से कम) की मात्रा अधिक होती है, अम्लीय वर्षा कहलाती है। वायुमण्डल में नाईट्रोजन के ऑक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड (SO_2) तथा सल्फर ट्राईआक्साइड (SO_3) की अधिकता होने पर ये गैसें वायुमण्डल में नमी से क्रिया कर नाइट्रिक और सल्फ्यूरिक अम्ल का निर्माण करती हैं। ये अम्ल वर्षा के माध्यम से भूमि पर आते हैं तो इसे अम्लीय वर्षा (Acid Rain) कहा जाता है।

सन् 1980 के बाद किए गए शोधों से यह बात ज्ञात हुई कि बीमारियों, सूखा और तापमान के अलावा वायु में विभिन्न प्रकार की गैसों की मात्रा बढ़ना भी फसलों तथा अन्य जीव जंतुओं को प्रभावित कर सकता है। आमतौर पर विभिन्न प्रदूषक इकाइयों से निकलने वाले सल्फर डाईआक्साइड और फ्लोराइड इसके लिए उत्तरदायी हैं।

सन् 1950–60 के मध्य यूरोप तथा अमरीका में बहुत से पेड़ असामान्य तौर पर नष्ट हो गए। उस समय इसका कारण नहीं जाना जा सका। 1970 के दशक के अंत

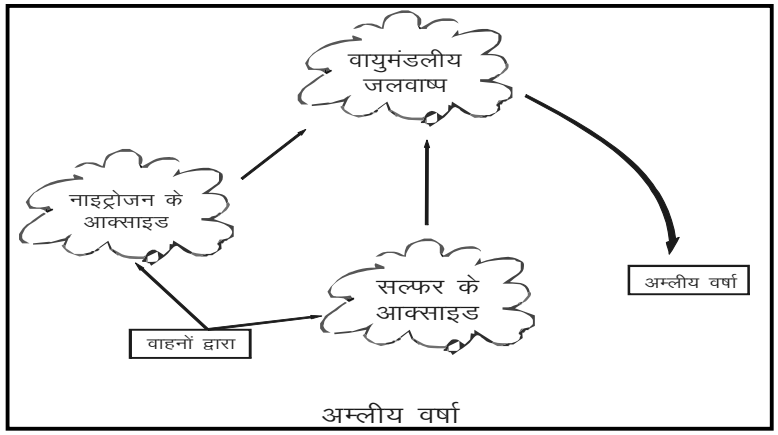

अम्लीय वर्षा

में जर्मनी में और 1980 में यूरोपीय देशों में प्रथम बार अम्लीय वर्षा को जाना गया। यूरोप में अम्लीय वर्षा के लक्षण अमरीका के तुलना में अधिक स्पष्ट तौर पर देखे गए और परिणामस्वरूप लगभग सभी महत्वपूर्ण प्रजातियां जो उस समय अत्यधिक संख्या में उपलब्ध थीं उनकी संख्या आश्चर्यजनक रूप से कम हो गई। अम्लीय वर्षा ने ऐतिहासिक इमारतों को प्रभावित किया है। मात्र अमेरिका में एक वर्ष में अम्लीय वर्षा से 7 मिलियन डालर की हानि हुई।

सोफिया मीटिंग (31 अक्टूबर से 4 नवम्बर 1988, बुल्गारिया में आयोजित) में प्रस्तुत आंकड़ों के आधार पर अम्लीय वर्षा बेल्जियम, चेकोस्लाविया, फिनलैंड, जर्मनी, इटली, नीदरलैंड, अमेरिका, स्वीडन, नार्वे, आस्ट्रेलिया, डेनमार्क, कनाडा, पोलेंड तथा इंग्लैंड में भी देखी गई है। 1987 में 22 यूरोपीय देशों के जंगलों के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हुआ है कि केवल आयरलैंड के वन अभी तक अम्लीय वर्षा से अप्रभावित हैं। बुल्गारिया, हंगरी, और इटली में इससे नुकसान की मात्रा कम है अर्थात् इन देशों के 30 प्रतिशत वन प्रभावित हुए जबकि 10 देशों के 50 प्रतिशत से भी अधिक वन इससे प्रभावित हुए हैं तथा बड़े पत्ते वाले वृक्षों में नुकसान 1 से 2 प्रतिशत ज्यादा है।

अम्लीय वर्षा की समस्या से निपटने के लिए प्रयास :

● अम्लीय वर्षा की समस्या से निपटने के लिए प्रयास प्रारंभ हो चुके हैं। उनमें से एक है तालाबों और वनों में चूने का एवं वनों में उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग परन्तु सबसे सरल और प्रभावी तरीका है इस अम्लीय वर्षा का कारकों के वायु में उत्सर्जन (Emission) पर रोक लगाना।

● **हेलसींकी प्रोटोकाल (Helsinki Protocol):** यह अम्लीय वर्षा के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण समझौता है जिसके अनुसार SO_2 के उत्सर्जन (Emission) की दर को 1980 से 1995 के मध्य 70 प्रतिशत कम करने का लक्ष्य था। सोफिया मीटिंग में प्रस्तुत आंकड़ों से ज्ञात हुआ कि SO_2 उत्सर्जन 1980 के मध्य 15 प्रतिशत कम हुआ।

● एक अन्य समझौता बुल्गारिया में सोफिया मीटिंग के 6 वें सत्र में हुआ जिसमें कि 25 देशों के प्रतिनिधियों की सहमति से एक घोषणा पत्र हस्ताक्षर हुए कि सभी देश 1994 से नाइट्रोजन के आक्साइड का उत्सर्जन बंद कर देंगे।

अम्लीय वर्षा से होने वाली हानियां :

- वृक्षों/वनों का विनाश,
- जल श्रोतों का अम्लीयकरण,
- जलीय जीवों व वनस्पतियों का विनाश, एवं
- ऐतिहासिक इमारतों का क्षय।

ग्लोबल डिमिंग या प्रकाश की कम उपलब्धता (Global Dimming)

प्रति वर्ष पृथ्वी पर आने वाले सूर्य के प्रकाश में कमी आ रही है। इस बारे में वैज्ञानिक विगत कुछ वर्षों से कार्य तो कर रहे हैं परन्तु इसका कारण क्या है और इसका भविष्य क्या होगा कोई भी बता नहीं पाया है। पृथ्वी पर पहुंचने वाला कुल सौर विकिरण वायुमंडल के ऊपरी भाग में पहुंचने वाले सूर्य प्रकाश एवं वायुमंडल की पारगम्यता पर निर्भर करता है। 2005 में किए गए अध्ययनों से स्पष्ट हुआ कि 1960 से 1990 के दशक में सौर विकिरण की मात्रा 4 से 6 प्रतिशत घट गई है और विगत 50 वर्षों में यह कमी 10 प्रतिशत से अधिक हुई है। इस घटना को ग्लोबल डिमिंग (Global Dimming) नाम दिया गया। ऐसा माना जा रहा है यदि प्रतिवर्ष सौर विकिरण में आने वाली कमी को 3 प्रतिशत आंका जाए तो पृथ्वी 330 वर्षों में प्रकाश रहित हो जाएगी। फसलों का पकना और उत्पादन में गिरावट भी इसके अहम नुकसान के रूप में देखे जा रहे हैं। वैश्विक रूप से वर्षा चक्र भी इससे प्रभावित होगा। कुछ अध्ययन वायुमंडलीय ताप वृद्धि को इसका प्रभाव मानते हैं तो कुछ अध्ययन इस घटना को वायुमंडलीय ताप वृद्धि का कारक भी बता रहे हैं।

2005 में किए गए कुछ अध्ययन यह प्रमाणित करते हैं कि प्रभाव वैश्विक न

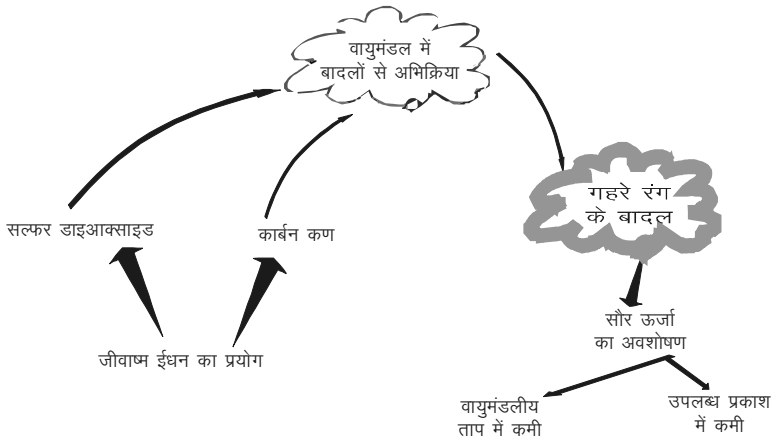

ग्लोबल डिमिंग

होकर उन क्षेत्रों में अधिक है जिन क्षेत्रों को बड़े शहरीय क्षेत्रों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है। अभिप्राय यह है कि जिन क्षेत्रों में इसके कारकों की उत्पत्ति के अधिक स्रोत मौजूद हैं उन क्षेत्रों में इसके प्रभाव अधिक हैं।

कुछ अध्ययनों के परिणाम बताते हैं कि जीवाष्म ईधन के दहन से उत्पन्न छोटे–छोटे कार्बन कण एवं रसायन जैसे सल्फेट सूर्य प्रकाश से अभिक्रिया करते हैं साथ ही ये बड़े और लंबे समय तक बने रहने वाले बादलों के निर्माण में सहायक होते हैं। बादलों का रंग भी समय के साथ गहरा होता देखा गया है। यह प्रक्रिया वातावरण को ठंडा प्रभाव भी देती है। जिससे इसे वायुमंडलीय तापवृद्धि प्रक्रिया के विपरीत प्रक्रिया भी माना जा सकता है क्योंकि इस प्रक्रिया से ग्रीन हाउस गैसों का प्रभाव दब जाता है। जीवाष्म ईधनों का दहन ग्रीन हाउस गैसों को उत्पन्न तो करता ही है साथ ही इस दहन प्रक्रिया के परिणामस्वरूप कुछ सह उत्पाद भी निकलते हैं। ये हैं सल्फर डाइआक्साइड, कुछ कार्बन कण और राख। यह सह उत्पादक भी प्रदूषक है परन्तु इनकी क्रियाशीलता भिन्न है और ये बादलों के गुणों को बदलने में सक्षम हैं। बादलों का सामान्यतया निर्माण तब होता है जब वायुमंडल में पानी की बूंदें वायु में उपलब्ध कणों के ऊपर जम जाती है। अब यदि वायुमंडल में कणों की अधिकता होगी तो पानी की बूंदों का जमाव भी अधिक घना होगा। ऐसा माना जा रहा है कि वायुमंडल में एयरोसोल कणों का जमाव भी ग्लोबल डिमिंग का कारक है। एयरोसोल कण एवं अन्य कणीय प्रदूषक सौर ऊर्जा को अवशोषित करते हैं और साथ ही सौर प्रकाश को

भी पृथ्वी पर आने से रोकते हैं। ये प्रदूषण पानी के बूंदों के लिए केन्द्र या नाभिक के समान कार्य करते हैं। अतः वायुमंडल में जितना इन प्रदूषकों का अधिक जमाव होगा उतना ही अधिक बड़े और घने बादलों का निर्माण होगा और समस्याओं का विस्तार भी उतना ही अधिक होगा। यह प्रक्रिया ग्लोबल वार्मिंग की प्रक्रिया से सैद्धांतिक रूप से भिन्न इसलिए है क्योंकि ग्लोबल वार्मिंग की प्रक्रिया एवं काफी धीमी प्रक्रिया है। जबकि ग्लोबल डिमिंग की प्रक्रिया काफी तेज है और इसके त्वरित प्रभाव दिखाई देने लगे हैं। ग्लोबल डिमिंग के लिए उत्तरदायी कारकों के दो प्रकार के प्रभाव देखे गए हैं –

1. विकिरणों को परावर्तित कर वापस भेजना और उन्हें पृथ्वी पर पहुंचने से रोकना है (कारक–सल्फर के आक्साइड)

2. विकिरणों को अवशोषित कर उन्हें पृथ्वी पर पहुंचने से रोकना (कारक–कार्बन कण)

GRID - ARENDAL सन् 1989 में नार्वे सरकार द्वारा स्थापित किया गया एक संस्थान है जो UNEP से संबद्ध है। इस संस्थान का प्रमुख दायित्व पर्यावरण से जुड़ी सूचनाओं का प्रचार–प्रसार है। इस संस्थान द्वारा 2008 में जारी एक रिपोर्ट में बताया गया कि एशिया के निम्न क्षेत्र वे हाट स्पाट्स हैं जहां पर घने और गहरे रंग के बादलों की उपस्थिति दर्ज है –

– पूर्व एशिया जिसमें पूर्वी चाइना भी शामिल है। दक्षिणी एशिया में इंडोग्रेगेटिक तक, इसमें पाकिस्तान, भारत, बांग्लादेश और म्यांमार के हिस्से भी शामिल हैं।

– दक्षिण पूर्वी एशिया जिसमें अंगोला, जाम्बिया और जिम्बाबे भी शामिल है।

– दक्षिण अमेरिका का एमेजन बेसिन

साथ ही इस रिपोर्ट में विश्व के 13 शहर भी घने और गहरे रंग के बादलों के हाट स्पॉट के रूप में चिन्हित किए गए थे। ये शहर हैं –

बैंकाक, बीजिंग, कैरो, ढाका, करांची, कोलकाता, लागोस, मुम्बई, नईदिल्ली, सियोल, शंघाई, शेन्झेन, और तेहरान। इन शहरों में कार्बन कणों का वायुमंडल में जमाव कुल मानव जनित कणों के 10 प्रतिशत तक देखा गया है। भारत में प्रकाश की कमी की घटना 1960 से 2000 के मध्य लगभग 2 प्रतिशत और 1980 से 2004 के मध्य इसकी दो गुनी देखी गई है।

ग्लोबल डिमिंग के प्रभाव –

● सुनने में यह ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव को कम करने वाला लगता है परन्तु इसके लंबे समय में प्रभाव घातक होंगे। एशियन मानसून जो आधे से ज्यादा विश्व को वर्षा दे रहा है सबसे पहले इससे प्रभावित होगा।

● यदि इससे केवल समुद्र ही गर्म हो गए तो उससे वर्षा चक्र प्रभावित हो जाएगा।

● साथ ही पार्टीकुलेट मैटर की प्रदूषक रूप में वायुमंडल में मात्रा बढ़ने से भूरे बादल बनेंगे जिससे बारिश की मात्रा भी प्रभावित होगी।

● मृदा अपरदन बढ़ेगा और उत्पादन कम होगा।

● हरियाली जल्दी समाप्त होगी।

● इससे श्वसन तंत्र संबंधी बीमारियां बढ़ेंगी।

● अम्लीय वर्षा और प्रकाश रासायनिक कुहासे की मात्रा भी बढ़ेगी।

● पौधों को प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया हेतु कम प्रकाश प्राप्त होगा जिससे पौधों की भोजन निर्माण प्रक्रिया प्रभावित होगी परिणामस्वरूप मानव एवं अन्य जीव जंतु भी चूंकि पौधों द्वारा बनाए गए भोजन पर आश्रित रहते हैं प्रभावित होंगे।

● बादलों का रासायनिक संगठन भी प्रभावित होगा।

प्रकाश रासायनिक कुहासा/धुंध

(Photo Chemical Fog)

रसायनों की वायुमण्डलीय कारकों से मिलकर धुंध निर्माण की प्रक्रिया जो पृथ्वी पर पहुंचने वाले प्रकाश की मात्रा को निर्धारित करती है प्रकाश रासायनिक धुंध कहलाती है। पेट्रोल और डीजल के अपूर्ण दहन से उत्पन्न होने वाले विभिन्न हाइड्रोकार्बन एवं नाइट्रोजन के विभिन्न आक्साइड, वायुमण्डलीय जलवाष्प के साथ मिलकर सूर्य प्रकाश के प्रभाव से धुंध (कोहरा) का निर्माण करते हैं। इस कोहरे से सूर्य के प्रकाश की पृथ्वी पर पहुंचने वाली मात्रा में आश्चर्यजनक रूप से कमी आ जाने के कारण पौधों और जंतुओं की समुचित वृद्धि प्रभावित होती है।

चूंकि पृथ्वी पर पहुंचने वाली प्रकाश की मात्रा पौधों द्वारा बनाए जाने वाले भोजन की मात्रा से संबंधित है और साथ ही जैवमण्डल में पाए जाने वाले सम्पूर्ण जीवधारी

पौधों द्वारा बनाए गए भोजन पर ही आश्रित हैं अतः पौधों के प्रभावित होने का तात्पर्य सम्पूर्ण जैवजाति के प्रभावित होने से है। ये धुंध भूरे रंग के धूम्र होते हैं जो पौधों की वृद्धि को प्रभावित करने के साथ नेत्रों में तीव्र जलन पैदा करते हैं और फेफड़ों पर भी हानिकारक प्रभाव डालते हैं।

मोटर गाड़ियों के इंजनों में अपूर्ण दहन के फलस्वरूप हाइड्रोकार्बन के साथ–साथ नाइट्रोजन के ऑक्साइड भी निकल कर हवा में मिल जाते हैं। विविध हाइड्रोकार्बन सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में नाइट्रोजन के ऑक्साइडों और वायु में उपस्थित ऑक्सीकारकों जैसे ओजोन, हाइड्रोजन परॉक्साइड, कार्बनिक परॉक्साइड, कार्बनिक हाइड्रो–परॉक्साइड तथा एरॉक्सी–एसिल–नाइट्रेट से संयुक्त हो कर विभिन्न गैसीय संयोजनों का निर्माण करते हैं जिसके फलस्वरूप आक्सीकारक किस्म के कुहासे बनते हैं। इस प्रकार के कुहासे को प्रकाश रासायनिक कुहासा कहते हैं क्योंकि इस प्रक्रिया में रासायनिक अभिक्रिया में प्रकाश का होना आवश्यक है। प्रकाश–रासायनिक कुहासे में सब से अधिक हानिकारक कार्बनिक ऑक्सीकारक है पराक्सीएसिल नाइट्रेट जिसका रासायनिक सूत्र है – CH_3-CO-O-NO_2

पराक्सी एसिल नाइट्रेट का निर्माण वातावरण में उपस्थित ओलिफीन्स तथा नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO_2) की प्रकाश–रासायनिक अभिक्रिया द्वारा होता है। पराक्सी–बेजोइल नाइट्रेट या C_6H_5-CO-O-NO_2 भी कुहासे (दूषित वातावरण) में पाया जाता है जो आंखों में खुजली उत्पन्न कर देता है।

वातावरण में आक्सीकारकों, विशेषकर ओजोन की उपस्थिति प्रकाश–रासायनिक कुहासे के बनने में सहायक होती है। यदि आक्सीकारक का स्तर 0.15 भाग प्रति दस लाख भाग (पीपीएम) एक घंटे से अधिक समय के लिए हो जाता है तो वातावरण में प्रकाश–रासायनिक कुहासा प्रचुर मात्रा में बनने लगता है।

प्रकाश–रासायनिक कुहासे के बनने की क्रिया

प्रकाश–रासायनिक कुहासा शृंखलाबद्ध अभिक्रियाओं में बनता है जिस में अत्यन्त तीव्रता से अभिक्रिया करने वाले इंटरमीडिएट्स भाग लेते हैं। प्रकाश रासायनिक कुहासे के निर्माण के लिए हाइड्रोकार्बनों, ओलिफीनों, नाइट्रोजन के आक्साइडों तथा पराबैंगनी प्रकाश का होना आवश्यक है। कुहासा निर्माण का प्रमुख अभिकर्मक नाइट्रोजन डाइ–आक्साइड है। इस अभिक्रिया में सूर्य का प्रकाश उत्प्रेरक की तरह कार्य करता है। क्रियाशील हाइड्रोकार्बन मुक्त मूलक (फ्री रेडिकल), ओजोन तथा मोटर गाड़ियों के

धूम्र पाइपों से निकलने वाले हाइड्रोकार्बन के संयोग से बनता है।

प्रकाश–रासायनिक कुहासे में सल्फेट व नाइट्रेट

वातावरण में सल्फेट का निर्माण हाइड्रोजन सल्फाइड तथा सल्फर डाइ–ऑक्साइड दोनों के आक्सीकरण से होता है। सल्फेटों के बनने पर अम्लीय वर्षा होती है जिससे आंखों की रोशनी क्षीण हो जाती है, वस्तुएं क्षतिग्रस्त हो जाती है तथा स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। सल्फर डाइ–ऑक्साइड के सल्फेट में आक्सीकृत होने की क्रिया यद्यपि स्वच्छ वातावरण में कम होती है परन्तु कुहासे वाले वातावरण में यह क्रिया अत्यंत तीव्र हो जाती है। सल्फर डाइ–ऑक्साइड के आक्सीकरण की दर बढ़ जाने का कारण है प्रकाश–रासायनिक कुहासे में उपस्थित आक्सीकारक जैसे O_3, NO_3, N_2O_5 तथा अत्यन्त क्रियाशील हाइड्रोकार्बन मूलक। आक्सीकरण, आक्सीजन परमाणु के स्थानान्तरण द्वारा होता है।

$SO_2 + O$ (O_3, NO, NO_2 से) $\longrightarrow SO_3$, H_2SO_4, SO_4

कुहासे वाले वातावरण में अकार्बनिक नाइट्रिक अम्ल निम्न प्रकार से बनता है :

$N_2O_5 + H_20 \longrightarrow 2HNO_3$

$HO_1 + NO_2 \longrightarrow HNO_3$

इस प्रकार बना नाइट्रिक एसिड वातावरण में उपस्थित अमोनिया से अभिक्रिया कर के अमोनियम नाइट्रेट बनाता है। नाइट्रिक एसिड तथा नाइट्रेट प्रकाश–रासायनिक कुहासे को विषाक्त करने के प्रमुख कारक है। इनका दुष्प्रभाव न केवल मनुष्य पर बल्कि पौधें तथा निर्जीव वस्तुओं पर भी पड़ता है।

कुहासे का कुप्रभाव

● कुहासे अपने बुरे प्रभाव से मनुष्य तो क्या, निर्जीव वस्तुओं तथा पेड़–पौधों को भी नहीं छोड़ता है। अपचयनकारी कुहासे में प्रमुख रूप से पाई जाने वाली गैस सल्फर डाइ आक्साइड मानव के लिए अत्यन्त हानिकारक है। यह मनुष्य के श्वसन तंत्र में पाए जाने वाले रोमकों (सीलिया) की कार्यशक्ति को मन्द कर देती है। दांतों के एनेमल पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। इस से आंखों व त्वचा में क्षोभ का अनुभव होता है। सब से भयंकर बात यह है कि इस गैस का दुष्प्रभाव स्थाई होता है।

● वायु में सल्फर डाइ आक्साइड की मात्रा बढ़ जाने पर दमे के दौरे भी बढ़े हुए देखे गए हैं। असाध्य (क्रानिक) जुकाम, वातस्फीति (एम्फाइसीमा) तथा थकान के

लिए कुछ हद तक सल्फर डाइ आक्साइड गैस उत्तरदायी होती है। इस गैस के कारण हृदय रोग व रक्त की कमी (एनीमिया) की भी शिकायत हो जाती है।

● अपचयनकारी कुहासे में उपस्थित सल्फर डाइ ऑक्साइड तथा सल्फ्यूरिक अम्ल पौधों को भी हानि पहुंचाते हैं। अमेरिका के न्यूजर्सी राज्य के कोर्टेरेट नगर में एक तांबा संशोधन कारखाना था जिससे कई वर्ष तक सल्फर डाइ आक्साइड का धुआं विसर्जित होता रहा। इसके परिणामस्वरूप वहां किसी भी घर में चीड़ के वृक्ष नहीं पनप पाए। कोई 60 वर्ष पूर्व 'टेनेसी' स्थित 'डक टाउन' नगर में तांबा गलाने के दो प्रगालक थे जिन में से निकलने वाली सल्फर डाइआक्साइड की अधिकता ने वहां की जमीन को इतना विषैला कर दिया कि आज भी वहां हरियाली नाममात्र को ही दिखाई देती है। अमेरिका में टेनेसी नदी घाटी योजना के एक बिजलीघर में इतना सल्फर डाइ आक्साइड निकलता है कि उसके पास स्थित किंग्सटन नगर में 40 मील व्यास के क्षेत्र में 90 प्रतिशत श्वेत चीड़ के वृक्ष नष्ट हो गए।

● **अन्य वस्तुओं पर प्रभाव –** विडंबना तो यह है कि सल्फर डाइ आक्साइड तथा सल्फ्यूरिक अम्ल से केवल जीवित वस्तुएं ही नहीं प्रभावित हुईं वरन् धातुओं के पेंट, पालिश तथा पत्थर जैसी वस्तुओं का भी क्षरण हो जाता है। वायु में उपस्थित सल्फ्यूरिक अम्ल नाइलोन के मोजे को लगभग पूरी तरह गला डालने की क्षमता रखता है। न्यूयार्क में सल्फर डाइ आक्साइड की सान्द्रता की अधिकता के कारण वहां क्षरण की समस्या भी एक प्रमुख समस्या है। इसका स्पष्ट उदाहरण है वहां का अस्पताल सेंट ल्यूकस। इस अस्पताल का संगमरमर व टेराकोटा का बना गुम्बद अनेक वर्ष तक सल्फर डाइ आक्साइड के सम्पर्क में रहने के कारण इतना अधिक संक्षरित हो गया कि छूने मात्र से चूर–चूर हो जाता था। अन्ततः इस गुम्बद को बदल कर उस अस्पताल की छत को एक सपाट छत का रूप दे दिया गया।

जलवायु परिवर्तन (Climate Change)

जलवायु परिवर्तन और उसके फलस्वरूप पृथ्वी के तापमान में लगातार वृद्धि के प्रति बढ़ती चिंता कोई नई बात नहीं। आज से एक सदी पहले ही वैज्ञानिकों ने यह भविष्यवाणी कर दी थी कि जंगल की आग की तरह फैलती औद्योगिक क्रांति में ऊर्जा की जरूरतों की पूर्ति के लिए जिस तेज रफ्तार से जीवाश्मों (फासिल्स) को जलाया जा रहा है, उसके मद्देनजर पृथ्वी पर तापमान इस हद तक बढ़ जाएगा कि उसे सामान्य पर लाना असंभव होगा। उनकी चेतावनी को कि जलवायु में परिवर्तन

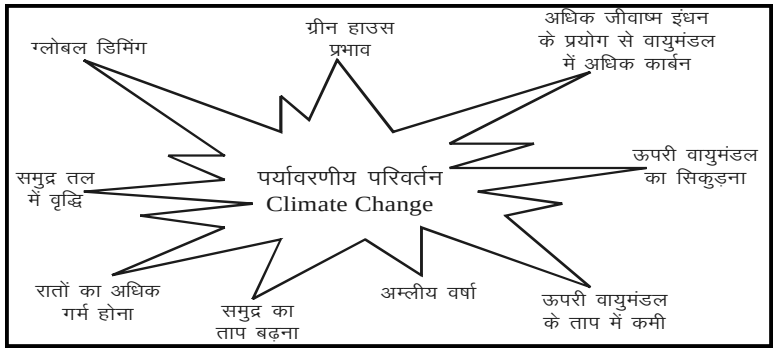

से जीवन और समाज का क्षेत्र, धरती का हर कोना प्रभावित होगा, तब तक संजीदगी से नहीं लिया गया, जब तक भयंकर तबाही मचाने वाले उसके विनाशकारी नतीजे हमने अपनी आंखों से नहीं देख लिए। अब यह करीब–करीब स्पष्ट हो गया है कि पृथ्वी के तापमान में मौजूदा वृद्धि के गंभीर पर्यावरणीय नतीजे न केवल मौजूदा पीढ़ी को, बल्कि आने वाली पीढ़ियों को भी भुगतने पड़ेंगें।

जलवायु परिवर्तन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके साथ ही कई प्रतिक्रयाएं जुड़ी हैं। विश्व वैज्ञानिकों की एक संस्था इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑफ क्लाइमेट चेंज (IPCC) के मुताबिक तापमान में बढ़ोतरी के फलस्वरूप सन् 2030 तक विश्व में समुद्र के पानी का स्तर 20 सेंटीमीटर और अगली सदी के अंत तक 65 सेंटीमीटर बढ़ जाएगा। परिणाम यह होगा 300 प्रशांत प्रवाल द्वीप पूरी तरह से मिट्टी में मिल सकते हैं और हिन्द महासागर तथा कैरबियन सागर के अनेक द्वीप भी बुरी तरह तबाह हो सकते हैं।

यही नहीं, समुद्र के पानी के सतह की ओर प्रवाह से दुनिया के कई हिस्सों में भूमि लवण से दूषित हो जाएगी। उपजाऊ भूमि पर खारे पानी के प्रवेश से भूमि की उर्वरा शक्ति कम हो जाएगी जानलेवा उष्णकटिबंधी रोगों का प्रसार होगा, बाढ़ से प्रभावित पर्यावरणीय शरणार्थियों की संख्या दिनों दिन बढ़ती जाएगी। पिछली सदी के पांच सबसे गर्म साल 80 के दशक में ही दर्ज किए गए। आई. पी.सी.सी. का यह दावा है कि तापमान में बढ़ोत्तरी के फलस्वरूप आज दुनिया भर में ग्लेशियर बड़ी तेज रफ्तार से पिघल रहे हैं और 1980 से हिमपात का औसत भी लगातार घटता जा रहा है।

तापमान में वृद्धि से गर्म और उष्ण कटिबंधी क्षेत्र तो प्रभावित हुए हैं,

अपेक्षाकृत ठंडे क्षेत्र भी उसके प्रतिकूल प्रभावों की गिरफ्त से नहीं बच पाए हैं। विश्व मौसम विज्ञान संगठन (डब्ल्यू.एम.ओ.) के मुताबिक आज वाशिंगटन डी.सी. में प्रतिवर्ष एक दिन के औसत से तापमान 38 डिग्री सेल्सियस को भी पार कर जाता है, जबकि साल में 35 दिन यही तापमान 32 डिग्री सेल्सियस से ऊपर पहुंचता है। डब्ल्यू.एम. ओ. का मानना है कि मौजूदा प्रवृत्तियां जारी रहने पर इस सदी के मध्य तक वहां 12 दिन तापमान 38 डिग्री को भी पीछे छोड़ देगा। वाशिंगटन तथा उस जैसे अन्य शहरों में तापमान में इस बढ़ोत्तरी के मानवीय स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में पहले से कुछ कहना कठिन है लेकिन इतना तय है कि शहरी क्षेत्रों में तापमान में बढ़ोत्तरी से अनेक जानें जा सकती हैं। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूनेप) की एक विज्ञप्ति के मुताबिक मानवीय गतिविधियों के फलस्वरूप हर साल 5.7 अरब टन कार्बन वायुमण्डल में घुलकर उसे जहरीला बना रहा है। इसके अलावा क्लोरोफ्लोरो कार्बन (सी.एफ.सी.) मिथेन तथा नाइट्रस आक्साइड जैसी ग्रीन हाउस गैंसे भी कार्बन के साथ मिलकर पर्यावरण को लगातार प्रदूषित कर रही हैं। इनमें कार्बन डाय आक्साइड सर्वप्रथम ग्रीन हाउस गैस है और तापमान में 55 प्रतिशत बढ़ोत्तरी इसी गैस के कारण हो रही है। यह गैस वायुमण्डल में कई दशकों और यहां तक कि सदियों तक बनी रहती है। ''यूनेप'' का तो यहां तक कहना है कि अगर आज उक्त गैसों को वायुमण्डल में छोड़ना बंद कर दिया जाए तो भी पृथ्वी का तापमान बढ़ता रहेगा और कम से कम एक दशक तक जलवायु में परिवर्तन होता रहेगा।

वैज्ञानिकों का दृढ़ अभिमत है कि तापमान में बढ़ोत्तरी से रोगवाहक वायरस–बैक्टीरिया आदि अपनी भौगोलिक सीमाओं को लांघकर नए क्षेत्रों में प्रवेश कर जाएंगे जिसके परिणामस्वरूप अपरिचित रोग सामान्य हो जाएंगे। उनके मुताबिक तापमान में वृद्धि के साथ–साथ गर्मी जनित रोगों में बढ़ोत्तरी तथा सर्दी जनित रोगों में कमी होगी। यकृत, पोलियो, हैजा, मैनिनजाइटिस आदि जैसे रोग फले फूलेंगे। समुद्र के जल स्तर में वृद्धि के फलस्वरूप आने वाली बाढ़ो से तटवर्ती क्षेत्रों में जल निकास पद्धति पर भी प्रतिकूल असर पड़ेगा, जिससे विशेषकर बच्चों में डायरिया और ज्यादा बढ़ने की आशंका व्यक्त की गई है। इससे मछली जैसे समुद्री उत्पादों पर भी, जो एशिया के लोगों की 40 प्रतिशत खाद्य पदार्थ की जरूरत पूरी करते हैं, गहरा असर पड़ेगा ओर उनकी सप्लाई में कमी से इस क्षेत्र में प्रोटीन की कमी तथा कुपोषण जैसी समस्याएं जटिल होंगी।

जिस एक समस्या के इतने अधिक आयाम हों, उसका समाधान भी जाहिर है

उतना ही जटिल और दुरूह होगा। विश्व के करीब–करीब सभी वैज्ञानिक और पर्यावरणविद एकमत हैं कि इस स्थिति से कारगर ढंग से निपटने के लिए तत्काल कार्यवाही के रूप में कार्बन डाई आक्साइड का निस्सरण में 60–80 प्रतिशत और मिथेन गैसों का निस्सरण 15–20 प्रतिशत तक कम करने की तत्काल आवश्यकता है।

ओजोन परत को क्षति पहुंचाने वाली सी.एफ.सी. गैसों के प्रयोग को क्रमबद्ध ढंग से बंद करने के प्रस्ताव को भी तत्काल कार्यरूप दिया जा रहा है।

द्वितीय विश्व जलवायु सम्मेलन में भी इस बात पर आम सहमति थी कि कार्बन डाईआक्साइड के निस्सरण में सालाना 1–2 प्रतिशत और मिथेन गैसों के निस्सरण में 15–20 प्रतिशत की कमी लाने के प्रयास अभी से शुरू किए जाने चाहिए। लेकिन यह तभी संभव होगा, जब संपन्न और विकासशील देश इस दिशा में अग्रणी भूमिका निभाते हुए विकासशील देशों को आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाने के साथ–साथ नई और उन्नत तकनीकी भी प्रदान करेंगे।

भूस्खलन (Land Sliding)

भूस्खलन एक भूवैज्ञानिक घटना है जब चट्टानें प्राकृतिक या मानवीय कारणों से चटक जाती है और गुरुत्वबल के कारण नीचे की ओर खिसकती है तो इस घटना को भूस्खलन कहा जाता है।

भूस्खलन कई प्रकार के हो सकते हैं और इसमें चट्टान के छोटे–छोटे पत्थरों के गिरने से लेकर बहुत अधिक मात्रा में चट्टान के टुकड़े और मिट्टी का बहाव भी शामिल हो सकता है तथा इसका विस्तार कई किलोमीटर की दूरी तक हो सकता है।

चट्टानों, मिट्टी और वनस्पतियों का किसी ढलान पर नीचे की ओर खिसकना ही भूस्खलन है। भूस्खलन, एक चट्टान के अकेले टुकड़े से लेकर, मलबे के बहुत बड़े तूफान तक के रूप में हो सकता है जिसमें भारी मात्रा में चट्टानें और मिट्टी कई किलोमीटर तक फैल सकते हैं।

भारी मूसलाधार बरसात या भूकंप भी भूस्खलन का कारण बन सकते हैं। मानवीय क्रियाकलाप, जैसे कि पेड़ों और वनस्पतियों को हटाया या साफ किया जाना, सड़कों को गहरा कटाव या पानी के पाईपों का रिसाव भी भूस्खलन उत्पन्न कर सकते हैं। अधिकांश भूस्खलन, बिना सार्वजनिक चेतावनी के होते हैं और इनके चेतावनी संकेतों को समझना और फौरन कार्यवाही करना महत्वपूर्ण है।

भूस्खलन से पहले की गई तैयारी से आपको अपने घर तथा व्यापार को होने

वाले नुकसान को कम करने में मदद मिलेगी तथा जीवित बच निकलने में सहायक होगी –

- पता लगाएं कि आपके इलाके में पहले भी कभी भूस्खलन हुआ है तथा उनके दुबारा कहां होने की संभावना है।
- तीव्र ढलान या प्राकृतिक क्षरण वाले स्थानों में निर्माण कार्य से बचें।
- धरती के हिलने के चिन्हों की जांच करें। इन चिन्हों में निम्नलिखित शामिल हैं –

(1) दरवाजे तथा खिडकियों की चौखटों में अटकन।

(2) दरारें जहां चौखटें ठीक से नहीं बैठ रही हों या फिट नहीं हो रही हों।

(3) डैक तथा बरामदे बाकी के सारे घर से कुछ दूरी पर खिसक या झुक रहे हों। धरती, सड़क या फुटपाथ में नई दरारें या उभार आ गए हों।

(4) पेड़ों, रिटेनिंग (प्रतिधारक) दीवारों या फेन्सिग (बाड़ों) में झुकाव आना।

(5) ऐसे इलाके जो सामान्य रूप से गीले नहीं होते वहां पानी का अचानक निकलना, रिसाव या रुकाव होना।

यदि आपको लगता है कि भूस्खलन होने वाला है आपके लिए यह जानना जरूरी है कि ऐसे में आपकी तुरन्त क्या प्रतिक्रिया होनी चाहिए–निष्क्रमण करें (बाहर निकालें)।

भूस्खलन के लिए उत्तरदायी कारण –

(i) प्राकृतिक कारण –

- अतिवर्षा
- भूकम्प
- जलरिसाव के कारण कटाव
- नदी घाटी का कटाव
- अपक्षय जनित चट्टानों का चटकना
- ज्वालामुखी का फटना

(ii) मानवीय कारण

- अनियोजित मानवीय गतिविधियों जैसे बांध निर्माण, सुरंग, पुल, सड़क जलाशय, खान आदि का निर्माण।

- वनस्पति आवरण को हटाना
- प्राकृतिक जल स्रोतों को प्रभावित करना।
- ढलानों पर दबाव बढ़ाना।
- यातायात के कारण उत्पन्न दबाव एवं हलचल।
- चट्टानों को हटाना।

यह भी उल्लेखनीय है कि मानवीय गतिविधियों का होना विकास का भी द्योतक है परन्तु विकास हेतु की जाने वाली गतिविधि के पूर्व उस क्षेत्र के हालात, भूगर्भिक संरचना एवं पारिस्थितिकी पर पड़ने वाले प्रभावों का आकलन भी अनिवार्य है।

भूस्खलनों को मिट्टी के खिसकने या मलबे के प्रवाह के नाम से भी जाना जाता है, ये अमेरिका के सभी राज्यों और क्षेत्रों में होते हैं और भूकंप, तूफान और आग जैसे कई कारणों से हो सकते हैं। भूस्खलन शीघ्रता से हो सकते हैं, अक्सर बिना किसी पूर्व सूचना के आने वाली इस विपदा से बचाव की तैयारी करने का सबसे अच्छा तरीका है अपने घर के अंदर और उसके आसपास के बदलावों के बारे में जानकारी रखना जिससे संकेत मिलता है कि कोई भूस्खलन होने वाला है। अगर हमने प्रकृति से अत्यधिक खिलवाड़ नहीं किया होता तो उत्तराखंड के कुछ इलाकों में 16 जून, 2013 की रात की त्रासदी को टाला जा सकता था। हिमालय में आई बाढ़ बहुत घातक और भीषण प्रभाव वाली थी। बाढ़ में पूरी तरह नष्ट हो गए गांवों, संपत्ति, सड़कों आदि का तो कोई अनुमान ही नहीं है। न ही इस बात के कोई आंकड़े हैं कि पहाड़ी राज्य उत्तराखंड में मौजूद जलविद्युत परियोजना को इससे कितना नुकसान पहुंचा। हमें पता है कि हिमालय पर्वत श्रृंखला दुनिया की सबसे युवा पर्वतमाला है। ऐसे में उसके भूस्खलन और अचानक आई बाढ़ के शिकार होने का जोखिम भी उतना ही ज्यादा है। लेकिन हम उन दो कारकों के बारे में आसानी से नहीं सोचते हैं जिन्होंने पहले से ही जोखिम वाले इस क्षेत्र को और अधिक संवेदनशील बना दिया है।

देश में मानसून का असर और अधिक बढ़ता जा रहा है। विभिन्न अध्ययन बताते हैं कि बारिश लगातार और अधिक सघन होती जा रही है। इतना ही नहीं बारिश में भारी अनिश्चितता भी आती जा रही है। उत्तराखंड में 16 जून 2013 की रात को भी यही हुआ था। उस दिन जमकर बारिश हुई। केदारनाथ जैसी जगह में कुछ ही घंटों में 200 मिलीमीटर बारिश हो चुकी थी। इसका असर हिमालय के पहाड़ों पर भी पड़ा। यह बारिश एक हद तक बेमौसम भी थी। जून को मानसूनी

बारिश की शुरुआत वाला महीना नहीं माना जाता है। इसलिए क्षेत्र में आए तीर्थयात्री और पर्यटक एकदम बेखबर थे।

सन् 1991 में पर्यावरणविद अनिल अग्रवाल ने यह बताया था कि हिमालय की भौगोलिक अवस्था ही ऐसी है कि वह भूस्खलन आदि को लेकर जोखिम वाला क्षेत्र है और ऐसा होने की स्थिति में वह नदियों की राह रोककर प्राकृतिक बांध बना सकता है। जाहिर है मलबे और चट्टानों से बने ये बांध कभी भी टूटकर नीचे तबाही लाने में सक्षम थे। इसके बाद उन्होंने दलील दी कि हमें हिमालय क्षेत्र के लिए एक अलग नीति पर काम करना होगा क्योंकि वह पूरा इलाका संवेदनशील और जोखिम से भरा हुआ है। तब तक सड़क निर्माण कार्य ने पहाड़ों का जोखिम और बढ़ा दिया था। कुछ साल बाद उन्होंने यह भी बताया कि हम कैसे प्रकृति के संसाधनों का अधिकतम इस्तेमाल कर सकते हैं। वर्ष 1997 में उनकी एक रचना प्रकाशित हुई, डाइंस विजडम : राइज, फाल एंड पोटेंशियल ऑफ इंडियाज ट्रेडिशनल वाटर हार्वेस्टिंग सिस्टम। इसने हमें सिखाया कि कैसे हर क्षेत्र में पारंपरिक रूप से जल प्रबंधन किया जाता है। इसका सिद्धांत यही था कि जिस जगह बारिश हो पानी का वहीं प्रबंधन किया जाए। जाहिर तौर पर यह तरीका जल संरक्षण के सरकारी तौर तरीकों से एकदम अलग था जिसमें पानी को एक जगह एकत्रित करके उसे पाइपलाइन तथा नहरों आदि के जरिए जरूरत वाली जगहों तक पहुंचाया जाता है। अग्रवाल की दलील थी कि पारंपरिक माध्यमों से इतर केन्द्रीकृत व्यवस्था भविष्य में भारत के काम नहीं आएगी। हमें अपनी जल व्यवस्था को अतीत वाला स्वरूप ही प्रदान करना होगा।

अब वक्त आ गया है कि इस संबंध में दूरगामी योजना बनाई जाए। सवाल यह है कि यह विकास किस तरह किया जाए। सड़कें और जलविद्युत परियोजनाएं स्थापित करके या फिर पर्यटन आधारित स्थानीय अर्थव्यवस्था के जरिए बिना प्रकृति के खिलाफ गए। यह भी हकीकत है कि मानसून के बदलते रूख के बीच हमें पानी की हर बूंद का इस्तेमाल करना होगा और बारिश के जल को बेकार बहकर बाढ़ की शक्ल नहीं लेने देना होगा। ऐसा करके ही हम यह सुनिश्चित कर पाएंगे कि हिमालय में पिछले दिनों घटी त्रासदी दोहराई न जाए और इस त्रासदी की पुनरावृत्ति फिर न हो पाए।

रेगिस्तानीकरण/मरुस्थलीकरण

मरुस्थलीकरण पर्यावरण संबंधी एक प्रमुख समस्या है। मरुस्थलीकरण भूमि के अनुपजाऊ हो जाने की ऐसी प्रक्रिया है जिसमें जलवायु परिवर्तन तथा मानवीय गतिविधियों सहित अन्य कारणों से शुष्क, अर्ध शुष्क तथा निर्जल, अर्ध नम क्षेत्रों की भूमि रेगिस्तान में बदल जाती है। इससे भूमि की उत्पादन क्षमता में कमी और ह्रास होता है, सामान्य अर्थ में मरुभूमि शब्द अति निम्न ताप तथा जीवन की अनुपस्थिति प्रकट करता है। शुष्क दशाओं के कारण जैविकीय संसाधन क्रमशः नष्ट होने लगते हैं।

मरुस्थल या शुष्क क्षेत्र पृथ्वी के वातावरण के प्रमुख घटकों में से एक है। ये कमजोर पारिस्थितिकी को दर्शाते हैं जहां वनस्पति अनुपस्थिति होती है या पर्याप्त नमी का अभाव होता है। जिससे वनस्पति नहीं उग पाती। मरूस्थल, विश्व जलवायु तंत्र में भूमि समुद्र–वातावरण की अंतक्रियाओं में वृहद परिवर्तनों के परिणामस्वरूप बनते हैं।

मरुस्थल विश्व के सभी महाद्वीपों में फैले हैं। सामान्यतः रेगिस्तान कर्क रेखा और मकर रेखा के साथ पाए जाते हैं। कुल भूमि का लगभग 35 प्रतिशत प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से रेगिस्तान से प्रभावित है। अफ्रीका में सहारा और लीबियान, आस्ट्रेलिया का आस्ट्रेलियन एवं ग्रेट बिक्टोरिया, अरब का अरेबियन एवं सीरियन, मंगोलिया का गोवी, चीन में ताकला माकन तथा भारत का थार रेगिस्तान विश्व के विशाल रेगिस्तान क्षेत्र हैं। कालाहारी, नूबियन एवं उत्तरी अमेरिका का रेगिस्तानी भू–भाग कुछ अन्य रेगिस्तानी क्षेत्र हैं।

अध्याय – 10

जल–प्रदूषण

जल हमारे दैनिक जीवन की पहली एवं सबसे बड़ी आवश्यकता है। इसी कारण से मानव की बसाहट सदा नदियों के किनारों पर ही रही है। यह स्पष्ट है कि जल हमारे दैनिक जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं में सबसे महत्वपूर्ण है इसका उपयोग पीने, खाना पकाने, नहाने, धोने, सफाई इत्यादि अनेकों कार्य में किया जाता है। इसी प्रकार भवन निर्माण, कृषि कार्यो, कारखानों/उद्योगों में उपयोग के साथ जल शक्ति को विद्युत ऊर्जा के उत्पादन में भी इस्तेमाल किया जा रहा है। अभिप्राय यह है कि जीवन के प्रत्येक कार्य में ही जल आवश्यक है और इसी लिए कहा भी गया है कि जल ही जीवन है। जैवमंडल की सभी महत्वपूर्ण गतिविधियों में जल की भूमिका महत्वपूर्ण है। वायुमण्डल में भी जल वाष्प एक महत्वपूर्ण घटक है तथा यही हवा की नमी का स्रोत है। प्रकृति में अनेक जैविक एवं अजैविक घटनाओं में जल की प्रभावी भूमिका होती है। जीवित घटकों के शारीरिक संगठन में भी जल की मात्रा सबसे अधिक रहती है। कोशिकाओं के मध्य विसरण तथा उत्सर्जन आदि जैविक प्रक्रियाओं में भी जल आवश्यक है। जल को जीवन का आधार माना गया है। परन्तु पिछले दो दशकों में बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण, लोगों के रहन सहन के स्तर में वृद्धि, जल विद्युत उत्पादन एवं धर्मान्धता के फलस्वरूप जल के उपयोग एवं जल श्रोतों में अपशिष्ट पदार्थो के निष्कासन दोनों में ही वृद्धि हुई है। जल स्त्रोतों के निरन्तर दोहन के कारण न सिर्फ जल की कमी हो रही है वरन जीवन का यह आधार प्रदूषित भी होता जा रहा है। जीवों की व्यवस्थित वृद्धि एवं विकास के लिए जल के विभिन्न घटकों के मध्य संतुलन आवश्यक है। **जलीय घटकों की सान्द्रता में परिवर्तन या जल में हानिकारक घटकों का प्रवेश ही जल प्रदूषण का कारण है।** यद्यपि पीने का पानी स्वादिष्ट और एकदम साफ दिखाई

देता है फिर भी यह मानना सही नहीं है कि वह कीटाणु रहित है, प्रदूषित नहीं है।

जल श्रोतों की प्रमुख समस्याएं

जल के प्राकृतिक घटकों में कोई घटक कम हो जाए या बढ़ जाए तो वह जल प्रदूषित जल कहलाता है। अर्थात जल के संगठन में मानवीय गतिविधि से उत्पन्न परिवर्तन ही प्रदूषण है। जल प्रदूषण के कुछ ज्ञात कारण नदी, तालाब और कुंओं पर नहाना, मवेशियों को नहलाना और साबुन से कपड़े धोना आदि हैं। कारखाने रासायनिक अपशिष्टों को बिना परिष्कृत किए ही जल में बहा देते हैं। जल प्रदूषण का एक बड़ा कारण और भी है, शहरों की गंदगी और मलमूत्र वाले नालों का नदियों, नहरों, तालाबों और झीलों में मिलना।

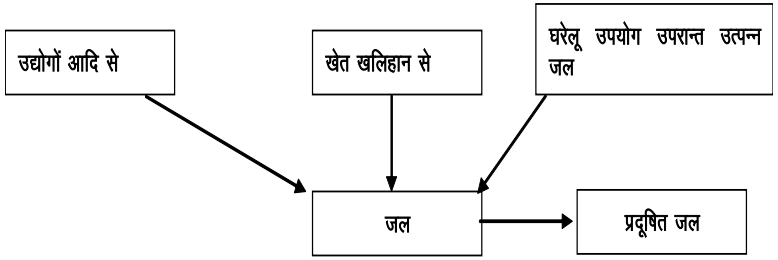

जब समाज के एक भाग द्वारा किया गया जल का उपयोग समाज के दूसरे हिस्से के लोगों के स्वास्थ्य एवं आरोग्य के लिए अड़चन पैदा करता है तो जल प्रदूषण होता है। जल प्रदूषण की परिभाषा सीधी सी है जब जल के संगठन में दूषक उत्पन्न हो जाएं जिससे जल का प्राकृतिक स्थिति में उपयोग न किया जा सके। ये परिवर्तन भौतिक, रासायनिक तथा जैविक हो सकते हैं। जल प्रदूषण केवल जन स्वास्थ्य के लिए ही नहीं बल्कि प्राकृतिक सौंदर्य दृश्यावली एवं स्रोतों के लिए भी चिन्ताजनक है। प्रदूषित पानी को झरनों, झीलों और नदियों में मिलने से पूरी तरह रोकना असंभव है।

हमारे जल संसाधन हमारी लापरवाही और अदूरदर्शिता के कारण प्रदूषित होते जा रहे हैं। हम अपने प्रदूषण की समस्या से प्रभावित प्राकृतिक जल संसाधनों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं:

1. अलवणीय जल – बहते हुए जल स्त्रोत जैसे नदियां झरने इत्यादि।

2. लवणीय जल – समुद्री जल ठहरे हुए या चारों ओर से घिरे हुए जल स्त्रोत जैसे तालाब, झील इत्यादि।

बहते हुए जल स्त्रोतों में प्रमुख हैं नदियां जिन्होंने हमारे पापों को घोया हैं, हमारी गंदगी को स्वच्छ किया है, हमारी फसलों को सींचा हैं परन्तु उनमें होने वाले प्रदूषण की रोकथाम के लिए हमने व्यक्तिगत तौर पर कोई सार्थक/कारगर प्रयास नहीं किया है। नदियों में प्रदूषण के प्रमुख स्त्रोत है :–

1. हमारे शहरों और गांवों के गंदे पानी के नाले जो गन्दगी नदी तक पहुंचाते है।
2. कूड़ा–करकट जो हम नदी के किनारे और कभी–कभी इसके अंदर फेकते हैं।
3. उद्योगों द्वारा उत्सर्जित रसायन व दूषित जल।
4. खेतों से बहकर आए कीटनाशक दवाओं के अवशेष।
5. नदी में फेंके गए मरे हुए पशु तथा मनुष्यों के शव।
6. नदी किनारे त्यागा गया मलमूल।
7. पूजा सामग्री का विसर्जन।

गंगा नदी आज विश्व की सबसे अधिक प्रदूषित नदी बन गई है। अकेले वाराणसी के 7 कि.मी. क्षेत्र में लगभग 60 लाख लोग स्नान करते है और लगभग 6 करोड़ लीटर वाहित मल, 40,000 मनुष्यों की राख और लगभग 10,000 लोगों के बिना जले शव या शव अवशेष प्रतिदिन नदी में डाले जाते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार 1 लीटर गंगा के जल में उपस्थित सूक्ष्म जीवों के लिए 9.7 मि.ली. ग्राम ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है जबकि सामान्य दशा में यह मात्रा 3 मि.ली. ग्राम प्रति लीटर होनी चाहिए। गंगा के जल में कालरा, टायफाइड, पेचिश इत्यादि के सूक्ष्मजीव बहुतायत में पाए जाते हैं। बनारस के अधिकांश लोगों में पेट की बीमारियां सामान्य हो गई हैं।

डॉ. महेन्द्र गुप्ता तथा डॉ. पंकज श्रीवास्तव, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर द्वारा किए गए शोध के परिणामों से यह ज्ञात हुआ है कि मध्यप्रदेश के लोगों की जीवनदायिनी नर्मदा भी अब प्रदूषण की सीमा से अधिक दूर नहीं है। अमरकंटक में उत्पत्ति के पश्चात यह नदी प्रथम बार मंडला में मानवीय गतिविधियों के संपर्क में आती है। मंडला में विभिन्न घाटों पर लोगों के नहाने, कपड़े धोने इत्यादि के अतिरिक्त विभिन्न नालों द्वारा वाहित मल बिना किसी उपचार के नदी में डाला जा रहा हैं। साथ ही नदी के किनारे पर स्थित फैक्ट्रियों का प्रदूषित जल भी इसी नदीं में डाला जा रहा हैं। 1992 में किए गए इस शोधकार्य से स्पष्ट हुआ कि नर्मदा नदी में विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं की संख्या नालें के नदी में मिलने के बिन्दु

पर 104 से 107 गुना, बढ़ी हुई पाई गई जो अनुप्रवाह (downstream) में 25 किलोमीटर बाद भी जांच योग्य संख्या में उपस्थित थे।

गंगा घाटी में प्रदूषण की समस्या की भयावहता और नदी जल प्रबंध के मूल तत्व के रूप में जल की गुणवत्ता का महत्व समझकर सरकार ने फरवरी 1985 को केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण का गठन किया। जिसके अर्न्तगत नदी में बिना उपचार के सीवेज के प्रवाह को रोकना, सीवेज उपचार संयंत्रों का विकास, विद्युत शवदाह गृह निर्माण इत्यादि कार्य शामिल हैं।

दूसरी श्रेणी में महत्वपूर्ण जल संसाधन तालाब हैं : जिनकी सुरक्षा और प्रदूषण मुक्त रखने के उपायों के बारे में तो हम सोचते भी नहीं है। परिणाम स्वरूप हमारे अधिकांश तालाब प्रदूषित हो चुके हैं और जो शेष हैं उनमें गर्मियों में पानी इतना कम हो जाता है कि वे एक दलदली क्षेत्र या पानी से भरे गढ्ढों का रूप ले लेते हैं जिनमें उस क्षेत्र के पशु विश्राम करते हैं और गर्मियों की तपन से छुटकारा पाते हैं। तालाबों में प्रदूषण के श्रोत नदियों में प्रदूषण के श्रोतों से कुछ अलग नहीं हैं।

मलजल या वाहित मल या सीवेज

सीवेज या मानवीय उपयोग के परिणामस्वरूप उत्पन्न गंदा पानी : ऐसा पानी जिसे एक बार उपयोग कर लिया गया है तथा जिसे पुनः बिना किसी उपचार के पुनः प्रयोग नहीं किया जा सकता उसे वाहित मल या सीवेज कहते हैं। इस सीवेज को उत्पत्ति के श्रोतों के आधार पर 2 श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है –

1. घरेलू सीवेज (Domestic Sewage) – मानवीय जीवन में दैनिक क्रियाकलापों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाला सीवेज जिसमें कार्बनिक पदार्थों की मात्रा अधिक होती है, अतः सूक्ष्मजीवों द्वारा अपघटन/चक्रीयकरण आसानी से हो जाता है।

2. औद्योगिक सीवेज (Industrial Sewage) – औद्योगिक इकाइयों द्वारा उत्पन्न सीवेज आमतौर पर अकार्बनिक प्रवृत्ति (अम्लीय या क्षारीय) का होता है अतः इसका सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटन/चक्रीयकरण आसान नहीं होता है।

प्रदूषित जल को शुद्धीकरण संयंत्रों (Sewage Treatment Plant) द्वारा शुद्धीकृत किया जाता है। इन संयंत्रों में आमतौर पर तीन प्रमुख प्रक्रियाओं द्वारा जल का शुद्धीकरण किया जाता है –

1. भौतिक प्रक्रियाएं : इस प्रक्रिया में प्रदूषित जल में से ठोस अशुद्धियों को छान कर पृथक कर लिया जाता है।

2. जैव रासायनिक प्रक्रियाएं : द्वितीय पद की इन प्रक्रियाओं में विभिन्न विधियों द्वारा सीवेज में उपस्थित कार्बनिक अशुद्धियों का विघटन किया जाता है।

3. विशिष्ट अवयव पृथक्करण : तृतीय पद में सीवेज में शेष विशिष्ट प्रकार की अशुद्धि जैसे फास्फेट, नाइट्रेट धातुओं इत्यादि का पृथक्करण किया जाता है। अंत में क्लोरिनीकरण की प्रक्रिया द्वारा जल में उपस्थित सूक्ष्म जीवों को नष्ट कर दिया जाता है।

समुद्री प्रदूषण (Marine Pollution)

पृथ्वी की सतह का तीन चौथाई भाग समुद्र से घिरा हुआ है। इसलिए पृथ्वी के क्रमिक विकास एवं जलवायु निर्धारण में समुद्रों की भूमिका स्वयंसिद्ध है। यातायात के अतिरिक्त समुद्र भोजन एवं अनेकों खनिजों के श्रोत भी है। पिछलें कुछ दशकों में मानवीय गतिविधियों के परिणामस्वरूप उत्पन्न वर्ज्य पदार्थों के समुद्र में जाने से प्राकृतिक स्थितियों में काफी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे हैं। प्रारंभ में इन परिवर्तनों को स्थानीय स्तर पर ही देखा गया परन्तु कुछ ही समय बाद वैश्विक रूप में इनके प्रभाव दिखाई देने लगे। समुद्र में कुछ प्रमुख प्रदूषण के श्रोत निम्न हैं –

कुछ प्रमुख समुद्री प्रदूषक

प्रदूषक	विवरण
पेट्रोलियम हाइड्रोकार्बन	क्रूड तेल एवं रिफाइन्डतेल उत्पाद
सीवेज/स्लज	सीवेज के प्रभाव मूलतया स्थानीय होते हैं परन्तु इस तालिका के कुछ अन्य पदार्थ भी सीवेज में हो सकते है।
हैलोजिनेटेड हाइड्रोकार्बन	इनके अर्न्तगत डी.डी.टी. जैसे यौगिक सम्मिलित हैं।
धातुएं	मुख्य रूप से मरकरी, कैडमियम और लेड
रेडियो न्युक्लियो टाइड्स	मुख्य रूप से सीजियम–137, स्ट्रॉन्शियम–90 एवं प्लुटोनियम आइसोटोप
लिटर (स्पजजमत)	मुख्य रूप से प्लास्टिक एवं मछली पकड़ने वाले जाल

समुद्री प्रदूषण की सर्वाधिक स्वीकृत परिभाषा यूनाइटेड नेशन्स ज्वाइंट ग्रुप ऑफ एक्सपर्ट्स आन साइन्टिफिक आसपेक्ट्स आफ मेराइन पाल्युशन (GESAMP) द्वारा

दी गई है। इसके अनुसार ''समुद्री पर्यावरण में मानव द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ऐसे पदार्थ या ऊर्जा को समुद्र में मिलाना जो समुद्र के जीवित संसाधनों के लिए नुकसानदायक हो, समुद्री गतिविधियों में बाधा पहुंचाए, मानवीय स्वास्थ्य के लिए खतरा बने और समुद्री जल के उपयोग को प्रभावित करे।''

समुद्री प्रदूषण के पारिस्थितिकीय अध्ययन के लिए निम्न बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाना अनिवार्य होता है –

1. प्रदूषकों की जैव–भू रासायनिक प्रवृत्ति
2. समुद्री परिविषाक्तता
3. प्रदूषण रोकने संबंधी उपायों के जैविकीय सिद्धान्त

प्रदूषकों की जैव भू–रासायनिक प्रवृत्ति के अर्न्तगत प्रदूषण के श्रोतों, प्रदूषकों के तंत्र में आने वाले श्रोतों का निर्धारण, एकत्रीकरण की प्रवृत्ति, परितंत्र के जैविक–अजैविक घटक, प्रदूषकों के स्थान परिवर्तन (Migration) की सम्भावनाएं, उनके भविष्य में संभावित रूपान्तरण और अन्य प्रक्रियाएं जो इन प्रदूषकों की विषाक्तता का निर्धारण करने के लिए आवश्यक है, का अध्ययन किया जाता है। समुद्री परिविषाक्तता के अर्न्तगत समुद्री तंत्र के संघठन को प्रमाणित करने वाले जैविक प्रभावों और मानवीय गतिविधियों के प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन से आज की पर्यावरणीय स्थिति के परिपेक्ष्य में भविष्य की समस्याओं हेतु नियोजन संभव हो पाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि ये अध्ययन समुद्री प्रदूषण के समाधान हेतु एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं।

प्रदूषण रोकने संबंधी जैविक उपायों के सिद्धान्तों का अध्ययन और तत्पश्चात् भविष्य की कार्ययोजना बनाना और उन पर अमल करना तीसरा महत्वपूर्ण कार्य है। ध्यान देने वाली बात यह है कि उपरोक्त तीनों बिन्दुओं का समन्वयय अनिवार्य है।

अध्याय – 11

वायु प्रदूषण

पृथ्वी ही सौरमण्डल का एक ऐसा उपग्रह है जिसमें वायु है। आकाश में वायु के आवरण को वायुमण्डल कहते हैं। यह पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए है और इसका विस्तार पृथ्वी की सतह से 370 किलोमीटर ऊपर तक है। इसमें अनेक परतें हैं। इन परतों में से क्षोभ मण्डल में वायु का प्रवाह सबसे अधिक है। ऋतु परिवर्तन भी इसी मंडल में होते रहते हैं। वायुमण्डल का एक भाग ओजोन मंडल कहलाता है। यह सूर्य से आने वाली हानिकारक पराबैंगनी किरणों से हमारी रक्षा करता है। वायु के बिना जीवन संभव नहीं है। **वायु के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में ऐसा कोई भी अवांछित परिवर्तन जिसके द्वारा स्वयं मनुष्य या अन्य जीवों के जीवन, परिस्थितियों या हमारी सांस्कृतिक सम्पत्ति को हानि पहुंचे या हमारी प्राकृतिक सम्पदा नष्ट हो वायु प्रदूषण कहलाता है।** मनुष्य को जितना भोजन और पानी चाहिए उससे कई गुना अधिक वायु की आवश्यकता उसे पड़ती है। WHO (1999) के अनुसार वायवीय प्रदूषक वे प्रदूषक है जो वायु में मानवीय गतिविधि के फलस्वरूप डाले गए हैं और वे इतनी मात्रा में हैं कि वे मानवीय स्वास्थ्य, वनस्पति या संपत्ति पर हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करें।

वायुप्रदूषण में विभिन्न श्रोतों का योगदान –

वाहन	कुल प्रदूषकों का 63 प्रतिशत
औद्योगिक स्वास्थ्य	कुल प्रदूषकों का 29 प्रतिशत
घरेलू श्रोत	कुल प्रदूषकों का 8 प्रतिशत

प्रदूषकों के बनने की प्रवृत्ति के आधार पर इन्हें 2 श्रेणियों में बांटा जा सकता है :

प्राथमिक प्रदूषक	द्वितीयक प्रदूषक
वे प्रदूषक जो श्रोत से सीधे वायुमंडल में छोडे जाते हैं। उदाहरण सल्फर डायआक्साइड SO_2, नाइट्रिक आक्साइड NO, कार्बन मोनो आक्साइड CO	वे प्रदूषक जो प्राथमिक प्रदूषकों के वायुमंडल में उपस्थित संघटकों की आपसी क्रिया से या प्राथमिक प्रदूषकों की आपसी क्रिया से वायुमंडल में बनते हैं। उदाहरण सल्फर डाइआक्साइड SO_2, नाइट्रोजन डाइ आक्साइड NO_2 परआक्सी एसिल नाइट्रेट (PAN)

वायु प्रदूषकों को एक और प्रकार से भी वर्गीकृत किया गया है –

क्रांतिक प्रदूषक (Critical Pollutants)	हानिकारक प्रदूषक (Hazardous Pollutants)
सल्फर के आक्साइड नाइट्रोजन के आक्साइड कार्बन मोनो आक्साइड ओजोन सस्पेन्डेड पार्टीकुलेट मैटर	पेट्रोलियम पदार्थों के दहन से उत्पन्न होने वाले प्रदूषक जो प्रकाश रासायनिक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। ये सामान्य क्रांतिक प्रदूषकों से कई गुना अधिक हानिकारक होते है।

- दिल्ली में लगभग 2000 मीट्रिक टन वायु प्रदूषक प्रतिदिन वायुमंडल में छोड़े जाते हैं।
- 1951 से 1991 के मध्य वायु प्रदूषण तीन गुना बढ़ चुका था।
- 1951 से 1997 के मध्य वाहनों की संख्या 0.3 मिलियन से बढ़कर 37.2 मिलियन हो गई थी। जिसमें से वाहनों की सर्वाधिक संख्या 23 बड़े शहरों में थी।
- 2007 में बड़े शहरों में वायु प्रदूषण की स्थिति

	SO_2	NO_2	श्वसन योग्य सस्पेन्डेड पार्टीकुलेट मैटर
राष्ट्रीय मानक स्तर	**80**	**80**	**100**
चेन्नई	7	12	94
दिल्ली	7	70	133
मुम्बई	35	103	293

(स्रोत : केन्द्रीय प्रदूषण मंडल, दिल्ली वेबसाइट दिनांक 8.9.2013)

WHO द्वारा जारी ग्लोबल बर्डन आफ डिजीज़ रिलीज की वर्ल्ड रिपोर्ट 2013 के अनुसार भारत में वायु प्रदूषक से होने वाली मृत्यु की वर्तमान वार्षिक दर 620,000 है जो कि वर्ष 2000 से 2012 के मध्य 6 गुनी और बढ़ी।

यदि 2010 के केन्द्रीय प्रदूषण निवारण मंडल आंकड़ों पर नजर डाली जाए तो देश के 180 शहरों में से केवल केरल के दो शहर मालापुरम और पट्टानामथिट्टा ही प्रदूषण न होने के मानक पर ठीक पाए गए हैं।

देश के लगभग 78 प्रतिशत शहरों में पार्टीकुलेट मैटर खतरे की सीमा से ऊपर हैं इनमें से 9 शहरो में तो यह क्रांतिक (निर्धारित मानक का तीन गुना) स्तर को छू चुका हैं। ग्वालियर, वेस्ट सिंहगुम, गाजियावाद, रायपुर और दिल्ली देश के 5 सबसे अधिक वायु प्रदूषण ग्रस्त शहर पाए गए हैं।

देश के 10 प्रतिशत शहरों में NO_2 का सान्द्रण निर्धारित सीमा से ऊपर पाया गया है।

वायु प्रदूषण के कारक

आज भारत में वनों को क्रूरता से काटा जा रहा हैं सन् 1980 से पहले ही 40 लाख हेक्टर जंगल का सफाया कर दिया गया था। कई प्रदेशों के हरे भरे जंगलों को कोयला बनाने के लिए बेरहमी से काटा गया है। जिससे जंगल मरू भूमि के रूप में परिवर्तित हो गए हैं। जैसा कि आप जानते हैं कि पारम्परिक ऊर्जा के रूप में हम फासिल ईंधन जैसे – कोयला, पेट्रोलियम, तेल एवं गैस इत्यादि का अत्यधिक इस्तेमाल कर रहे हैं। इन संसाधनों को प्राप्त करने के लिए जहां एक ओर वनों का ह्रास हो रहा है वहीं दूसरी ओर इनके उपयोग से वायु मंडल में कार्बन डाइआक्साइड तथा अन्य विषैली गैसे भी निस्सारित हो रही हैं जो ग्रीन हाउस प्रभाव को भी बढ़ाती है। वायु प्रदूषण में स्वचलित वाहनों ने सर्वाधिक योगदान दिया है। महानगरों में प्रतिदिन 10 से 15 स्वचलित वाहन बढ़ रहे हैं। औसतन 1000 गैलन पेट्रोल के जलने से 3200 पौण्ड कार्बन मोनो आक्साइड, 200 से 400 पौण्ड कार्बनिक वाष्प, 20 से 75 पौण्ड नाइट्रोजन, 17 पौण्ड सल्फर, 2 पौण्ड अमोनिया तथा 3 पौण्ड कार्बन निकलता है।

प्रूदषण के दूसरे बड़े कारक टायर : धुआं छोड़ते कार, ट्रक आदि में प्रदूषण का सबसे प्रमुख स्त्रोत क्या नजर आता है? जाहिर है उनके एक्जॉस्ट से निकलता नीला–काला धुआं मगर यदि हम स्वीडन सरकार के सलाहकार जैन एलबॉम और उल्फ ड्यूअस की बात मानें, तो वह धुआं प्रदूषण का उतना बड़ा स्त्रोत नहीं है,

जितने कि घिसते हुए टायर! इन दो सलाहकारों का कहना है कि टायरों के घिसने से जो बारीक कण हवा में उड़ते हैं, वे प्रति वर्ष हजारों लोगों की जान लेते हैं। उक्त सलाहकारों ने अपने निष्कर्ष मूलतः यूरोप के आंकड़ो के आधार पर दिए हैं। उनके अनुसार टायरों के घिसने से यूरोप की हवा में प्रतिवर्ष 40,000 टन पोलीसायक्लिक एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन (पी.ए.एच.) फैलते है। ये कार्बनिक यौगिक होते हैं जो कैंसरकारी माने जाते हैं। टायर घिसने के कारण उत्पन्न पी.ए.एच. बहुत बारीक कणों के रूप में होते हैं। इनका आकार 10 माइक्रोमीटर से कम होता है।

'भोपाल गैस त्रासदी' – वायु प्रदूषण और उसके दुष्प्रभावों का एक ज्वलंत उदाहरण है इस सदी की भीषणतम दुर्घटना ''भोपाल गैस त्रासदी''। भोपाल स्थित सीवान कीटनाशक बनाने वाली यूनियन कार्बाइड इंडिया (लि.) कारखाने से एम.आई. सी. (मिथाइल आइसो सायनेट) नामक गैस का 2–3 दिसम्बर, 1984 की मध्य रात्रि में दुघर्टनावश निकली गैसों के कारण 3000 लोगों की मृत्यु हुई। इसके अलावा आंखों की जलन, अंधापन, श्वसन संबंधी जटिलताऐं अभी तक दूर नहीं हो पाई हैं। इस दुर्घटना का प्रभाव कई पीढ़ियों तक परिलक्षित होने की संभावना भी वैज्ञानिकों द्वारा व्यक्त की जा रही है। यह घटना 'भोपाल गैस त्रासदी' (Bhopal Gas Tragedy) के नाम से जानी जाती है। उपरोक्त कारखाने में मिथाइल आइसो–सायनेट (एम.आई.सी.) तथा फॉस्जीन का उपयोग सीवान नामक कीटनाशक उत्पाद बनाने में किया जाता था। दुर्घटना का कारण मिथाइल आइसोसायनेट संयंत्र की तीन भूमिगत स्टेनलैस स्टील तथा कांक्रीट कवच युक्त भण्डारण टंकियों में से एक में असावधानीवश जल प्रवेश के फलस्वरूप अत्यधिक दाब बढ़ जाना कहा जाता है। दाब की अधिकता से स्टोरेज टंकी की एम.आई.सी. सुरक्षा वाल्व द्वारा बाहर निकलने लगी। अनेक प्रयासों के बावजूद भण्डारण टंकी में जल प्रवेश से शुरू हुई प्रक्रिया तथा फलतः बढ़ रहे दबाव को रोक पाना संभव नहीं हुआ। दुर्भाग्यवश गैसों को निष्प्रभावी करने की संयंत्र की व्यवस्था भी उस रात निष्क्रिय थी। इस कारण संयंत्र से निकली विषैली गैस आस–पास के वातावरण में तेजी से फैलने लगी। कहा जाता है कि संयंत्र से निकली गैसों में एम.आई.सी. के साथ एक और बहुत ही विषैली गैस फास्जीन भी थी।

कुछ प्रमुख श्रोत और उनसे उत्पन्न होने वाले वायु प्रदूषण निम्न है –

1. औद्योगिक ईकाई – SO_2, NO_2, SPM (Suspended Particulate Matter)

2. आटोमोबाइल्स – NO_2, CO_2, HC, (Hydrocarbons) Pb
3. घरेलु ईधन (कोयला) – SPM, CO, SO_2

वायु प्रदूषण के दीर्घकालीन प्रभाव –

1. हरित गृह प्रभाव/ग्रीन हाउस प्रभाव – शीत प्रधान देशों में फल और सब्जियों के उत्पादन के लिए हरित कांच गृह का प्रयोग होता है। इस हरित गृह में सौर्यिक किरणें निर्बाध पहुंचती हैं, लेकिन इन घरों से अवरक्त किरणें बाहर नहीं निकल पाती हैं नतीजन गृह के भीतर ताप वृद्धि होती है जिसका प्रयोग वनस्पति के लिए किया जाता है इसे हरित गृह प्रभाव कहते हैं। अतः वायुमंडलीय कार्बन डाईआक्साईड पर जलवाष्प द्वारा ऊर्जा को पार होने देने तथा पृथ्वीं के अधिकांश दीर्धतरण विकरणों को अवशोषित करने की क्रिया को ग्रीन हाउस प्रभाव कहते है। न केवल कार्बन डाइआक्साइड अपितु अन्य गैंसे भी इस प्रभाव में अपना योगदान दे रही है जिसकी स्थायीत्व की प्रवृत्ति चिंताजनक है। पिछले सौ वर्षों में कार्बन डाईआक्साइड का अनुपात 13% बढ़ चुका है यदि ग्रीन हाउस प्रभाव को ठीक ढंग से समझा गया है तो पृथ्वी का ताप औसत 1^0F (0.56^0C) बढ़ गया होगा। इस शताब्दी के अंत तक पृथ्वी का ताप 3.6^0F या 2^0C बढ जाएगा। पिछले दशक से यह अनुभव किया जा रहा है कि पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है, उसके कारण की खोज हरित गृह प्रभाव के आधार पर की गई। ग्रीन हाउस वायु मंडल के टोपोस्फियर में एक कम्बल जैसे काम करता है। जल वाष्प, कार्बनडाइआक्साइड, क्लोरीन, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड इत्यादि गैसे ग्रीन हाउस गैसों के रूप में जानी जाती है। इनमें से जल वाष्प तथा कार्बन डाइआक्साइड मुख्य हैं जो सौर मंडल से किरणों को आने तो देती है परन्तु उन्हें वापिस जाने से रोकती है। जिसके कारण कि पृथ्वी का तापमान बना रहता है। अगर ये किरणें वापस चलीं जाए तो पृथ्वी का तापमान जल के हिमांक से कम हो जाएगा। इसी प्रकार अगर इनमें से कुछ गैसें कम ज्यादा होती हैं तो पृथ्वी के तापमान में परिवर्तन आना शुरू होने लगता है।

ग्रीन हाउस गैसों में वृद्धि से भूमंडल पर पड़ने वाले प्रभाव

गर्म जलवायु प्रभाव	कार्बनडाइआक्साइड स्तर में वृद्धि
फसलों में परिवर्तन	पौधों की लम्बाई में वृद्धि
रेगिस्तान में वृद्धि	कुछ पैदावार में वृद्धि
घास रहित वन	खरपतवार में वृद्धि

सीमान्त कृषि को खतरा	मृदा अपक्षय
समुद्र के स्तर में वृद्धि	ज्यादा खाद की जरूरत
मौसम में परिवर्तन	पारिस्थितिकी में व्यवधान
वर्षा में कमी	खेती योग्य भूमि में कमी
	जल स्तर में कमी वायु की आर्द्रता में कमी

पृथ्वी पर गर्मी बढ़ने के दुष्परिणाम पृथ्वी का तापमान बढ़ने पर निम्न घटनाएं घटित होने की संभावना व्यक्त की जा रही है–

- ऋतु में परिवर्तन, गर्मी के मौसम की अवधि बढ़ने लगेगी। अधिक गर्मी से खेती पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा।
- सूखा और अकाल ज्यादा पड़ने लगेंगे। आंधी, तूफान और बाढ़ की मात्रा भी बढ़ जाएगी।
- गर्मी से बर्फीली चोटियों और ध्रुवों की बर्फ पिघल कर समुद्र के जल स्तर को ऊंचा करेगी।
- समुद्र का जल स्तर बढ़ने से छोटे बड़े द्वीप और खेती योग्य भूमि पानी में डूब जाएगी। इससे लाखों लोग बेघर हो जाएंगे।
- मनुष्य, वनस्पति और जीव जन्तुओं का जीवन भी प्रभावित होगा।

2. ओजोन परत का विनाश – ओजोन सूर्य और पृथ्वी के बीच गैस की सुरक्षित और मोटी परत है जो सूर्य की हानिकारक किरणों को पृथ्वी के वातावरण में आने से रोकती हैं। इन किरणों में अल्ट्रावायलेट किरणें हैं जो कि मनुष्य के लिए जानलेवा हो सकती हैं। ओजोन परत मानव निर्मित हानिकारक गैंसों को पृथ्वी के वातावरण से बाहर जाने से भी रोकती है। इस प्रकार ओजोन की परत न केवल सूर्य की हानिकारक किरणों को पृथ्वी पर आने से रोकती हैं अपितु यह पृथ्वी पर उत्पन्न हुई हानिकारक गैसों को भी अंतरिक्ष में जाने से रोकती है। औद्योगिक उन्नति और वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप पृथ्वी पर कुछ ऐसी गैसों की मात्रा बढ़ी हैं जो मनुष्य के लिए लाभदायक नहीं हैं। परन्तु उसके दैनिक जीवन और जरूरी उपकरणों के लिए अनिवार्य हैं। हमारी जीवन रक्षक ओजोन पर्त में क्षय वायुमंडलीय प्रदूषण का एक और ज्वलंत उदाहरण है। पराबैगनी विकिरण मानव शरीर में त्वचीय कैंसर जैसी घातक बीमारी को जन्म देता है इसके प्रभाव से पेड़ पौधों की वृद्धि भी रूक जाती है कहा जा सकता है कि इन किरणों के सम्मिलित प्रभावों से सम्पूर्ण आहार श्रृंखला प्रभावित होती है। क्लोरोफ्लोरोकार्बन युक्त रसायनों के उपयोग ने

इस ओजोन पर्त को भी नुकसान पहुंचाया है जिससे हानिकारक विकिरणों की पृथ्वी पर प्रवेश की सम्भावनाएं प्रबल हो गई है।

3. प्रकाश रासायनिक धुंध – पेट्रोल और डीजल के अपूर्ण दहन से उत्पन्न होने वाले विभिन्न हाइड्रोकार्बन एवं नाइट्रोजन के विभिन्न ऑक्साइड, वायुमण्डलीय जलवाष्प के साथ मिलकर सूर्य प्रकाश के प्रभाव से धुंध (कोहरा) का निर्माण करते हैं। इस कोहरे से सूर्य के प्रकाश की पृथ्वी पर पहुंचने वाली मात्रा में आश्चर्यजनक रूप से कमी आ जाने के कारण पौधों और जंतुओं की समुचित वृद्धि प्रभावित होती है। विडंबना तो यह है कि प्रकाश रासायनिक धुंध से केवल जीवित वस्तुएं ही नहीं प्रभावित होती है वरन् धातुओं के पेंट, पालिश तथा पत्थर जैसी वस्तुओं का भी क्षरण हो जाता है।

4. ऐरोसोल्स – वायु प्रदूषण के लिए काफी हद तक जिम्मेदार हैं। इसे वस्तुतः पर्यावरण में ठोस अथवा द्रव पदार्थो का मिलना कहा जाता है। इनके कणों का आकार 0.002 मिमी तक होता हैं ये मुख्यतः कार्बन के सूक्ष्म कण होते हैं जो जीवाश्म ईंधनों से उत्पन्न होते हैं। ये वायु मण्डल में मिलकर अन्य पदार्थो यथा हाइड्रोकार्बन, सल्फर, नाइट्रोजन, आक्साइड, लेड आदि को अवशोषित करते हैं। ये प्रदूषक जो बलपूर्वक वायु में कोहरे या वाष्प के रूप में मिल जाते हैं, ऐरोसाल्स कहलाते हैं। जेट वायुयानों से निकला कुहरे के रूप में धुआं इसका प्रमुख उदाहरण है – इसमें मुख्य रूप से फ्लोरीन युक्त कार्बनिक यौगिक (फ्लोरोकार्बन) पाए जाते हैं। ये वायुमण्डल के ऊपर स्थित ओजोन स्तर को प्रभावित करके कुछ विकिरणों को पृथ्वी तक पहुंचाने में सहायता करते हैं, जिसका बुरा प्रभाव जीवमण्डल पर पड़ता है। सुपरसोनिक वायुयान से भी बड़ी मात्रा में ऐरोसोल निकलते हैं। डीजल ऑटोमोबाइल अन्य वाहनों की अपेक्षा एरोसोल के अधिक कण उत्सर्जित करते हैं। एसवेस्टस की खानों, पत्थर तोड़नेवाली मशीनों, मोम उत्पादन करने वाले कारखानों, सीमेंट उद्योगों आदि से उत्पन्न सूक्ष्म कण वातावरण से मिलकर इन्हें पूर्णतः असामान्य बना देते हैं। वायुमण्डल में आक्सीजन के अतिरिक्त अन्य किसी गैस की वृद्धि जीवन के लिए घातक है। कल–कारखानों, ताप बिजलीघरों, वायुयान या मोटर कार की बढ़ती हुई संख्या से भारी मात्रा में कार्बन सल्फर व नाइट्रोजन के आक्साइड, धुआं, धूल व ठोस पदार्थो के सूक्ष्म कण तथा विषैले कार्बनिक पदार्थ वायुमण्डल से मिलकर तेजी से वायु का प्रदूषण कर रहे हैं। ऐसा नहीं है कि इस प्रकार का प्रदूषण केवल मनुष्य के लिए हानिकारक है। सच तो यह है कि सभी जीवों पर इसका असर पड़ता है।

वायु प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

● कारखानों की चिमनियों में शोधन संयंत्रों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

● कल कारखानों को रिहायशी क्षेत्र से दूर स्थापित करना तथा उनके आसपास के क्षेत्रों में गहन वृक्षारोपण किया जाना चाहिए।

● डीजल में संयोजी पदार्थ का मिश्रण करना चाहिए।

● पेट्रोल में से लेड तथा सल्फर को पृथक करना चाहिए।

● फैक्ट्रियों की चिमनियों को अधिकतम ऊंचा बनाना चाहिए एवं चिमनियों से निकलने वाले धुंए में विभिन्न प्रदूषक तत्वों की जांच की जानी चाहिए।

● कुछ पौधे SO_2 का अवशोषण करते हैं इसी प्रकार कुछ पौधे नाइट्रोजन के आक्साइडों का अवशोषण करते है अतः ऐसे स्थानों पर इन पौधों को लगाया जाना चाहिए।

● वायु प्रदूषण निवारण व नियंत्रण अधिनियम का व्यापक प्रचार व प्रसार करना चाहिए।

● अधिक धुंआ देने वाले वाहनों पर प्रतिबंध होना चाहिए।

● क्लोरो फ्लोरोकार्बन के उपयोग पर पूर्ण प्रतिबंध लगाना चाहिए।

● वनों का संवर्धन कर वायु प्रदूषण को रोका जा सकता है। एक शोध अनुमान के अनुसार एक हेक्टेयर हरे भरे जंगल 18 घंटे में 900 किलोग्राम कार्बन डाईआक्साइड को अवशोषित करते है तथा लगभग 600 से 650 किलोग्राम आक्सीजन उत्पन्न करते हैं। हरे पेड़ पौधे हमारे द्वारा श्वसन क्रिया में छोड़ी जाने वाली हानिकारक कार्बन डाई आक्साइड को ग्रहण करके उसे लाभदायक आक्सीजन में परिवर्तित कर देते हैं।

● **वायु प्रदूषण में हमारी भागीदारी –** प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, उद्योगों का अनियोजित स्थल चयन एवं शहरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति से वायु प्रदूषित होती जा रही है। इसके परिणाम मानव जाति पर घातक हो सकते हैं। यह प्रदूषण की मात्रा, स्थान, समय तथा मनुष्यों के स्वास्थ्य के स्तर पर निर्भर करता है इन सबसे बचने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने वायु गुणवत्ता मानक निर्धारित किए हैं। वायु प्रदूषण की स्थिति की गंभीरता को पहचानते हुए अस्सी के दशक में देश में राष्ट्रीय वायु प्रदूषण अधिनियिम लागू करने के पश्चात् देश में राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता मानक निर्धारित किए गए।

● **वाहन प्रदूषण नियंत्रण –** पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार द्वारा पिछले कुछ वर्षों में किए गए सकारात्मक प्रयास –

● 2–स्ट्रोक इंजन वाले वाहनों, जो आज देश में अत्यधिक प्रदूषण फैलाने वाले वाहनों की श्रेणियों में से एक हैं, से प्रदूषण स्तर कम करने की दृष्टि से मंत्रालय ने 20.8.98 को दो स्ट्रोक वाले इंजन के विनिर्देशनों को अधिसूचित किया है। दो स्ट्रोक वाले इंजन तेलों में सुधार करके धुएं और कणकीय पदार्थ के स्तर को कम किया जा सकता है जो कि देश के अधिकतर सभी प्रमुख शहरों के वातावरण में काफी अधिक मात्रा में पाया जाता है।

● 2–स्ट्रोक इंजनों के समुचित स्नेहन के लिए पैट्रोल में 2% मोबिल आयल मिलाना आवश्यक है। तथापि, गलत धारणाओं के कारण अधिकांश दो स्ट्रोकी इंजन वाहनों के चालक 5% मोबिल ऑयल प्रयोग करते हैं और इस प्रकार दुपहिया और तिपहिया वाहनों से उत्सर्जन अधिक होता है। पैट्रोल स्टेशनों पर पूर्व–मिश्रित ईंधन (पेट्रोल तथा तेल) की स्थापना से तथा पेट्रोल स्टेशनों पर तथा सर्विस गैराजों में खुले 2 टी ऑयल पर प्रतिबंध से 5% तक मोबिल ऑयल के प्रयोग को नियंत्रित कर रोका गया है और इस प्रकार उत्सर्जन में कमी आई है।

● **पुराने व्यावसायिक वाहनों को बंद करना –** राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार के परिवहन विभाग ने, वाहनजनित प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपायों के भाग के रूप में 17 वर्ष से अधिक पुराने वाहनों के परमिट रद्द कर दिए है और ऐसे वाहनों के चलने पर उन्हें जब्त करना शुरू कर दिया है। जब्त किए गए वाहन, मालिक द्वारा इस आशय का वचन दिए जाने पर मालिक को सौंप दिए जाते हैं कि वह इन वाहनों को दिल्ली से बाहर बेच देगा। 31 दिसंबर, 1998 तक दिल्ली सरकार के पास जमा 7696 तिपहिया स्कूटरों को बेकार कर दिया गया है तथा 17 वर्ष से अधिक पुराने 332 वाहनों को जब्त कर लिया है।

● **सीएनजी आपूर्ति निर्गमों का विस्तार –** सीएनजी की पर्याप्त सरल स्थल आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए सीएनजी निर्गमों की संख्या को 9 से बढ़ाकर 80 करने का प्रस्ताव हैं। गैस अथारिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (जीएआईएल) को 64 नए स्थान आबंटित किए गए हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि सीएनजी को परिवर्तित की गई बसें या मूल सीएनजी प्रणाली को परिवर्तित बसे सीएनजी तक सरलतापूर्वक पहुंच जाएं, दिल्ली स्टेशनों को स्थापित करने का वायदा किया है। आशा है कि सीएनजी के लिए वितरण नेटवर्क आने वाले समय में उल्लेखनीय रूप से फैल जाएगा।

'सीसा–रहित पेट्रोल क्या' है ? – सीसा की अधिक मात्रा विभिन्न

शारीरिक रोगों का कारण है जिनमें फेफड़े के रोग मुख्य हैं। एक अध्ययन के अनुसार, वायु में सीसा की मात्रा यदि 4.3 मिलीग्राम प्रति क्यूबिक मीटर हो जाए तो इससे मस्तिष्क भी प्रभावित हो सकता हैं। बहुत से प्रदूषण विशेषज्ञों का यह भी कहना है कि सीसा–रहित पेट्रोल के दहन से बेन्जीन तथा अन्य ऐरोमैटिक रसायन निकलेंगे, जिससे दमा तथा कैंसर जैसी खतरनाक बीमारियां भी हो सकती हैं। सीसा एक जहरीली धातु है, इससे बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव और गर्भस्थ शिशु को हानि पहुंचती है। इसके उत्पादन में कार्बन डाइऑक्साइड काफी मात्रा में बनती है जिससे वातावरण में गर्मी भी बढ़ेगी। उत्प्रेरकीय परिवर्तक तथा सीसा रहित पेट्रोल ही वायु प्रदूषण को कम करने का एकमात्र हल नहीं है, फिर भी इससे महानगरों में वाहनों द्वारा होने वाले वायु–प्रदूषण को कम तो किया ही जा सकेगा।

ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाने वाला पेट्रोल जिसमें सीसा की मात्रा नहीं होती सीसा–रहित पेट्रोल कहलाता है। सीसा के स्थान पर इसमें बेंजीन तथा अन्य एरोमैटिक रसायन होते हैं। इस पेट्रोल के इस्तेमाल के लिए वाहनों में एक विशेष तरह के यंत्र 'उत्प्रेरकीय परिवर्तक' (कैटालिटिक कनवर्टर) लगाया जाना आवश्यक है। उत्प्रेरकीय परिवर्तक लगी मोटर–गाड़ियों में सीसा–रहित पेट्रोल के इस्तेमाल से प्रदूषण रूपी काला धुआं वायुमण्डल में नहीं मिलने पाएगा।

किसी ने कहा है कि **"आप पानी खरीद सकते हैं वायु नहीं।"**

अध्याय – 12
ध्वनि–प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण आज के युग में एक गंभीर समस्या है। शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों में लगातार बढ़ते शोर या ध्वनि प्रदूषण और इससे पैदा होने वाली अनेक खतरनाक बीमारियों ने पिछले एक दशक में हमारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करवाया है। यद्यपि यह एक अदृश्य प्रदूषण है किन्तु इसके प्रभाव अत्यंत घातक हो सकते हैं। महानगरों, व्यस्त नगरों और यहां तक कि भीड़–भाड़ वाले इलाकों में ध्वनि प्रदूषण का स्तर काफी अधिक है। वाहनों की आवाज, तेज संगीत, विमान की ध्वनियों से उत्पन्न इन ध्वनि तरंगों का मानव मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है। शोर की अधिकता से स्नायुरोग, बहरापन, रक्तचाप बढ़ना, हृदय रोग और मानसिक तनाव जैसे रोग पैदा हो जाते हैं।

वातावरण में चारों तरफ फैली अनिच्छित या अवांछनीय ध्वनि को प्रदूषण कहा जाता है। यह अवांछनीय ध्वनि आज के आधुनिक समाज का एक हिस्सा बन गई है। हम या कोई उपकरण जो भी ध्वनि पैदा करता है वह तरंगों के रूप में हमारे कानों तक पहुंचती है और हम उसको सुनते है। जब ये तरंगे स्पष्ट होती है तब तो हम तक आवाज आती है लेकिन जब यह स्पष्ट नहीं होती हैं तो आवाज हम तक नहीं आती है। वैज्ञानिकों के अनुसार जो भी ध्वनि तरंग पैदा होती है वह नष्ट नहीं होती, बल्कि उसका प्रभाव नष्ट हो जाता है या उसकी तरंगे धीरे–धीरे कमजोर होकर माध्यम में विलीन हो जाती हैं। अगर ध्वनि इसी तरह पैदा होती रही तो एक दिन ऐसा आ सकता है कि माध्यम (जल और वायु) में इतनी तरंगे मिल जाएंगी कि जब हम आवाज करेंगे तो उसकी तरंग भी माध्यम में विलीन हो जाएगी और हमें सुनाई नहीं देंगी और ऐसी स्थिति में सभी बहरे हो जाएंगे।

ध्वनि प्रदूषण के स्रोत

ध्वनि प्रदूषण शोर की अधिकता से होता है। तेज ट्रैफिक, बस, ट्रक, मोटर साइकिल की आवाजें, लाउड स्पीकर, कारखानों में मशीनों की आवाज व अन्य ध्वनि संकेतों से सर में दर्द होने और सुनने की शक्ति खो बैठने का डर रहता है। इस शोर से चेतना–तन्तुओं में तनाव होता है जिससे श्रवण दोष, सोने में कठिनाई, सिरदर्द आदि हो जाते हैं। ध्वनि प्रदूषण के स्रोत ध्वनि, शोर व आवाज ही हैं चाहे वह किसी भी प्रकार से पैदा हुई हों। टी.वी., रेडियो, कूलर, स्कूटर, कार, बस, ट्रेन, प्लेन, रॉकेट, घरेलू उपकरण, वाशिंग मशीन, लाउडस्पीकर, स्टीरियो डैक, औद्योगिक इकाइयां तथा दूसरे सुरक्षात्मक उपकरणों के अलावा सभी प्रकार की आवाज करने वाले साधन, उपकरण या कारक ध्वनि प्रदूषण के स्रोत होते हैं।

ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव

शोर क्या है?

विश्व स्वास्थ्य सेवा संगठन के अनुसार अवांछित और अप्रिय आवाज ही शोर है जो दिन–प्रतिदिन के क्रिया–कलापों से उत्पन्न होता है। आमतौर पर सामान्य आवाजों से अधिक ऊंची आवाजों को शोर कहा जाता है। अर्थात् कोई भी ध्वनि जब मानसिक क्रियाओं में विध्न उत्पन्न करने लगती है तो वह शोर के अन्तर्गत आती है।

शोर की तीव्रता डेसीबल में व्यक्त की जाती है। अर्थात् शोर की तीव्रता की ईकाई डेसीबल है। वास्तव में ध्वनि की तीव्रता का माप 'बेल' है जो महान वैज्ञानिक और टेलीफोन के आविष्कारक 'अलैक्जेण्डर ग्राहम बेल' के नाम पर रखा गया है। इसी एक 'बेल' का दसवां भाग 'डेसीबल' कहलाता है। डेसीबल महसूस किए जाने वाले ध्वनि दबाव और रेफरेन्स दबाव (जहां सुनाई देने की सीमा का प्रारम्भ होता है) के Logerithm का अनुपात होता है। इसे मापने वाले यंत्र को 'लार्म बेरोमीटर' कहा जाता है और जिस स्केल पर ध्वनि की तीव्रता मापी जाती है उसे 'लोगेरिदमिक स्केल' कहते हैं। इसे शून्य से 130 के पैमाने पर नापते हैं। शून्य का अर्थ न्यूनतम श्रवणीय ध्वनि से है, जबकि 130 डेसीबल का अर्थ कष्टदायक ध्वनि तीव्रता से है जो असह्य हो। डेसीबल के स्तर पर आंशिक वृद्धि का अर्थ है ध्वनि दबाव में कई गुना वृद्धि। 120 डेसीबल पर ध्वनि दबाव 80 डेसीबल के ध्वनि दबाव से 100 गुना अधिक होता है। यहां पर इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि 10 डेसीबल की ध्वनि की तीव्रता एक डेसीबल की ध्वनि से 10 गुना होती है। लेकिन 20 डेसीबल की

ध्वनि की तीव्रता 100 गुना और 30 डेसीबल ध्वनि की तीव्रता 1000 गुनी।

तालिका : ध्वनि उत्पादन के विभिन्न स्रोत एवं उनकी ध्वनि तीव्रता डेसीबल में

क्र.	स्रोत	ध्वनि तीव्रता
1.	सुनने की शुरुआत	0
2.	फुसफुसाहट (1.25 मीटर से)	10
3.	सामान्य फुसफुसाहट (1.75 मीटर)	20
4.	दीवार घड़ी (1 मीटर पर)	30
5.	बेडरूम/लाइब्रेरी	40
6.	सामान्य कमरा/शांत ऑफिस	50
7.	वैक्यूम क्लीनर, सामान्य वार्तालाप (1 मीटर पर) हल्का ट्रैफिक	60
8.	एअर कंडीशनर (6 मीटर पर), टेलीफोन वार्तालाप, सामान्य ट्रेफिक, हल्का शोर (30 मीटर पर)	70
9.	व्यस्त कार्यालय, कूड़ा, करकट उठाने की मशीन	80
10.	भारी ट्रेफिक, रेलगाड़ी, मोटर साइकिल (8 मीटर से), डीजल ट्रक (15 मीटर पर) जेनरेटर्स	90
11.	भारी इंजीनियरिंग वर्कशाप, प्रैस	100
12.	आरा मशीन, मोटरकार का पावर हार्न (6.5 मीटर पर), इस्पात पुल पर रेल, जेट, विमान की उड़ान (3.5 मीटर)	110
13.	रॉक संगीत, डिस्कोथेक, कपड़ा मिल एवं चालित हार्न (1 मीटर पर) साइलेंसर रहित मोटर साइकिल व स्कूटर	120
14.	उच्च क्षमता का रॉक संगीत	130
15.	जेट विमान का उड़ना व उतरना	140
16.	प्रोपेलर विमान का उड़ना व उतरना	150
17.	रॉकेट इंजन का छूटना, विस्फोटक सामग्री का फटना	160
18.	टर्बोजेट विमान एवं अंतरिक्ष रॉकेट का छूटना	170
19.	रेमजेट विमान व अन्तरिक्ष रॉकेट का छूटना	180

तालिका : ध्वनि की तीव्रता का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

निर्धारित ध्वनि विस्तारक सीम वॉल्स हेली पब्लिक काण्ट्रेक्ट एक्ट के अनुसार

ध्वनि की तीव्रता (डेसीबल में)	मानव पर ध्वनि की तीव्रता का प्रभाव
0	ध्वनि की शुरुआत
40	कर्णप्रिय, वातावरण में सुविधा, कोई घातक प्रभाव नहीं
80	तीव्र, अधिक समय तक रहने पर नकारात्मक प्रभाव
110	बहरेपन की शुरुआत, कान के नाजुक अंगों की त्वचा को नुकसान
120	असामान्य तीव्र शोर, पीड़ाजनक सहनशीलता पर आधारित रक्त चाप प्रभावित, धमनियों का सिकुड़ना, कोलेस्ट्राल में वृद्धि।
130	घबराहट, बेचैनी, उल्टी की स्थिति, समस्त प्रकार की कार्य विधियां प्रभावित।
140	कान में दर्द की समस्या, ध्वनि सहने की अधिकतम सीमा (परन्तु व्यक्तियों की सहनशीलता के आधार पर थोड़ी सी परिवर्तित)
150	रक्तप्रवाह में परिवर्तन, उच्च रक्तचाप अधिक समय तक रहने पर त्वचा के जल जाने की संभावना, मानसिक अस्वस्थता एवं भावनात्मक अवरोध पैदा होना।
160	अल्प स्थायी बहरापन, परन्तु अधिक समय व्यतीत करने पर स्थायित्व की स्थिति।
170	अत्यधिक पीड़ाजनक कान में आंतरिक घाव, स्थायी नुकसान, वापसी की संभावना कम।
180	बहुत अधिक कष्टकारी एवं पीड़ादायी स्थिति, शरीर के नाजुक अंगों एवं मस्तिष्क पर घातक एवं स्थायी प्रभाव।
190	अल्प समय में ही स्थायी बहरापन एवं हार्ट अटैक की स्थिति या अधिकतम उच्च रक्तचाप, अत्यधिक शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा जो अत्यंत कष्टकारी।
200से अधिक	मृत्यु की सर्वाधिक संभावना अन्यथा पागलपन की स्थिति।

- सतत् शोर के कारण सुनने की क्षमता में कमी आती है।
- ज्यादा शोर होने पर त्वचा में उत्तेजना पैदा होती है, जठर पेशियां संकीर्ण होती हैं और क्रोध तथा स्वभाव में उत्तेजना पैदा होती है।
- शोर के कारण हृदय की धड़कन तथा रक्त दाब बढ़ता है।
- ध्वनि प्रदूषण के कारण सिर दर्द, थकान, अनिद्रा आदि रोग होते हैं।
- अधिक शोर के कारण एड्रीनल हार्मोनो का स्राव अधिक होता है।
- यह कई उपापचयी क्रियाओं को प्रभावित करने के अलावा संवेदी तथा तंत्रिका तंत्र को कमजोर बनाता है।

शोर के घातक प्रभाव – हमारे शरीर में कान ही ऐसे अंग हैं जो ध्वनि को सुनते हैं एवं उसे महसूस करते हैं। विभिन्न प्रकार की ध्वनियां हमारे कानों पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में प्रभाव डालती है। इसके घातक प्रभाव भी होते हैं। ध्वनि प्रदूषण का मानव जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। ध्वनि प्रदूषण व्यक्ति की कार्य क्षमता, नींद एवं श्रवण शक्ति को भी प्रभावित करती हैं। ध्वनि प्रदूषण से पड़ने वाले प्रमुख प्रभाव निम्नवत् है

1. श्रवण शक्ति का ह्रास (अस्थायी अथवा स्थायी), 2. श्रवण शक्ति की क्रियाविधि का प्रभावित होना, 3. वार्तालाप में व्यवधान, 4. नींद में व्यवधान, 5. घबराहट व बेचैनी, 6. कार्यक्षमता का प्रभावित होना याददाश्त में कमी, 7. मानसिक क्षमता का प्रभावित होना, 8. रक्तचाप में वृद्धि, धमनियों पर प्रभाव, 9. आचार एवं विचार में परिवर्तन, 10. तंत्रिका तंत्र एवं पाचन तंत्र का प्रभावित होना।

विषय पर किए शोध बताते है कि पर्यावरण में शोर की तीव्रता प्रत्येक दस वर्षों में दुगुनी होती जा रही है। हमारे देश के महानगरों में पिछले 20 वर्षों में शोर दस गुना बढ़ा है। कोलकाता, मुम्बई और दिल्ली तो दुनिया के सर्वाधिक शोरगुल वाले महानगरों की श्रेणी में आते हैं। दिल्ली के तो घनी आबादी वाले 65 प्रतिशत क्षेत्र में कोलाहल का स्तर 90–100 डेसीबल है जो स्वास्थ्य के लिए बहुत अधिक हानिकारक है। कोलकाता में ऐसी घनी आबादी वाले अनेक क्षेत्र हैं, जहां कोलाहल का स्तर 85–90 डेसीबल है। यदि स्थिति यही बनी रही तो इन महानगरों की आबादी का एक बड़ा हिस्सा बहरा हो जाएगा । शोर के चलते हमारे कानों की संवेदनशीलता पर प्रतिकूल असर पड़ता है। अधिक शोर वाले माहौल में लम्बे अर्से तक रहने से सुनने की शक्ति धीरे–धीरे घटने लगती है।

गांवों की अपेक्षा शहरों में शोर अधिक होता है। यही कारण है कि शहरी

लड़कियों में गांव की लड़कियों की अपेक्षा मासिक धर्म जल्दी होना देखा गया है। अनिद्रा और कुंठा जैसे विकार भी अधिक शोर के कारण उत्पन्न होते हैं। बहुत अधिक समय तक ज्यादा शोर में रहने वाला व्यक्ति लगातार मानसिक दृष्टि से तनाव से रहता है जिससे उसकी मांसपेशियों में जकड़न और दर्द रहता है तथा वह चिड़चिड़ा सा हो जाता है। ऐसा पाया गया है कि शोर–शराबे वाली जगहों में रहने वाले बच्चों की याददाश्त शान्त जगहों में रहने वाले बच्चों की तुलना में कम हुआ करती है।

निरन्तर होने वाले शोर से हमारा तांत्रिका–तंत्र (नर्वस सिस्टम) दुष्प्रभावित होता है। इस कारण अनेक शारीरिक गड़बड़ियां उत्पन्न होती है। हृदय की धड़कन की गति बढ़ जाती है और रक्तचाप भी बढ़ जाता है। रक्त में कोलेस्ट्रोल और कार्टिसोन का स्तर बढ़ जाता है, जिससे हृदयरोगों से ग्रस्त होने की सम्भावना बढ़ जाती है तथा त्वचा पर झुर्रियां उभरने लगती हैं । शोर के कारण ही रोगियों की दशा बिगड़ती है तथा आरोग्य प्राप्ति में देर लगती है। शोर से न केवल मनुष्य की कार्यक्षमता और स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर पड़ता है, बल्कि इससे पेड़–पौधों, इमारतों, चट्टानों आदि को भी काफी नुकसान पहुंचता है। पक्षियों के अण्डा उत्पादन पर भी इसका प्रतिकूल असर पड़ता है । शोर विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के प्रधान गुन्थेर लेहमान कहते हैं कि शोर प्रौद्योगिकी की प्रगति नहीं अपितु उसकी प्रतिगति का प्रतीक है।

ध्वनि प्रदूषण का नियंत्रण

जनजागरण के आंशिक प्रयासों के बावजूद भी इस समस्या का कोई स्थायी समाधान नहीं निकल सका है। सुविधाओं में विस्तार के साथ शोर भी बढ़ा है। वास्तव में शोर ट्रैफिक एवं औद्योगिक, सामाजिक, धार्मिक, व्यावसायिक तथा राजनैतिक क्रियाकलापों का प्रतिफल ही है। ध्वनि प्रदूषण को पूरी तरह समाप्त कर देना संभव नहीं है लेकिन निम्न उपायों के द्वारा हम इसे कम अवश्य कर सकते हैं :

(1) ऐसे उपकरणों का निर्माण करना जो शोर या ध्वनि की तीव्रता को कम करें।

(2) ध्वनि अवशोषकों का प्रयोग करना चाहिए।

(3) मशीनों के साथ काम करने वाले व्यक्तियों को ध्वनि अवशोषक वस्त्र एवं इअर प्लग देने चाहिए।

(4) पौधों को उगाकर भी ध्वनि प्रदूषण को कम किया जा सकता है। क्योंकि बहुत से पौधे अच्छे ध्वनि अवशोषक होते हैं।

(5) अनावश्यक शोर नहीं करना चाहिए। ध्वनि उत्पादक उपकरणों का आवश्यकतानुसार ही प्रयोग करना चाहिए।

(6) अनावश्यक ध्वनि पैदा करने वालों के खिलाफ कानून बनाकर उसका कड़ाई से पालन सुनिश्चित करना चाहिए।

(7) औद्योगिक इकाइयों की स्थापना रिहायशी क्षेत्रों से दूर की जानी चाहिए।

(8) घरेलू उपकरणों एवं वाहनों की नियमित जांच और आवश्यक मरम्मत करवानी चाहिए।

अध्याय 13
ऊर्जा संकट

पाषाण युग से अंतरिक्ष युग! निश्चय ही मानव ने एक अत्यन्त कठिन और दीर्घ विकास यात्रा तय की है। इस महान यात्रा में मानव का एक सम्बल रहा है ऊर्जा, विभिन्न रूपों में उसका सदा साथ निभाने वाली नैसर्गिक संगिनी रही है। आज हम ऊर्जा के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। ऊर्जा मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है। आधुनिक जीवन की सुख सुविधाओं की बात तो छोड़िए इसके बिना जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति भी असंभव है। आज ऊर्जा विकास का पर्याय है, प्रतीक है।

कार्य करने की क्षमता को ऊर्जा कहा जाता है। किसी भी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक तथा औद्योगिक विकास के लिए ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह ऊर्जा अनेक रूपों में उपयोग की जाती है जैसे विद्युत ऊर्जा, तापीय ऊर्जा, यांत्रिक एवं रासायनिक ऊर्जा आदि।

अन्य विकासशील देशों की भांति भारत को भी आर्थिक विकास के वांछित स्तर को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा की आवश्यकता है। यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में, ऊर्जा के उत्पादन और खपत में भारी वृद्धि हुई है फिर भी अन्य देशों की तुलना में यह अब भी काफी कम हैं। हमारी ऊर्जा की प्रति व्यक्ति औसत खपत, जो कि किसी भी देश की समृद्धि और विकास का प्रतीक है, विश्व की औसत खपत का आठवां हिस्सा है। विकसित देशों में ऊर्जा की प्रति व्यक्ति वार्षिक खपत 5 से 11 किलोवाट के मध्य है जबकि विकासशील देशों में यह मात्र 1 से 1.5 किलोवाट है। भारत में कुल ऊर्जा उपयोग का 60 प्रतिशत व्यावसायिक स्त्रोतों (कोयला, तेल गैस, बिजली, जल विद्युत, नाभिकीय ऊर्जा) से तथा शेष 40 प्रतिशत गैर व्यावसायिक स्त्रोंतो मुख्यतः अग्निकाष्ठ, कृषि अपशिष्ट तथा जंतु उर्त्सजन प्राप्त होता है। यदि भारत की

तुलना केवल एशियाई देशों से की जाए तो भी स्थिति उत्साहवर्धक प्रतीत नहीं होती और यह स्थिति तब है जबकि पहली योजना काल से ही ऊर्जा उत्पादन को बढ़ाने के लिए ठोस प्रयास शुरू कर दिए गए थे। इस प्रकार आज देश के सामने एक बड़ा काम अपनी जरूरी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उत्पादन में वांछित वृद्धि करना है।

प्रमुख देशों में ऊर्जा उपभोग

देश	कुल मात्रा (हेक्सा जूल)	प्रति व्यक्ति (गीगा जूल)
चीन	26.2	24.0
भारत	7.0	8.5
ब्राजील	5.1	35.0
मेक्सिको	4.5	53.0

आज ऊर्जा के साथ एक अन्य पहलू भी घनिष्ट रूप से जुड़ा है, यह है पर्यावरण। ऊर्जा के विकास की विभिन्न परंपरागत पद्धतियां जैसे–ताप, जल या नाभिकीय ऊर्जा अपने–अपने तरीके से पर्यावरण प्रदूषण की समस्याएं पैदा करती हैं। विशेषज्ञों के अनुसार कोयला और तेल जैसे जीवाष्म ईधन पारिस्थितिकीय असंतुलन और पर्यावरण प्रदूषण का कारण बनते हैं। कतिपय विशेषज्ञों की राय में बड़े बांध भी पारिस्थतिकीय असंतुलन का कारण बनते हैं। इसी आधार पर टिहरी बांध और सरदार सरोवर जैसी बड़ी परियोजनाओं का पर्यावरणविदों द्वारा विरोध किया जा रहा है। पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए ऊर्जा के गैर–परम्परागत स्त्रोतों का महत्व और भी बढ़ गया है। ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों के प्रयोग जैसे सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जैव ऊर्जा तथा लघुपन बिजली परियोजनाओं से पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न नहीं होती हैं। हमारे लिए तो इन साधनों का उपयोग करना और भी महत्वपूर्ण है। गैर–परम्परागत साधनों से ऊर्जा उत्पन्न करके भविष्य की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने में काफी हद तक मदद मिलेगी। बस, आवश्यकता है इस दिशा में प्रभावी प्रयास करने की।

ऊर्जा के परम्परागत स्त्रोत बहुत ही सीमित है। आदिकाल से ही मनुष्य ऊर्जा के विभिन्न रूपों का उपयोग अपने दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करता आया है। प्रारंभ में पशु शक्ति और लकड़ी, ऊर्जा के प्रमुख आधार थे। कालान्तर में लकड़ी के स्थान पर कोयला, कोयले के स्थान पर पेट्रोलियम पदार्थ और गैस तथा आणविक ऊर्जा आदि प्रयुक्त किए जाने लगे है।

ऊर्जा संसाधनों का वर्गीकरण : ऊर्जा संसाधन प्राकृतिक संसाधन है जिनकी सहायता से विभिन्न उपयोगी कार्य सम्पन्न किए जाते हैं। प्रमुख रूप से ऊर्जा संसाधनों को दो वर्गों में रखा जाता है –

1. प्राथमिक ऊर्जा संसाधन (Primary Energy Resources) : प्राथमिक ऊर्जा संसाधन खनन द्वारा अथवा पर्यावरण द्वारा प्राप्त किए जाते हैं।

- जीवाश्म ईंधन (Fossil Fuels) : कोयला, लिग्नाइट, कच्चा तेल, प्राकृतिक गैस आदि।
- नाभिकीय ईंधन (Nuclear Fuels) : यूरेनियम, थोरियम, ड्यूटेरियम आदि।
- जल ऊर्जा (Hydro Energy) : ऊंचाई से गिरते हुए जल के द्वारा टरबाइन चलाकर विद्युत उत्पन्न की जाती है।
- भू–तापीय ऊर्जा (Geothernal Energy) : पृथ्वी के अंदर से जो ऊर्जा प्राप्त होती है उसे भू–तापीय ऊर्जा कहते हैं।
- सौर ऊर्जा (Solar Energy) : सूर्य से उत्पन्न विद्युत चुम्बकीय विकिरण जिनका उपयोग विशेष रूप से पौधे प्रकाश संश्लेषण क्रिया में करते हैं तथा जो पृथ्वी पर जीवन का आधार है।
- पवन ऊर्जा (Wind Energy) : पवन चक्कियों के द्वारा गतिशील वायु की यांत्रिक ऊर्जा का उपयोग किया जाता है।
- ज्वारीय ऊर्जा (Tidal Energy) : सागर की सतह पर चलने वाली वायु की गति से उत्पन्न ऊंची–ऊंची लहरें निरंतर तट पर ऊपर नीचे उठती गिरती रहती है। इससे ऊर्जा प्राप्त की जाती है।

प्राथमिक ऊर्जा स्रोतों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

(अ) नवीनकरणीय ऊर्जा स्रोत (Renewable Energy Resources) : वे संसाधन जिनमें पुनः स्थापना की सहज क्षमता होती है और यदि उनका विवेकपूर्ण ढंग से उपयोग किया जाए तो ये अपने को पूर्ववतः बनाये रखते हैं। उदा. सौर्य ऊर्जा, पवन ऊर्जा, भू–तापीय ऊर्जा इत्यादि।

(ब) अनवीनकरणीय ऊर्जा स्रोत (Non-Renewable Energy Resources) : वे ऊर्जा संसाधन जिनमें पुनः स्थापना की सहज क्षमता नहीं होती है या पुर्नस्थापना की गति बहुत धीमी होती है। इनकी मात्रा निश्चित होती है। उदा. जीवाश्म ईंधन–कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैसे, नाभिकीय ईंधन,

यूरेनियम, थोरियम, ड्यूटेरियम आदि।

2. द्वितीयक ऊर्जा स्रोत (Secondary Energy Resources) : द्वितियक ऊर्जा स्त्रोत वे हैं जो प्रकृति में प्राकृतिक रुप में नहीं मिलते हैं अपितु एक या अधिक प्राथमिक ऊर्जा स्त्रोतों से प्राप्त किए जाते हैं। उदा. पेट्रोल या गैसोलीन, कोयले के जलने से विद्युत ऊर्जा की प्राप्ति, जल के विद्युत अपघटन से हाइड्रोजन की प्राप्ति आदि।

गैर व्यावसायिक ऊर्जा स्रोत (Non-Commercial Sources of Energy) : लकड़ी, जानवरों का गोबर, कृषि अपशिष्ट आदि।

व्यवसायिक ऊर्जा स्रोत (Commercial Sources of Energy) : तेल, कोयला, पेट्रोल, विद्युत आदि।

अध्याय – 14
पर्यावरण शिक्षा

वर्तमान शिक्षा में पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता का प्रमुख कारण मानवीय गतिविधियों के पर्यावरण पर हानिकारक प्रभावों के साथ–साथ पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव भी है। प्राच्य शिक्षा व्यवस्था में बालक की शिक्षा का प्रारंभ संयुक्त परिवार में होता था जहां वह पारिवारिक संस्कारों से परिचित होता था। इसके पश्चात आश्रम या पाठशाला से उसके संस्कारों का विकास एवं मानसिक अभिवृद्धि होती थी और तद्पश्चात समाज से वह अपने अर्न्तसंबंधों के कारण प्राप्त हुए अनुभवों से जीवन पर्यन्त सीखता था जिसमें वह कहीं शिक्षक का दायित्व भी निभाता था।

आज बालक की प्रारंभिक शिक्षा का माध्यम परिवार के स्थान पर उसका आसपड़ोस, टी.वी., और कामिक्स हो गया है। अब कामिक्स का भी स्थान बदले परिवेश में पहले कम्प्यूटर और अब मोबाइल ने ले लिया है। जिसका स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है अभिनव से परिपूर्ण शिष्टाचार। आश्रम शिक्षा के स्थान पर निर्मित विद्यालयों में कुछ अपवादों को छोड़कर आधुनिकता के नाम पर कुसंगति तथा अशिष्टता ही अधिक दिखाई देती है। शिक्षा का तीसरा स्तर समाज भी दुर्भावना, भ्रष्टाचार, आतंकवाद और ईर्ष्या से ओतप्रोत होने के कारण परिवर्तित हो चुका है। आज व्यवहार की परिभाषा बदल चुकी है व्यवहार का अर्थ काम निकालना या काम करा लेने की क्षमता हो गया है।

उपरोक्त परिवर्तनों का परिणाम है मानवीय सोच और विचारधारा में परिवर्तन जहां पहले वृक्षों को रात्रि में हाथ लगाना पाप माना जाता था आज उन्हीं पेड़ों को रात्रि में काटकर बेच दिया जाता है। मानवीय सोच/अभिवृत्ति में आए परिवर्तन ने ही प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ा है। अतः वर्तमान समय में आवश्यकता है मानवीय सोच, उसकी अभिवृत्ति में परिवर्तन करने की और निश्चित रूप से यह कार्य शिक्षा ही कर

सकती है। पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से बालक को प्रारंभ से ही पर्यावरणीय घटकों के प्रति संवेदनशील बनाया जाए और युवावर्ग में पर्यावरण संचेतना जागृत कर उनकी अभिवृत्तियों में परिवर्तन किया जाए। ताकि समय रहते पर्यावरण को सुरक्षित रखकर मानव अस्तित्व की रक्षा की जा सके। आज अभिभावकों की व्यस्त दिनचर्चा और बच्चे के बढ़ते हुए बस्ते के आकार को देखते हुए प्रश्न यह उठता हैं कि एक और नया विषय क्यों? परन्तु यदि विषय को गम्भीरता और आने वाली पीढ़ियों के अस्तित्व के बारे में सोचा जाए तो पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता स्वयं सिद्ध है। एक साधारण सी बात है कि किसी को यह बताया जाए कि आगे गढ्ढा है तो एक जिज्ञासा अवश्य होती है कि चलो देख ले परन्तु फिर भी मन के किसी कोने में गिरने का भय अवश्य ही रहता है। अतः यदि किसी बालक को प्राकृतिक संसाधनों को सीमितता और इसके अन्धाधुन्ध दोहन से होने वाले दुष्परिणामों से अवगत कराया जाए जो वह कम से कम इन समस्याओं के प्रति सजग अवश्य हो जाएगा। शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा पर्यावरण से संबंधित समस्याओं की सुलझाया जा सकता है। सारांश यह है कि पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि मनुष्य संपूर्ण प्रकृति चक्र के प्रति संवेदनशील बने, उसमे प्रकृति से लगाव उत्पन्न हो और पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्धन के प्रति वह पहले से अधिक क्रियाशील बने। समाज में मनुष्य अनेकों समस्याओ जैसे जनसंख्या वृद्धि, गरीबी, निरक्षरता इत्यादि से घिरा हुआ है जिन्हें उसकी स्वयं की नासमझी और अकर्मण्यता ने भयानक बना दिया है। कारण चाहे जो हो प्रभावित प्रकृति हुई है और उसका परिणाम भोग रहा है मनुष्य। अतः आज के संदर्भ में पर्यावरण शिक्षा एक अनिवार्य आवश्यकता बन चुकी है।

पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों को हम इस प्रकार समेकित कर सकते हैं –

1. ज्ञान – पर्यावरण के घटकों एवं संबंधित समस्याओं के बारे में ज्ञान।

2. संचेतना – प्रकृति के प्रति आत्मीयता स्थापित करना एवं सह–अस्तित्व को बताना।

3. दृष्टिकोण – पर्यावरण के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव।

4. सहभागिता – अपने आपको पर्यावरण का अंग मानकर संरक्षण, सुधार एवं प्रबंधन में भागीदारी सुनिश्चित करना।

5. पर्यावरण घटकों में अवनयन के मूल्यांकन की योग्यता विकसित करना।

6. पर्यावरण से संबंधित समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक दक्षता प्राप्त करना।

7. पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन से संबंधित जानकारी उपलब्ध कराना।
8. पर्यावरण चेतना तथा जागरूकता विकसित करना।

हरिश्चन्द्र व्यास जी के अनुसार – सही और सार्थक शिक्षा वही है जो जीवन से जुड़ी हुई हो। जिस शिक्षा में जीवन की धड़कने नहीं वह निष्प्राण और निष्प्रयोजन है। ऐसी शिक्षा केवल किताबी कलेवर तक ही सीमित रहती है, वह जीवन के व्यापक संदर्भों में जुड़ नहीं पाती। जीवन की शिक्षा के कई कोण हैं जैसे जीवन क्या है? उसकी धुरी कौन सी है? जीने लायक स्थितियों की रचना कैसे होती है, जीवन का विकास कैसे होता है और भावी पीढ़ियों के लिए एक सुखद, निरापद और निरन्तर जीवन की व्यवस्था कैसे हो सकती है? बातें अनेक हैं लेकिन उत्तर एक ही है और वह यह है कि व्यक्ति और प्रकृति के बीच एक सीधा, सच्चा और सात्विक संवाद होना चाहिए यानी पर्यावरण के प्रति सही संचेतना होनी चाहिए तभी जीवन सुरक्षित भी रहेगा और सुखद भी।

जरूरत के पीछे तर्क

पर्यावरण अध्ययन इसलिए जरूरी है क्योंकि यह इंसान और प्रकृति के बीच में एक जीवन्त सम्बन्ध स्थापित करता है। यह हमें अर्न्तदृष्टि देता है और हमें प्रकृति के साथ जीने का सलीका सिखाता है, मनुष्य की विकास यात्रा और पारिस्थितिकी तंत्र के बीच समन्वय बैठाता है, और यह बताता है कि संसाधनों का सही उपयोग कैसे किया जाए, प्रदूषण को कैसे रोका जाए और पर्यावरण की रक्षा कैसे की जाए। सच बात तो यह है कि पर्यावरण अध्ययन मात्र एक विषय नहीं है– यह तो एक दृष्टि है – जीव जगत को समझने की दृष्टि।

जन–चेतना के लिए पर्यावरण अध्ययन की आवश्यकता –

बीसवीं सदी के अंतिम दशकों एवं इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में पर्यावरण परिवर्तन एवं उसकी विकरालता को देखते हुए पारिस्थितिक तंत्र का विश्लेषण किया जा रहा है। पर्यावरण में फैलते प्रदूषण और होने वाले बदलाव से समूची पृथ्वी में बदलाव आने से चारों ओर प्रभाव पड़ रहा है। इसलिए अब पर्यावरण अध्ययन के माध्यम से जन सामान्य में जनचेतना जाग्रत करना आवश्यक है, जिससे पर्यावरण का संरक्षण किया जा सके, जिससे हमें स्वस्थ वातावरण मिले। इस संदर्भ में चीनी कहावत ज्यादा उपर्युक्त है। यदि आप एक वर्ष के लिए योजना बना रहे हैं तो धान रोपें, यदि

आप दस वर्ष के लिए योजना बना रहे हैं तो वृक्षारोपण करें, किन्तु यदि सौ वर्ष के लिए योजना बना रहे हैं तो जन–चेतना विकसित करें या दूसरे शब्दों में अपने मानव संसाधन को विकसित करें।

(1) प्रथम स्तर : पर्यावरण एवं उसके घटकों की जानकारी एवं उपयोग

- भू आकृति या उच्चारण
- जलवायु (वर्षा, तापमान, आर्द्रता)
- प्राकृतिक वनस्पतियां
- भूमि एवं मृदा
- जीव जंतु
- कृषि एवं पशुपालन
- ऊर्जा
- उद्योग
- खनिज खनन
- वन

(2) द्वितीय स्तर : पर्यावरणीय समस्याएं

- पर्यावरण प्रदूषण–जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, नाभिकीय प्रदूषण आदि।
- प्राकृतिक आपदाएं भूकंप, ज्वालामुखी, बाढ़, सूखा आदि।
- ऊर्जा संकट
- मृदाक्षरण एवं मरुस्थलीकरण
- हरित गृह प्रभाव
- भूमंडलीय तापमान में वृद्धि
- जलवायु परिवर्तन
- शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण

(3) तृतीय स्तर : पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन

- प्रदूषण पर नियंत्रण
- वन रक्षा एवं वनारोपण
- मृदा संरक्षण
- जैव विविधता संरक्षण
- जनसंख्या नियंत्रण
- भूमि प्रबंधन
- जल प्रबंधन
- वन एवं वन्य जीवों का प्रबंधन
- ऊर्जा संरक्षण
- सतत विकास की अवधारणा

पर्यावरण के संबंध में जन चेतना विकसित करने के लिए आवश्यक है कि हम जन सामान्य को इस बात से अवगत अवश्य करावें कि हमारा परिवार, समाज सभी पर्यावरण का हिस्सा है, इसलिए पर्यावरण की रक्षा करने के लिए हर किसी को योगदान देना होगा। जन सामान्य को निम्न प्रकार से पर्यावरण की

जानकारी दी जा सकती है –

- घर, समाज और पर्यावरण
- स्थानीय पर्यावरण और शिक्षा
- भारतीय संस्कृति और पर्यावरण
- पर्यावरण और शिक्षा।

पर्यावरण शिक्षाः अर्थ एवं परिभाषा (EE : Meaning & Definition)

पर्यावरण शिक्षा वह शिक्षा है जो :

पर्यावरणीय घटकों का विस्तृत ज्ञान,

पर्यावरण तथा मानव के मध्य अर्न्तसंबंधों एवं पारस्परिक निर्भरता का ज्ञान, और पर्यावरण के प्रति संचेतना का विकास कर पर्यावरण संरक्षण की अभिवृत्ति व कौशल का विकास करती है।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि – ''पर्यावरण शिक्षा, पर्यावरण के सुधार के लिए, पर्यावरण के संबंध में, पर्यावरण के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा है। यह वाक्य पर्यावरण शिक्षा की परिभाषा, विषय, वस्तु, लक्ष्य, उद्देश्य तथा शिक्षण विधि की ओर इंगित करता है। पर्यावरण शिक्षा एक नया अधिगम क्षेत्र है पर्यावरण शिक्षा की विषय वस्तु (Subject Matter) के विस्तार और उपागम (Approach) की अनिश्चितता के कारण इसकी सर्वमान्य परिभाषा की संकल्पना या अपेक्षा करना उचित नहीं है। अतः पर्यावरण शिक्षा की कुछ परिभाषाएं तथा व्याख्याएं निम्नानुसार है :

अर्न्तराष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक स्त्रोत संरक्षण परिषद के नेवादा सम्मेलन में पर्यावरण शिक्षा की व्याख्या करते हुए कहा गया कि ''पर्यावरण शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव अपनी संस्कृति तथा जैवभौतिक परिवेश के बीच पारस्परिक संबंधों की समझ तथा श्लाधा का विकास, सम्प्रत्यों का स्पष्टीकरण तथा कुशलताओं और अभिवृत्तियों का विकास करता है। यह शिक्षा व्यक्ति की निर्णय प्रक्रिया एवं व्यवहार संहिता में भी अपेक्षित परिवर्तन लाती है।''

न्यूजीलैड के रे चैपमैन टेलर के अनुसार ''पर्यावरण शिक्षा का अभिप्राय सद्नागरिकता विकसित करने के लिए सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को पर्यावरणीय मूल्यों एवं समस्याओं पर केन्द्रित करना है कि ताकि सद्नागरिकता का विकास हो सकें तथा अधिगमकर्ता पर्यावरण के संबंध में भिज्ञ, प्रेरित तथा उत्तरदायी हो सके।''

न्यूजीलैड के संयुक्त पर्यावरणीय अध्ययन केन्द्र के अनुसार ''पर्यावरणीय शिक्षा

का उद्देश्य इस प्रकार के समाज की रचना करना है जो कि पर्यावरण तथा उसकी समस्याओं से ज्ञान सम्पन्न होकर उन्हें हल करने के लिए प्रेरित हो सके।''

स्वान के अनुसार ''पर्यावरण शिक्षा की अवधारणा यह है कि ऐसी सद्नागरिकता का विकास किया जाए जो अपने पर्यावरण एवं उससे जुड़ी हुई समस्याओं से परिचित हो तथा इन समस्याओं के समाधान के लिए अपनी भागीदारी के अवसरों की जानकारी रखती हो।''

चैंबर्स डिक्शनरी के अनुसार ''पर्यावरण शिक्षा एक ऐसा अध्ययन क्षेत्र है, जिसमें जीव–जन्तुओं पेड़–पौधों तथा मनुष्य समुदायों के अपने वातावरण के साथ अंतर संबंधों को व्याख्यायित किया जाता है। पर्यावरण के साथ जीवधारियों का जो भी आदान प्रदान होता है, जो भी अंतः क्रियाएं होती है अथवा अंर्तसंबंध बनते है, उनका वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करना ही पर्यावरण शिक्षा है।'

प्रसिद्ध परिस्थितिकीविद् ओडम के अनुसार – ''पर्यावरण शिक्षा मानव के चारों ओर व्याप्त जीवित तथा भौतिक वातावरण की शिक्षा है।''

ए.बी. सक्सेना के अनुसार – ''पर्यावरण शिक्षा वह प्रक्रिया है जो पर्यावरण के बारे में हमे संचेतना ज्ञान और समझ देती है, इसके बारे में अनुकूल दृष्टिकोण का विकास करती है और इसके संरक्षण और सुधार की दिशा में हमें प्रतिबद्व करती है।''

एन्सायक्लोपीडिया आफ एजुकेशन रिसर्च के अनुसार – ''पर्यावरण शिक्षा की परिभाषा देना कोई सरल कार्य नहीं है। पर्यावरण शिक्षा के विषय क्षेत्र अन्य पाठ्यक्रमों की तुलना में कम परिभाषित है फिर भी यह सर्वमान्य है कि पर्यावरण शिक्षा बहुविषयी होनी चाहिए जिसमें जैविक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मानवीय संसाधनों से सामग्री प्राप्त होती है इस शिक्षा के लिए संप्रत्यात्मक विधि सर्वोत्तम है।''

''पर्यावरण शिक्षा का उद्देश्य प्रकृति तथा मानवीय संबंधों के मध्य संतुलन की स्थापना करना है। जिसके द्वारा बालक से वृद्ध तक सभी स्तर पर मनुष्य प्रकृति के साथ दुर्व्यवहार न करे, जिससे कि प्रकृति का भौगोलिक तथा जलवायविक चक्र परिवर्तित या दिगभ्रमित हो। इससे पर्यावरण तथा मानव पारस्परिक निर्भरता विधिवत बनी रहेगी। अन्यथा वह पारस्परिक विकास में परिवर्तित हो जावेगी।''

"Environment education is concerned with the development of interrelationship between man & environment, promotion of quality of human life and personal commitment towords environmental conservation."

सारांश में यह कहा जा सकता है कि मनुष्य पर्यावरण को समझे, पर्यावरण संतुलन बनाना सीखे और पर्यावरण सुधार के लिए प्रयत्न करें यहीं पर्यावरण शिक्षा का मूल है। अतः पर्यावरण शिक्षा को निम्न बिन्दुओं के आधार पर परिभाषित किया जा सकता है –

1. मानव में पर्यावरणीय घटकों के प्रति संवेदन शीलता का विकास,
2. मानव एवं पर्यावरण के मध्य अर्न्तसंबंधों का ज्ञान,
3. मानव में पर्यावरण संचेतना का विकास,
4. मानव में उपलब्ध संसाधनों के सुव्यवस्थित उपयोग की समझ का विकास,
5. मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार,
6. पर्यावरण प्रदूषण के श्रोंतों की जानकारी,
7. मानव एवं अन्य जीवधारियों के मध्य संतुलन
8. ऐसे जनमत का विकास जो पर्यावरण संबंधी समस्याओं को न सिर्फ सुलझा सके अपितु उनकी पुनरावृत्ति को भी रोक सके।

पर्यावरण शिक्षा : क्षेत्र (Environment Education : Scope)

पर्यावरण शिक्षा का क्षेत्र बहुत व्यापक है। हम एक विशालकाय सृष्टि के अभिन्न अंग हैं उस सृष्टि के निर्माता या संहारकर्ता नहीं हैं। हमारा इस सृष्टि पर पाए जाने वाले सभी जीवधारियों तथा निर्जीव वस्तुओं से घनिष्ट संबंध है। और हमें अपने इस घनिष्ट संबंध को बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि संबंधों का बिगड़ना मानव के अनिष्ट का संकेत है।

विज्ञान और प्रोद्यौगिकी के क्षेत्र में – विज्ञान और प्रोद्यौगिकी एक दूसरे के पूरक है जहां एक ओर विज्ञान हमें वास्तविकताओं से साक्षात्कार करवाता है वहीं दूसरी ओर प्रोद्यौगिकी मानवीय आवश्यकताओं के अनुरूप नई सुविधाओं का विकास करवाती है। मानव अपने विज्ञान और प्रोद्यौगिकी के सम्मिलित ज्ञान से पर्यावरण को परिवर्तित कर रहा है।

पर्यावरण की निरंतरता – पर्यावरण परिवर्तनशील है और पर्यावरण का परिवर्तनशील होना ही उसकी निरंतरता का कारण है। पर्यावरण मानव द्वारा किए गए नुकसान की भरपाई करने मे सक्षम है परन्तु एक सीमा तक, उस सीमा के पश्चात् पर्यावरण अपनी निरंतरता को कायम नहीं रख पाता है और प्रदूषित हो जाता है।

मानविकी के क्षेत्र में – मानव प्रकृति से सुख की अनुभूति पाता है। प्राकृतिक दृश्य उसे सुख और संतोष प्रदान करते है। यह सुख और संतोष मानविकी से ही संबंधित है जो मानव को पर्यावरण से जोड़ते हैं। प्राकृतिक संसाधन हमारी सांस्कृतिक धरोहर भी है जिन्हें बनाए रखना अपनी पहचान को कायम रखना है।

कला एवं संगीत के क्षेत्र में – सामाजिक विज्ञान, कला, संगीत और पर्यावरण पर किए सर्वेक्षणों के आधार पर ये निष्कर्ष प्राप्त हुए है कि मनुष्य पर्यावरण में स्थायित्व चाहता है वह चाहता है कि प्रकृति सदैव जीवन दायिनी बनी रहे इसमें कोई परिवर्तन न हो। कला और संगीत के माध्यम से भी पर्यावरण समस्याओं को जन चेतना का विषय बनाया जा सकता है और पर्यावरण के प्रति एक भावनात्मक आधार/लगाव विकसित किया जा सकता है।

साहित्य के क्षेत्र में – पर्यावरण शिक्षा का संरक्षण, संवहन, विकास एवं वर्तमान से जोड़ने का माध्यम साहित्य है। पर्यावरण के क्षेत्र में सोचने, समझने, लिखने और संचार माध्यमों द्वारा प्रसार करने से ही जागरूकता और संवेदनशीलता का वातावरण बन सकेगा।

पर्यावरण शिक्षा का मूल आधार ही प्रकृति, पर्यावरण तथा मानव के अंर्तसंबंधों का अध्ययन करना है। स्पष्ट है कि पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से मानव से अंर्तसंबधित है। सुविधा दृष्टि से पर्यावरण तंत्र को निम्न वर्गो में वर्गीकृत किया जा सकता है –

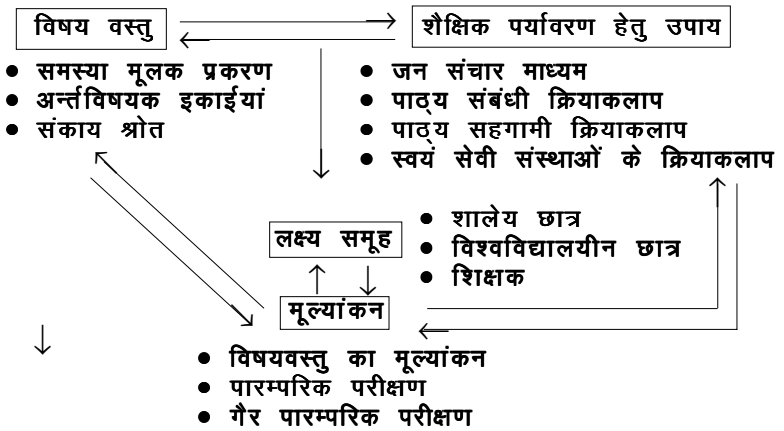

पर्यावरण शिक्षा का प्रस्तावित प्रारूप

पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Environment Education)

शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है। Cywe (Bloom) के अनुसार "शैक्षिक उद्देश्य से हमारा तात्पर्य उन व्यवहारों के निर्माण से है जिनमें शैक्षिक प्रक्रिया द्वारा छात्रों को लाना होता है।" ब्लूम ने शिक्षा के उद्देश्यों को निम्नानुसार वगीकृत किया गया है :

1. ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive domain) : इस पक्ष के अर्न्तगत उन उद्देश्यों को रखा गया है जो बौद्विक कौशल और क्षमताओं के ज्ञानात्मक विकास की पहचान के लिए आवश्यक होते है। इस पक्ष में याद रखना, समस्या समाधान, संप्रत्यय निर्माण और कुछ सीमा तक सृजनात्मक सोच (Remembering, Problem Solving, Concept Formation, Creative Thinking) का समावेश होता है। अर्थात् ज्ञानात्मक पक्ष चैतन्य मस्तिष्क में होने वाली समस्त प्रक्रियाओं चाहे वो सामान्य हो जैसे याद रखना या जटिल (जैसे समस्या समाधान) पर आधारित होता है। अतः ज्ञानात्मक पक्ष में निम्न शैक्षणिक स्तर होते हैः

1. ज्ञान (Knowledge)
2. अवबोध (Understanding)
3. ज्ञानोपयोग (Application)
4. विश्लेषण (Analysis)
5. संश्लेषण (Synthesis)
6. मूल्यांकन (Evaluation)

2. भावात्मक पक्ष (Affective domain) : इस पक्ष के अन्तर्गत वे उद्देश्य समाहित है जो रूचियों में परिवर्तन, अभिवृत्तियों और मूल्यों में परिवर्तन और गुणों की पहचान तथा प्रबंध के लिए आवश्यक होते हैं। अर्थात् इस पक्ष के अन्तर्गत उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सामान्य अवलोकन से लेकर भावनात्मक सुझाव समाहित है।

3. मनोगत्यागत्मक पक्ष (Psycomotor domain) : इस पक्ष के अर्न्तगत वह सभी क्रियाएं सम्मिलित है जिसमें तंत्रिकाएं और पेशियां एक साथ कार्य करती है जैसे लिखना, बोलना इत्यादि। अर्थात् इस पक्ष के व्यक्त करने के लिए विचार (ज्ञान) को परिभाषित करके प्रस्तुत किया जाता है।

पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों की भी ज्ञानात्मक, भावात्मक और मनोगत्यात्मक पक्षों के आधार पर व्याख्या की जा सकती है।

अ. पर्यावरण शिक्षा के ज्ञानात्मक पक्ष पर आधारित उद्देश्य :

1. अपने आसपास के पर्यावरण का ज्ञान प्राप्त करना।

2. अपने चारों ओर के विस्तृत पर्यावरण का ज्ञान प्राप्त करना।
3. जैविक और अजैविक घटकों का अवबोध (Understanding)
4. बढ़ती हुई जनसंख्या और उसके दुष्परिणामों संबंधी अवबोध/समझ।
5. अनियोजित संसाधनों के दोहन के दुष्परिणामों संबंधी अवबोध/समझ।
6. विभिन्न पोषण स्तरों और उनके अर्न्तसंबंधों संबंधी ज्ञान और अवबोध/समझ।
7. मौलिक एवं मानवीय संसाधनों के उपयोग का मूल्यांकन और उसके उपायों संबंधी अवबोध/समझ।
8. पर्यावरणीय प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों, उनके कारकों तथा परिणामों संबंधी ज्ञान और अवबोध/समझ।
9. पर्यावरणीय संकट को दूर करने वाली विधियों का ज्ञान।
10. पर्यावरणीय घटनाओं को समझने के कौशल का विकास एवं विश्लेषात्मक योग्यता के आधार पर पर्यावरणीय समस्याओं के निदान के लिए अर्थपूर्ण निर्णय लेना।
11. आकार, र्स्पश, ध्वनि, आदत, आवास इत्यादि को पहचानने के कौशल का विकास।

ब. पर्यावरण शिक्षा के भावात्मक पक्ष पर आधारित उद्देश्य :

1. पर्यावरण के प्रति संचेतना एवं वैज्ञानिक सोच का विकास करना।
2. प्रचलित अंध विश्वासों (जैसे नदियों में अस्थि, राख, पुष्प, नारियल इत्यादि के विसर्जन) को दूर करना।
3. प्रकृति प्रेम की भावना का विकास करना।
4. पर्यावरणीय घटकों के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण का विकास करना।
5. पर्यावरणीय घटकों के प्रति जनमत का विकास करना।
6. मनुष्य और प्रकृति के मध्य सीधे अर्न्तसंवाद की स्थिति का निर्माण करना।
7. देश के भावी नागरिकों को यह एहसास दिलाना कि पर्यावरण से सिर्फ वे ही नहीं जुड़े है उनकी आने वाली संततियां भी इसी पर्यावरण का उपयोग करेंगी।
8. मानवीय व्यवहारों जैसे समानता, न्यायप्रियता, सत्यता इत्यादि के मूल्यात्मक पहलू का विकास करना।
9. आसपास पाए जाने वाले जैव समुदाय तथा सम्पूर्ण मानव सभ्यता से प्रेम की भावना का विकास करना।

10. प्रकृति द्वारा प्रदत्त उपहारों की सराहना करना।

11. विभिन्न धर्मो, जातियों व संस्कृतियों के प्रति संवेगात्मक दृष्टिकोण का विकास करना।

12. व्यक्तिगत्, सामूहिक व सामुदायिक समस्याओं को समझना।

स. पर्यावरण शिक्षा के मनोगत्यात्मक पक्ष पर आधारित उद्देश्य :

1. लेखन, कार्यक्रम निर्माण इत्यादि के द्वारा पर्यावरण जागरूकता का प्रयास करना।

2. ज्ञानात्मक एवं भावात्मक पक्षों में वर्णित उद्देश्यों को कार्य रूप देना।

3. पर्यावरण खेल, पर्यावरण क्लब तथा पर्यावरण नाटिका आदि के द्वारा पर्यावरण के प्रति संचेतना का विकास करना।

पर्यावरण शिक्षा के लक्ष्य (Aims of EE)

पर्यावरण शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थी में बाल्यकाल से ही पर्यावरणीय घटकों (संजीव एवं निर्जीव) एवं प्राकृतिक वातावरण के प्रति धनात्मक दृष्टिकोण के विकास से है जिससे परिस्थितिक असंतुलन से पर्यावरण को बचाया जा सके। जैसे एक बालक को फूल, पत्ती, छोटे–छोटे पादपों को तोड़ने से मना करना, जीव जन्तुओं के लिए प्रेम व्यवहार संबंधी दृष्टिकोण के विकास का प्रयास, उन्हें शारीरिक स्वच्छता तथा जल के दुरुप्रयोग संबंधी जानकारी देना जिससे उनमें क्रमशः वृक्षों के कटाव के विरूद्ध मानसिकता, जीवों से प्रेम, संसाधनों के समुचित उपयोग और उन्हें यथा स्थिति बनाए रखने की मानसिकता का विकास हो सके। पर्यावरण शिक्षा के निम्नांकित लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं :

1. पर्यावरण शिक्षा संदर्भित अभिवृत्तियों और व्यवहारिक परिवर्तनों का विकास : जिससे छात्र में प्रकृति प्रेम और परिस्थितिकीय घटनाक्रमों से संलग्न होकर पर्यावरणीय घटकों से लगाव उत्पन्न हो सके साथ ही वह पर्यावरण संरक्षण संबंधी निर्णय लेने में स्वतंत्र हो सके।

2. पर्यावरण सुरक्षा तथा संरक्षण के प्रति जागरूकता तथा जिम्मेदारी का विकास : जिससे न केवल छात्र में पर्यावरणीय समस्याओं के तात्कालिक एवं दूरगामी परिणामों संबंधी सोच उत्पन्न हो अपितु उसमें प्रदूषण के व्यक्तिगत तथा सामूहिक (घरेलू तथा औद्योगिक) स्तरों का तथा उनके पर्यावरणीय घटकों पर प्रभावों का विश्लेषण करने की क्षमता का विकास भी हो सके।

3. भौगोलिक संसाधनों की सुरक्षा एवं संरक्षण हेतु जागरूकता का विकास : जिससे छात्र इन संसाधनों की सीमितता तथा उनके अनियंत्रित उपयोग से होने वाली हानियों को समझ सके। साथ ही उनके संरक्षण के लिए भी प्रयास कर सके।

4. पर्यावरण के प्रति सुरक्षात्मक तथा संरक्षणात्मक तकनीकियों का विकास : किसी समस्या के समाधान की एक ही तकनीकी विभिन्न क्षेत्रों में एक सीमा तक ही प्रभावशाली नहीं होती अतः कोई तकनीकी विकसित करने के पूर्व उस स्थान विशेष की परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए जिससे व्यक्तिगत् और सामाजिक विकास में सांस्कृतिक मूल्यों की उपेक्षा न हो।

5. पर्यावरणीय विनाश तथा समस्याओं के बेहतर समाधान के लिए तकनीकी शिक्षा की भूमिका का मूल्यांकन : जिससे वर्तमान शिक्षा तंत्र को स्थापित पर्यावरणीय समस्याओं और स्थितियों के अनुरूप बनाया जा सके। साथ ही साथ समस्या समाधान/निदान की विधियों का विकास भी किया जा सके।

6. पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान में सहभागिता : जिससे छात्र बचपन से ही पर्यावरणीय संरक्षण संबंधी कार्यक्रमों में अपनी सहभागिता सुनिश्चित कर सकें तथा अपने आपको पर्यावरण का अभिन्न अंग मानें।

अध्याय –15
जैव विविधता

जब तक मानव का प्रकृति के प्रति उदार दृष्टिकोण था तब तक चारों ओर हरियाली, समृद्धि एवं खुशहाल वातावरण था। विकास के नाम पर प्रकृति के अंधाधुंध दोहन से न केवल पेड़–पौधों और जीव–जन्तुओं का अस्तित्व खतरे में पड़ गया बल्कि मानव जीवन पर भी प्रश्नचिन्ह लग गया। भौतिक सुख की तीव्र आकांक्षा में मानव यह भी भूल गया कि संतुलित पर्यावरण के बिना स्वस्थ जिन्दगी की परिकल्पना भी एक स्वप्न मात्र है। **प्रकृति में पाए जाने वाले सभी जीव आपस में अन्तर संबंधित हैं और किसी एक जैव प्रजाति या आवास का नष्ट होना सिर्फ उसी प्रजाति या आवास को ही प्रभावित नहीं करता वस इसका प्रभाव सम्पूर्ण परितंत्र पर और परोक्ष रूप में मानवीय जनसंख्या पर भी होता है।** अनियंत्रित मानवीय गतिविधियों के कारण आज मानव अस्तित्व के लिए अति आवश्यक 'जैव विविधता' के द्रुत ह्रास को रोकना विश्व के पर्यावरणविदों, पारिस्थितिविदों, वैज्ञानिकों, राजनीतिज्ञों आदि के सामने चुनौती बनकर खड़ा हो गया है। इस चुनौती का सामना करने के लिए सन् 1992 में ब्राजील के शहर रियो–डी–जेनेरियो में 'पृथ्वी सम्मेलन' का आयोजन किया गया जिसमें भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री सहित विश्व के 178 देशों के प्रतिनिधियों ने जैव विविधता ह्रास से आने वाले खतरों और उनसे सुरक्षा के संभव प्रयासों पर विचार विमर्श किया। परिणामस्वरूप आज समूचा विश्व जैव–विविधता की महत्ता और उसके संरक्षण हेतु प्रयासरत है। विकास एवं पर्यावरण विषय पर आयोजित इस अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलन में जैव विविधता को निम्नानुसार परिभाषित किया गया –

"The variability among living organisms from all sources, including 'inter alia', terrestrial, marine and other aquatic ecosystems

and ecological complexes of which they are part : this includes diversity with in species, between species and of ecosystem".

सामान्य रूप से इसे जैविक संघटनों के विभिन्न स्तरों पर जीवन में विभिन्नता के रूप में परिभाषित किया गया है। 'जैव विविधता' शब्द में पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी जीवों की प्रजातियां सम्मिलित हैं। इसे पारिस्थितिकीय जटिल तंत्रों में परिवर्तनशीलता के रूप में परिभाषित किया गया है जिसका कि वे भाग हैं। जैवविविधता में प्रजातियां, आनुवांशिक तथा परिप्रणाली स्तर समाविष्ट हैं। जैव–विविधता खाद्य, कृषि, औषधि, उद्योग में सीधा उपभोज्य मान है। इसका सौंदर्य तथा मनोरंजनात्मक मूल्य भी है। जैव–विविधता परिस्थितिकीय संतुलन और विकासीय कार्यो को बनाए रखती है। अप्रत्यक्ष पारि–प्रणाली सेवाएं, जो जैव–विविधता के जरिए प्रदान की गई हैं, वे हैं– प्रकाश संश्लेषण, परागण, उत्स्वेदन, रासायनिक चक्रण, मृदा अनुरक्षण, जलवायु विनियमन, वायु एवं जल प्रणाली प्रबंधन, अपशिष्ट शोधन तथा नासीजीव नियंत्रण। 'पृथ्वी सम्मेलन' के पश्चात जैव विविधता, पृथ्वी के संतुलित स्थायित्व को मापने का एक पैमाना बन गया। इसने Sustainable Development **की आधारशिला रखी जिसका अभिप्राय है पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए किया जाने वाला विकास। अभिप्राय यह है कि मानव के भविष्य को ध्यान में रखते हुए परितंत्रों की समस्थिति यथा संभव सुनिश्चित की जा सके।**

क्या है जैव–विविधता

जैविक विविधता (Biological Diversity) शब्द सर्वप्रथम 1968 में वन्यजीव वैज्ञानिक एवं संरक्षणविद् Raymond F. Dashjmah द्वारा उपयोग में लाया गया था। इसके लगभग एक दशक बाद 1980 के दशक में इस शब्द को व्यापक रूप से विज्ञान एवं पर्यावरणीय नीतियों में शामिल किया गया। जैविक विविधता को 1985 में W.G. Rosen द्वारा जैव विविधता (Biodiversity) कहा गया।

प्रकृति में पायी जाने वाली समस्त वनस्पति, जीव–जन्तु, सूक्ष्म जीव, मनुष्य, कृषि उपज, फल–फूल, पालतू जानवर एवं आनुवांशिक सामग्री जैसे बीज आदि जैव–विविधता के घटक हैं जो विभिन्न प्रकार के स्थलीय एवं जलीय पारिस्थितिकी तंत्रों का निर्माण एवं भिन्न–भिन्न कार्य सम्पादित कर पर्यावरण संतुलन को बनाए रखते हैं। जैव विविधता को प्रजाति विविधता एवं पारिस्थितिकी विविधता दो भागों में बांटा जा सकता है –

प्रजाति विविधता (Species Diversity) :

प्रजाति जीवों का एक ऐसा समूह है जिनमें एक समान जीन समूह पाया जाता है। एक प्रजाति के जीव दूसरे से अत्यधिक समानता रखते हैं इन प्रजातियों में जैव विकास के द्वारा नई जातियों के उत्पन्न करने की क्षमता पायी जाती है। प्रजाति विविधता दो प्रजातियों के मध्य होती है। एक निश्चित क्षेत्र में उपस्थित प्रजातियों की संख्या के आधार पर इसका मापन किया जाता है। आकारीकीय तथा आनुवांशिकीय कारकों द्वारा प्रजाति विविधता स्पष्ट होती है। इस पृथ्वी पर लगभग 25 लाख जैव प्रजातियां उपलब्ध हैं। जिन का विलुप्तीकरण वर्तमान में सबसे तेजी से हो रहा है।

पारिस्थितिकी विविधता (Ecological Diversity) :

जीवमंडल में कोई कभी भी अकेले नहीं रहता बल्कि उसके साथ जीवित तथा निर्जीव वस्तुएं रहती हैं। किसी स्थान पर उपस्थित सभी जीवित तथा निर्जीव वस्तुओं की एक साथ उपस्थिति एवं सहयोगात्मक जीवन पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है। जीवों तथा उनके वातावरण के पारस्परिक संबंधों और प्रतिक्रियाओं का अध्ययन पारिस्थितिकी कहलाता है। पारिस्थितिकी की विविधता आवास और जैव समुदायों के अंतर को प्रदर्शित करती है। किसी पारिस्थितिक तंत्र के कई भू–रूप हो सकते हैं। पारिस्थितिक तंत्र जल की एक बूंद से लेकर समुद्र तक और घास के छोटे मैदान से लेकर बहुत बड़े वन तक हो सकता है। अलग–अलग भू–भाग में वनस्पति एवं जीवों की विविधता मिलती है।

जैव विविधता शब्द को जीव विज्ञानी वर्तमान समय में निम्न चार स्तरों पर पारिभाषित करते हैं –

1. प्रजातीय विविधता – (Species diversity)
2. परितंत्रीय विविधता – (Ecosystem diversity)
3. आनुवांशिक विविधता – (Genetic diversity)
4. आण्विक विविधता – (Molecular diversity)

पारिस्थितिक तंत्र में प्रजातियों की विविधता कहलाती है। जैव विविधता किसी परितंत्र को परिगृह स्थैतन की दिशा में स्थायित्व प्रदान करती है। उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए पृथ्वी सम्मेलन (1992) में एजेंडा 21 पारित किया गया जिसके उद्देश्य थे : जैविक विभिन्नता का संरक्षण, उसके अवयवों का सतत उपयोग तथा आनुवांशिक संसाधनों के अनुप्रयोग द्वारा प्राप्त अनुलाभों का समुचित बंटवारा। वैश्विक

रूप से जैव संसाधनों का वितरण एक समान नहीं हैं जैव विविधता के वितरण की दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व को 8 जैव भूमंडलीय (Biogeographical) क्षेत्रों में बांटा गया है।

तालिका : विश्व के आठ जैव भूमंडलीय क्षेत्र

क्षेत्र	संरक्षित क्षेत्रों की संख्या	कुल क्षेत्र (1000 हैक्टेयर)
Afrotropical	444	86,090
Indomalayan	676	38,280
Palaearctic	1684	73,190
Oceanian	52	4,890
Neotrtic	478	172,560
Neotropical	458	76,810
Australian	623	35,690
Antarctic	130	3,120
Total	**4545**	**484,630 (भू क्षेत्र का 3.7%)**

इन्हीं भूमंडलीय क्षेत्रों के अंतर्गत 12 जैव विविधता में धनी देश खोजे गए हैं। ये देश है – भारत, मैक्सिको, कोलम्बिया, मेडागास्कर, इक्वेडर, पेरू, ब्राजील, जैरे, चाइना, मलेशिया, इंडोनेशिया और आस्ट्रेलिया।

जैव विविधता का वितरण सभी जगह एक समान नहीं हैं। वैश्विक रूप से इसमें अत्यंत विभिन्नता है।

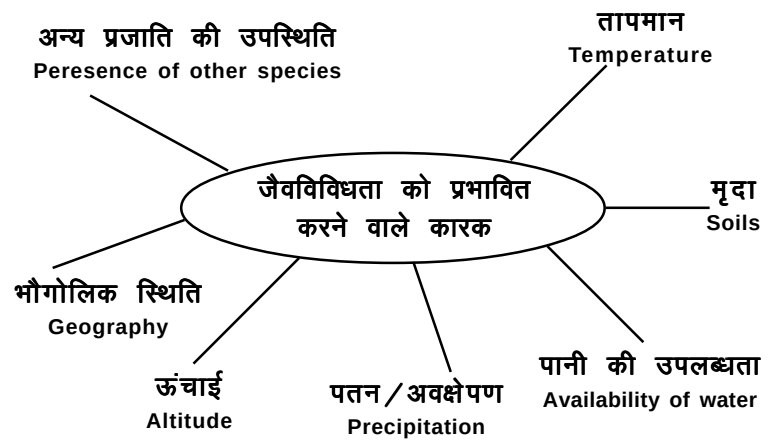

स्थलीय जैव विविधता समुद्री जैव विविधता से लगभग 25 गुनी अधिक है। वर्तमान समय में विश्व की कुल जैव प्रजातियों की संख्या 8.7 मिलियन आंकी गई है जिसमें से 2.1 मिलियन समुद्रों में पाई जाने वाली प्रजातियां हैं हालांकि इस गणना अनुमान में सूक्ष्मजीवों की संख्या शामिल नहीं हैं।

विश्व स्तरीय, राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तर पर जैव विविधता (Biodiversity at Global, National and Local levels):

पृथ्वी पर विविध प्रकार के जीव–जन्तु पाए जाते हैं। जंतु जगत में पाए जाने वाले जंतुओं की संख्या इतनी अधिक है कि इनका अलग–अलग अध्ययन एक दुष्कर कार्य है। अतः समान लक्षणों वाले जन्तुओं को एक समूह में रखकर अध्ययन किया जाता है। जैसा कि प्राणी जगत के इस वर्गीकरण से स्पष्ट है।

प्राणी जगत को 11 वर्गों में विभक्त किया गया है –

(1) एक कोशीय जीव, (2) पोरीफर्स, (3) उदर रहित जीव, (4) टीनोफर्स, (5) चपटे कृमि, (6) धागा कृमि, (7) मोलस्का, (8) ऐनेलिडा, (9) आर्थोपोडा, (10) एकानाइनोडर्मेटा, (11) रीढ़धारी जीव।

विश्व मे 15 लाख प्रजातियों के जीव जन्तु पाए जाते हैं। इन प्रजातियों में कीट, सरीसर्प, पक्षी, स्तनधारी तथा उभयचर आदि विभिन्न प्रकार सम्मिलित हैं।

पृथ्वी तल पर पर्यावरण में विभिन्नता मिलती है। इस कारण वनस्पतियों एवं जन्तुओं का वितरण भी असमान होता है। विभिन्न पर्यावरण क्षेत्रों में पारिस्थितिक तंत्र में भिन्नता होती है। जैसे मरूस्थल, घास के मैदान, टुण्डा आदि। जीवमंडल की ऐसी सामुदायिक इकाई जो स्थलीय जलवायु द्वारा नियंत्रित होती है तथा जिसमें निश्चित प्रकार के जंतुओं और वनस्पतियों की प्रधानता होती है, जीवोम कहलाते हैं। वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि पृथ्वी पर लगभग 3 से 30 मिलियन तक प्रजातियां हैं किन्तु मात्र 2 मिलियन से कम प्रजातियां पहचानी गई हैं एवं उनका विवरण तैयार किया गया है। पारिस्थितिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो विश्व की वनस्पति एवं जलवायु परिवर्तनशील है। अतः परिवर्तनशील तंत्र को स्थिर मानकर अध्ययन करना उचित नहीं है। वनस्पति जगत में सूक्ष्म वनस्पतियों से लेकर छोटे बड़े घास, लताएं, पौधे, वृक्ष सभी सम्मिलित हैं इस आधार पर विश्व में असंख्य प्रकार की वनस्पतियां पायी जाती हैं। प्रथम पौधों की उत्पत्ति जलीय पर्यावरण से हुई। इसके पश्चात ध्रुवों से विषुवत रेखा तक विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों का उद्‌भव हुआ। जलवायु के आधार पर विश्व

को पांच भागों में विभक्त किया जा सकता है। : (1) विषुवत रेखीय कटिबंध, (2) उष्ण कटिबंध, (3) शीतोष्ण कटिबंध, (4) समशीतोष्ण कटिबंध तथा (5) शीत कटिबंध तथा ध्रुवीय प्रदेश। स्पष्ट है कि ध्रुवीय क्षेत्र हिमालय आदि परस्पर समीप नहीं है, किन्तु वानस्पतिक स्वरूप में अधिक समानता मिलती है उसी प्रकार जलवायु के एक कटिबंध में होते हुए भी किन्हीं दो स्थानों में समानता होना आवश्यक नहीं है। विश्व में पौधों की लगभग 2,50,000 ज्ञात जातियां हैं। विश्व में इतने अधिक पेड़ पौधे पाए जाते हैं, कि इनका वर्गीकरण भी एक कठिन कार्य है।

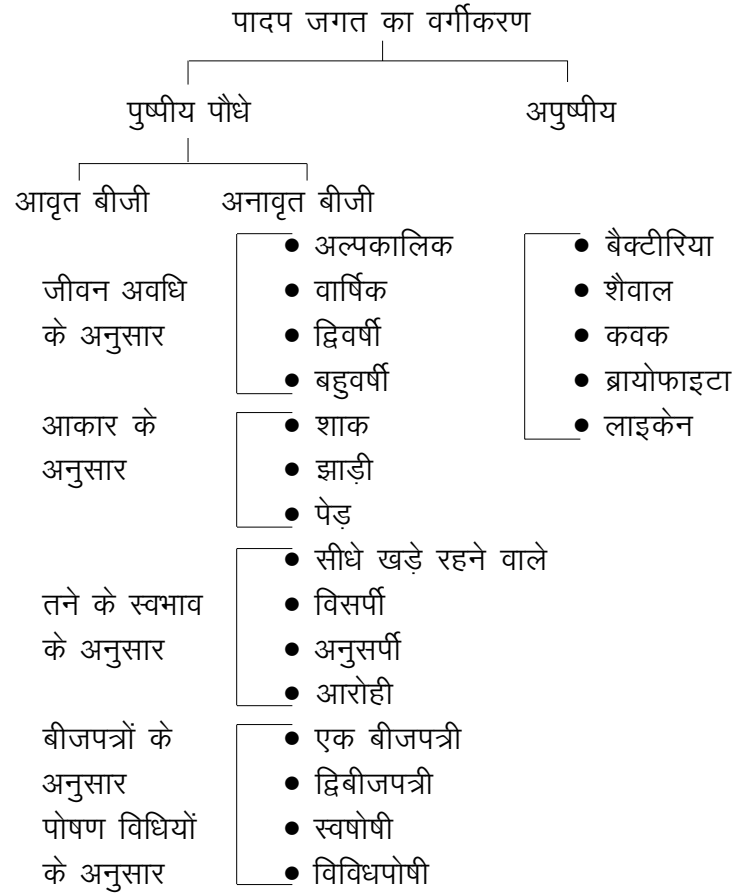

पादप जगत की विविधता उपरोक्त वर्गीकरण से स्पष्ट होती है इसमें भी प्रत्येक वर्ग के अनेक पौधे हैं। विश्व की वनस्पति को निवास के आधार पर निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है :

(1) वन (2) सवाना (3) घास के मैदान (4) मरूस्थलीय वनस्पति।

भारत वानस्पतिक विविधता –

1. पुष्पीय पौधे – 15000 प्रजातियां
2. टेरिडोफाइट्स – 600 प्रजातियां
3. ब्रायोफाइट्स – 2700 प्रजातियां
4. लाइकेन्स – 600 प्रजातियां
5. शैवाल – 5000 प्रजातियां
6. कवक – 20000 प्रजातियां

पुष्पीय पौधों की 35 प्रतिशत प्रजातियां विशेष क्षेत्रीय है। इनका विस्तार 26 विशेष क्षेत्रों तक ही है। भारत के उत्तर–पूर्वी क्षेत्र में 675 आर्किड प्रजातियां हैं। भारत में पायी जाने वाली एक बीजपत्री पौधों की 588 प्रजातियों में से 22 प्रजातियां पूर्ण रूपेण विशेष क्षेत्रीय है।

भारत जन्तु विविधता –

1. स्तनधारी – 350 प्रजातियां
2. कीट – 67000 प्रजातियां
3. मोलस्क – 400 प्रजातियां
4. अन्य कशेरूकी प्राणी – 2,000 प्रजातियां
5. मछलियां – 2000 प्रजातियां
6. पक्षी – 1200 प्रजातियां
7. सरीसप – 425 प्रजातियां
8. उभयचर – 140 प्रजातियां

जैव विविधता के उद्देश्य

जैव विविधता का प्रमुख उद्देश्य पारिस्थितिकी तंत्र में पोषक तत्वों का स्थानांतरण सुनिश्चित करना एवं पुनर्चक्रण कर मृदा की उर्वरा शक्ति को बनाए रखना है। सृष्टि निर्माण से आज तक जैव–विविधता निरन्तर मानव समाज की निःस्वार्थ सेवा कर रही है। जीवन के लिए आवश्यक वायु और जल के अलावा भोजन (अन्न फल–फूल, साग–सब्जी, दूध, अंडा, मांस, मछली आदि), वस्त्र (कपास, ऊन, रेशम, खाल आदि), मकान (बांस, घास–फूंस, इमारती लकड़ी आदि) मनोरंजन के साधन (वन, पहाड़, झील, जल–प्रपात), वन्य जीव–जन्तु, जलीय जीवन–जन्तु, पक्षी आदि जैव–विविधता के अनमोल उपहार है।

वनस्पति किसी परिस्थितिक तंत्र का मूल आधार है इसके माध्यम से ही सौर

ऊर्जा परितंत्र में प्रविष्ट होती है और प्रकाश संश्लेषण द्वारा विविध जैव–पदार्थो का निर्माण सम्भव होता है, यही कारण है कि इन्हें तंत्र में ''उत्पादक'' की संज्ञा दी गयी है। वनस्पति एवं उसका समग्र रूप वन न केवल उत्पादक हैं, बल्कि विविध प्राणियों के शरण–स्थल भी निर्मित करते हैं। वनों के विनाश से एवं जैव – भूरसायन चक्रों में परिवर्तन होने से पारिस्थितिक तंत्र के अस्थिर होने का खतरा है। महत्वपूर्ण यह है कि, वनों के नष्ट होने का कुप्रभाव सीमित या स्थानीय ही नहीं होता, अपितु सुदूर स्थानों एवं दीर्घ अन्तराल तक के लिए होता है। इन कुप्रभावों की लम्बी श्रृंखला में निम्नांकित प्रमुख हैं –

1. अल्प–विकसित एवं विकासशील देशों में इमारती और जलाऊ लकड़ी की कमी।
2. कृषि, औषधि एवं औद्योगिक कच्ची सामग्री का आभाव।
3. प्राणियों जीव–जन्तुओं और वनस्पतियों की विविध प्रजातियों का विलुप्त होना।
4. भूमि के कटाव में वृद्धि और मिट्टी की उर्वरा शक्ति का ह्रास।
5. भूमिगत जल स्तर में कमी और सतही जल प्रदूषण में वृद्धि।
6. जैव भू–रासायनिक चक्रों पर पड़ने वाले प्रभाव के कारण जलवायु परिवर्तन।
7. मरूस्थलीय क्षेत्रफल में लगातार वृद्धि।
8. मानव स्वास्थ्य पर कुप्रभाव।
9. पृथ्वी के औसत तापक्रम में क्रमशः वृद्धि।
10. जल चक्र प्रभावित, परिणामस्वरूप वर्षा कम होना, पेयजल संकट और बढ़ने की संभावनाएं।
11. वन कम होने के कारण तेज आंधी और तूफान के अपेक्षाकृत अधिक विनाशकारी परिणाम मिलना।

पृथ्वी पर पाए जाने वाली कुल जैव प्रजातियों की संख्या 30 मिलियन या उससे अधिक है। बहुत से पादप और जंतु तो अभी तक ढूढ़ें जा चुके है परन्तु अन्य जीवों के बारे में हमारी जानकारी अभी बहुत थोड़ी है। सूक्ष्मजीवों की संख्या और वायु में रहने वाले जीवों की जानकारी आज भी समुचित नहीं है। हमे अर्न्तजातीय जीवों की संख्या, समुदायों और आवासों की भी पूरी जानकारी नहीं है। भारत की जैव विविधता समृद्धि का मुख्य कारण भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न प्रकार की जलवायु का होना है जैसे – चेरापूंजी के अत्यधिक वर्षा वाले वन, अरूणाचल प्रदेश और

अंडमान के समशीतोष्ण वन, हिमालय की बर्फीली वनस्पति तथा राजस्थान और लद्दाख के गर्म तथा ठंडे मरूस्थल । आवास का ह्रास एवं विखंडन, विदेशी जातियों का आगमन, अतिशोषण, मृदा, जल एवं वायु प्रदूषण, अत्यधिक कृषि एवं वानिकी जैसे महत्वपूर्ण कारकों से जातियां विलुप्त भी हो रही हैं और परिणामस्वरूप जैव विविधता का ह्रास भी हो रहा है। संसाधनों में प्रदूषण, आक्रमणकारी जातियों, मनुष्य द्वारा अधि ाशोषण एवं जलवायु परिवर्तन के कारण परितंत्रों में बदलाव हो रहा हैं। जीन कोश, जाति एवं जैव समुदाय सभी स्तरों पर विविधता महत्वपूर्ण हैं जिसका संरक्षण आवश्यक है। आवश्यकता है कि हम अपने ग्रह की देखभाल करें और अच्छे रूप में इसे भावी पीढ़ियों को सौंपे । हमें भावी पीढ़ियों को आर्थिक एवं सौंदर्य लाभों से वंचित नहीं करना चाहिए जो वे जैव विविधता से प्राप्त कर सकते हैं । व्यक्ति या समाज के रूप में जो निर्णय हम आज लेते हैं वे भविष्य में रहने वाले जीवों, जातियों एवं परितंत्रों की विविध ाता संरक्षित करने की सबसे प्रभावी एवं कुशल क्रियाविधि है। आज आवश्यकता है कि हम आवासों के विनाश एवं निम्नीकरण को रोकें । घटते हुए स्थान एवं मानव के कार्यकलापों के बढ़ते दबाव में जैव विविधता को संरक्षित करने हेतु हमें अधिक जानकारी की आवश्यकता है।

जैव विविधता का ह्रास (Loss of Biodiversity)

एक अध्ययन के अनुसार उष्ण कटिबंधीय वन जो पूर्व में 14 से 18 मिलियन वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में फैले थे अब आधे ही बचे है। यह माना गया है कि इस ह्रास ने लगभग 15% प्रजातियों को तो नष्ट ही कर दिया होगा। प्रत्येक 5–10 सालों में लगभग 1 मिलियन वर्ग कि.मी. क्षेत्र नष्ट हो रहा है। और संरक्षित क्षेत्रों के रूप में केवल पृथ्वी के 5: भाग ही हैं, जिससे शेष 95: भाग मानवीय अतिदोहन के लिए स्वतंत्र है। पर्यावरण प्रदूषण तथा नष्ट होती जा रही प्राकृतिक सम्पदा के अध्ययनों के परिणामस्वरूप यह अनुमान है कि समशीतोष्ण वनों की लगातार कटाई से आने वाले 30 वर्षों में विलुप्त होने वाली जीव प्रजातियों की संख्या 15,000 से बढ़कर 50,000 प्रतिवर्ष हो जाएगी अर्थात् 40 से 140 प्रजातियां प्रतिदिन लुप्त होती जाएंगी क्योंकि समशीतोष्ण वन ही विभिन्न जीव प्रजातियों के मुख्य आवास होते हैं। वाशिंगटन स्थित ''वर्ल्ड वाच इन्स्टीट्यूट'' की सन् 1992 में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार दिन–प्रतिदिन कम होते जा रहे वनों के कारण पक्षी, स्तनधारी या पादप की एक प्रजाति प्रतिदिन लुप्त हो रही है। हम आज से ही यदि प्रयास आरंभ कर दें तो भी हम अपनी

आधी ही जैवविधता का संरक्षण कर पाएंगे शेष आधी तो हम वैसे ही हमेशा के लिए खो देगें ।

''अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ'' (IUCN) के अनुसार विश्व की लगभग 10 प्रतिशत अर्थात् 2,500 वानस्पतिक प्रजातियां लुप्तप्राय हैं। हमारे देश में लगभग 200 प्रजातियां लुप्त होने की कगार पर हैं तथा लगभग 2,000 प्रजातियों के लुप्त होने का खतरा है।

वन्यजीव सम्बन्धी अध्ययनों का अनुमान है कि वनों की कटाई से प्रतिदिन 140 या प्रतिवर्ष 50,000 अकशेरूकी जीव प्रजातियां लुप्त हो रही हैं। भारत में नष्ट होते वनों, अवैध शिकार एवं व्यापार के कारण 100 से अधिक वन्य जीवों का अस्तित्व खतरे में है, इनमें बाघ, चिंकारा, कस्तूरी मृग, बाज, चीता, मगर, घड़ियाल, सारस आदि शामिल है। अत्यधिक शिकार ने शेर के अस्तित्व को भी खतरे में डाल दिया है।

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार 1993 की तुलना में 1995 के निर्धारण से पता चलता है कि देश के वास्तविक वन क्षेत्र में 507 वर्ग कि.मी. सीमा की कमी हुई है अर्थात यह 25378 हैक्टेयर वार्षिक कमी है। मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 1995 के अनुसार जहां एक तरफ दिल्ली, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, राजस्थान, सिक्किम, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल तथा संघ राज्य क्षेत्र चंडीगढ़ में वन क्षेत्र में वृद्धि हुई है वहीं दूसरी तरफ आंध्र प्रदेश, अरूणाचल प्रदेश, असम, बिहार, हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, उड़ीसा, पंजाब तथा संघ राज्य क्षेत्र अण्डमान निकोबार द्वीप समूह एवं दादर नागर हवेली के वन क्षेत्र में कमी हुई है। गोवा, दमन द्वीप, केरल तथा त्रिपुरा राज्यों में वन क्षेत्रों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। संघ राज्य क्षेत्रों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। संघ राज्य क्षेत्र लक्षद्वीप एवं पांडिचेरी में मुश्किल से ही कोई वन क्षेत्र है। 1989–93 के दौरान देश के उत्तर पश्चिम क्षेत्र के वन क्षेत्र में 1418 वर्ग कि.मी. की कमी हुई थी। जबकि शेष देश में वन क्षेत्र में 933 वर्ग कि.मी. की वृद्धि हुई है। वर्ष 2011 की स्थिति में हमारे देश का कुल वन क्षेत्र 692027 वर्ग किमी है जो कुल भू–भाग का 21.05 प्रतिशत है।

जैव–विविधता ह्रास का मिट्टी की उर्वरा शक्ति पर प्रभाव –सम्पूर्ण विश्व में भारत में मिट्टी की उर्वरा शक्ति घटने का प्रतिशत सबसे ज्यादा होने का कारण प्रतिवर्ष 208 प्रतिशत की दर से वनक्षेत्रों का कम होना है। बढ़ती आबादी को आवास और भोजन उपलब्ध कराने के लिए वनों की अत्यधिक कटाई और मवेशियों द्वारा

अत्यधिक चराई से मिट्टी को रोके रखने वाली वनस्पतियां दिन–प्रतिदिन कम होती जा रही हैं। फलस्वरूप तेज हवाओं और वर्षा से मिट्टी कटकर बहना उर्वराशक्ति कम होने का मुख्य कारण बन गया है। एक अनुमान के अनुसार जंगल की एक ग्राम मृदा में एक बिलियन से अधिक एक ही प्रकार के बैक्टीरिया, लगभग 1,00,000 खमीर कोशिकाएं तथा 50,000 कवक तन्तु मौजूद रहते हैं। इसी प्रकार कृषि भूमि की 1 ग्राम मृदा में 2.5 मिलियन से अधिक बैक्टीरिया, 40,000 कवक तन्तु, 50,000 शैवाल तथा 30,000 प्रोटोजोआ पाए जाते हैं । ये सूक्ष्मजीव मिट्टी में पाए जाने वाले विभिन्न पोषक तत्वों को उच्च पौधों के लिए उपयोगी बनाते हैं तथा उच्च पौधे मानव समाज की दैनिक जरूरतों को पूरा करते हैं।

जैव–विविधता ह्रास के मुख्य कारण (Causes of Loss of Biodiversity)

- द्रुत गति से बढ़ती जनसंख्या
- वनों की कटाई/जैविक ह्रास
- संसाधनों का असीमित दोहन
- आवश्यकता से अधिक मोटर–गाड़ियों की संख्या और इनसे निकलने वाली हानिकारक गैसों द्वारा वायु प्रदूषण
- क्लोरों–फ्लोरो कार्बन द्वारा पर्यावरणीय क्षति
- मृदा अपरदन (Soil Erosion)
- जन्तुओं का शिकार (Poaching of Animals)
- अनियोजित औद्योगिक विकास (Unplanned Industrial Development)
- प्राकृतिक संसाधनों में प्रदूषण (Pollution in Natural Resources)
- जलवायु परिवर्तन (Climate Change)
- गैर कानूनी प्राणी/प्राणियों से संबंधित वस्तुओं का व्यापार (Illegal Animal Trade)
- आवास नष्ट होना (Habitat Loss)
- बायोइन्वेशन (Bioinvation) – किसी बाह्य प्रजाति का परितंत्र में प्रवेश।
- आवास विघटन (Habitat Degradation)
- आवासों का टूटना (Habitat Fragmentation)

आवास टूटना (Habitat Fragmentation) – यह स्थानीय स्तर पर

घटित होने वाली प्रक्रिया है परन्तु इसके प्रभाव बहुत अधिक विनाशक भी हो सकते हैं। आवास किसी भूमि को किसी अन्य कार्य के लिए उपयोग करना, सर्वप्रथम उस स्थान के परितंत्र के अर्न्तगत चलने वाली पोषक तत्वों के चक्रीयकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। इसके साथ उस स्थान के जीव तो प्रभावित होते ही हैं। किसी स्थान विशेष के जीव (विशेष रूप से वनस्पतियां) नष्ट होने से उस क्षेत्र में सूक्ष्म जीवों द्वारा मुक्त किए गए पोषक तत्व उपयोग में नहीं आ पाने के कारण, मृदा की ऊपरी उपजाऊ पर्त से वायु या पानी द्वारा व्यर्थ हो जाते है। आवास विघटन का असर विशेष रूप से उन प्रजातियों पर अधिक होता है जो उस क्षेत्र विशेष की विशेषता होती है। वनों के विनाश से ही अनेक जीव–जन्तु और पक्षियों का जीवन भी खतरे में पड़ जाता है। यदि जीव–जन्तुओं को छुपने और भोजन के लिए घास और अन्य जन्तु प्राप्त नहीं होंगे तो अवश्य ही वन्य जीवों का विनाश हो जाएगा। वनों के विनाश के साथ–साथ जल की उपलब्धता भी जुड़ी है। वृक्षों की कमी से जल का स्तर भी गिर जाता है। कुएं और तालाब सूख जाते हैं। ऐसी कितनी ही प्राकृतिक औषधियां हैं जो वनों से मिलती है। ये औषधियां वनों के कटाव से नष्ट हो जाती है। यदि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी हमें प्रकृति की इस अनमोल धरोहर को बचाने की दिषा में हर संभव प्रयत्न करना होगा।

आवास निम्नीकरण (Habitat Degradation) इसका प्रमुख कारण है प्राकृतिक संसाधनों (जल, भूमि और वायु) में प्रदूषण जो जैव विविधता हानि को कई गुना बढ़ाने में सक्षम है। मृदा और पानी में होने वाला यूट्रोफिकेशन (नाइट्रोजन, फॉस्फेट आदि की मात्रा में अत्यधिक वृद्धि) उस आवास विशेष में रहने वाले जीवों के मध्य कुछ विशेष प्रजातियों के चयन को प्रोत्साहित करती है। पोषक तत्वों की अत्यधिक सांद्रता को सह सकने वाले जीव ही उस वातावरण में पनप पाते है। उपज में वृद्धि के लिए उपयोग किए जा रहे विभिन्न प्रकार के जैव नाशक पदार्थ, अम्लीय वर्षा एवं क्लोरोफ्लोरोकार्बन के बढ़ते उपयोग से ओजोन पर्त में हानि नें भी विविधता को प्रभावित किया है। पृथ्वी पर ठोस अपशिष्टों का निष्कासन, आर्सेनिक, मरकरी, लेड, जिंक जैसे तत्वों का बढ़ता सान्द्रण (क्योंकि वनस्पतियों को इनमें से कुछ तत्वों की अति सूक्ष्म मात्रा की ही आवश्यकता होती है) भी विविधता ह्रास को बढ़ावा दे रहा है। यहां यह भी महत्वपूर्ण है कि वनस्पतियों की अपेक्षा जंतु भारी धातुओं से ज्यादा प्रभावित होते है क्योंकि ये धातुएं जंतुओं की उपापचयी (Metabolic) क्रियाओं के लिए आवश्यक एन्जाइम को नष्ट कर देते हैं। उदाहरण के लिए अमेरिका के कई भागों में सिलेनियम

धातु का प्रदूषण Pelicans और पक्षियों में शारीरिक विकृति का कारण बना। इसी प्रकार स्पेन में शिकारियों द्वारा उपयोग की गई लेड युक्त गोलियां प्रतिवर्ष लगभग 30,000 पक्षियों की मृत्यु का कारण बनती है।

विक्षोभ एवं प्रदूषण (Disturbance and Pollution) : समुदाय, नैसर्गिक बाधाओं जैसे आग, वृक्षापात, तथा कीटों द्वारा प्रभावित होते है। मनुष्य जनित बाधाएं नैसर्गिक बाधाओं से, तीव्रता दर एवं स्थानिक विस्तार में भिन्न होती हैं। उदाहरणार्थ, मानव आग का बार–बार प्रयोग करके समुदाय की जाति समृद्धता को बदल सकता है। अनेक मानव परिवर्तन जो नई तकनीकों के आगमन द्वारा जनित है जैसे बड़ी संख्या में संश्लेषित यौगिक, विकिरणों का समूह में उत्सर्जन या समुद्र में तेल का फैलना आदि पूर्व में जीव जाति द्वारा नहीं देखा गया था। ये सब आवास की गुणवत्ता को बदल देते हैं। प्रदूषण संवेदनशील जातियों की संख्या को कम कर सकता है या हटा सकता है। मछली खाने वाले पक्षियों एवं फाल्कंस की संख्या में कमी पीड़क नाशियों के कारण हैं, इसके पर्याप्त साक्ष्य हैं। कई जातियों जैसे बत्तख, हंस और सारस की मृत्यु का एक प्रमुख कारण शीशाविषाक्ता है।

विदेशी जातियों का पुर्नस्थापन (Introduction of Exotic Species) : अन्य भौगोलिक क्षेत्रों से नई जातियों का पुर्नस्थापन, जिन्हें विदेशी (म्गवजपब) जातियां भी कहते हैं, के माध्यम से देशी (छंजपअम) जातियों के लुप्त होने का कारण हो सकता है, विदेशी जातियां विशेष द्वीप परितंत्र में, जहां विश्व की अधिकांश संकटग्रस्त जैव विविधता पाई जाती है, अधिक प्रभाव रखती हैं। उन विदेशी जातियों जिनका जैव विविधता के ह्रास पर अधिक प्रभाव है, कुछ उदाहरण निम्न हैं

(i) नाइल पर्च, एक विदेशी भक्षक मछली जिसे विक्टोरिया झील (दक्षिण अफ्रीका) में रोपित किया गया, ने छोटी सिकलिड मछली की जातियों, जो इस अलवणीय जलीय प्रणाली के लिए विशेष क्षेत्रिक थी, को नष्ट करके झील में संपूर्ण परितंत्र को संकटग्रस्त किया है।

(ii) भारत सहित कई उष्णकटिबंधीय देशों की झीलों तथा नदियों में कई जलीय जातियों की जीवंतता को जलकुंभी ने संकटग्रस्त किया है।

(iii) भारत में कई भागों में लैंटेना ने अनेक वन भूमियों और स्थानीय जातियों की वृद्धि को प्रभावित किया है ।

जातियों का विलोपन (Extinction of Species) : विलोपन एक नैसर्गिक प्रक्रिया है। पृथ्वी के दीर्घ भौगोलिक इतिहास में कई जातियां विलुप्त एवं कई

नई, विकसित हुई हैं विलोपन प्रक्रिया तीन प्रकार से होती है:

नैसर्गिक विलोपन : पर्यावरणीय दशाओं में परिवर्तन के साथ कुछ जातियां अदृश्य हो जाती है और अन्य, जो बदली हुई दशाओं के लिए अधिक अनुकूलित होती हैं, उनका स्थान ले लेती हैं। जातियों का यह ह्रास जो भुगर्भी अतीत में अत्यंत धीमी दर से हुआ, नैसर्गिक या पृष्ठभूमिक विलोपन कहलाता है।

समूह विलोपन : पृथ्वी के भूगर्भीय इतिहास में ऐसे अनेक समय रहे हैं, जब जातियों की एक बड़ी संख्या प्राकृतिक विपदाओं के कारण विलुप्त हो गई यह समूह विलोपन कहलाता है। समूह विलोपन करोड़ो वर्षो में होता है।

मानवोद्भवी विलोपन : मानव क्रियाओं के कारण पृथ्वी की सतह से बड़ी संख्या में जातियां अदृश्य हो रही हैं। भूगर्भीय अतीत के समूह विलोपन की तुलना में, मानव जनित विलोपन जैव विविधता के गंभीर अवक्षय को दर्शाती है। विशेष रूप से इसलिए कि यह एक अल्प समय में हो रहा है।

विश्व संरक्षण मॉनीटरिंग केंद्र के अनुसार 533 जंतु जातियों (अधिकांश कशेरूक) एवं 384 पादप जातियों (अधिकांश पुष्पी पादप) का पिछले 400 वर्षो में विलोपन हुआ है। द्वीप समूहों पर विलोपन दर अधिक है। पूर्व विलोपन की दर की तुलना में विलोपन की वर्तमान दर 1,000 से 10,000 गुना अधिक है। जातियों के वर्तमान ह्रास के बारे में कुछ अनुमान निम्न हैं :

(i) 3,00,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले उष्णकटिबंधीय वनों में दस उच्च विविधता वाले स्थानों से भविष्य में लगभग 17,000 स्थानिक विशेष क्षेत्रीय पादप जातियां एवं 3,50,000 स्थानिक जंतु जातियों का ह्रास हो सकता है।

(ii) उष्णकटिबंधीय वनों से 14,000–40,000 जातियां प्रतिवर्ष की दर से अदृश्य हो रही हैं (2–5 जाति प्रति घंटा)।

(iii) यदि विलोपन की वर्तमान दर चलती रहे तो आगामी 100 वर्षो में पृथ्वी से 50 प्रतिशत जातियां कम हो सकती हैं। अर्थात् लगभग 20,000 से 50,000 जातियां प्रति वर्ष।

विलोपन के प्रति सुग्राहिता (Susceptibility to Extinction) : विलोपन के प्रति विशेष रूप से सुग्राही जातियों के लक्षण हैं :

- विशालकाय शरीर (बंगाल बाघ, सिंह एवं हाथी),
- छोटा समष्टि अमाप एवं कम प्रजनन दर (नीली व्हेल एवं विशाल पांडा),
- खाद्य कड़ी में उच्च पोषण स्तर पर भोजन (बंगाल बाघ एवं गंजी चील),

- स्थिर प्रजनन पथ एवं आवास (नीली व्हेल एवं हूपंग सारस) एवं
- वितरण की असमानता एवं संकीर्ण परिसर (वुडलैंड कैरिवा, अनेक द्वीपीय जातियां)

आई.यू.सी.एन. की खतरनाक सूची (The IUCN Red List Categories) :

आई.यू.सी.एन. लाल सूची एक ऐसे वर्गो की सूची है। जो विलुप्त होने के कगार पर है। लाल सूची के निम्नलिखित लाभ हैं :

(i) संकटग्रस्त जैव विविधता के महत्व के विषय में जागरूकता उत्पन्न करना।

(ii) संकटापन्न प्रजातियों की पहचान करना व उनको अभिलिखित करना।

(iii) जैव विविधता के ह्रास की लिखित सूची तैयार करना।

(iv) स्थानीय स्तर पर संरक्षण की प्राथमिकताओं की पहचान करना तथा संरक्षण कार्यो को निर्देशित करना।

आई.यू.सी.एन. की लाल सूची का वैश्विक रूप से प्रयोग सरकारी, गैर सरकारी एवं अन्य संगठनों द्वारा जैव प्रजातियों की स्थिति आंकलन हेतु किया जाता है। यह लाल सूची आई.यू.सी.एन. ग्लोबल स्पीशीज प्रोग्राम और स्पीशीज सरवाईवल कमीशन द्वारा जारी एवं नियंत्रित की जाती हैं। लाल सूची की अवधारणा सर्वप्रथम 1963 में आई. यू.सी.एन. द्वारा परिकल्पित की गई थी एवं तब से सूची वैश्विक स्तर पर जैव प्रजातियों के संरक्षण के स्तर को चिन्हांकित करती है।

आईयूसीएन का चिन्हांकन –

1. विलुप्त प्रजातियां (Extinct - Ex)
2. जंगली विलुप्त प्रजातियां (Extinct in wild - EW)
3. गंभीर रूप से संकटापन्न (Critically Endangered - CR)
4. संकटापन्न (Endangered - EN)
5. नाजुक (Vulnerable - VU)
6. खतरे के समीप (Near threatened - NT)
7. खतरे के समीप नहीं (Least Concern - LC)

IUCN द्वारा जुलाई 2013 की स्थिति में भारत में जंतु एवं पादप प्रजातियों की श्रेणीवार वस्तुस्थिति

IUCN द्वारा दी गई श्रेणी	जंतु प्रजातियों की संख्या	प्रजातियों की संख्या
Extinct	01	06
Extinct in the wild	01	02
Critically Endangered	73	60
Endangered	198	149
Vulnerable	375	117
Near Threatened	322	39
Lower Risk/near threatened	730	59
Least Concern	2980	785

1988 में पहली बार सभी पक्षी प्रजातियों का मूल्यांकन किया गया है और 1996 में पहली बार विश्व के सभी स्तनधारी जन्तुओं का आंकलन उनकी वास्तविक स्थिति जानने के लिए किया गया। 1996 की सूची में 5205 प्रजातियों का मूल्यांकन किया गया था जिसमें से स्तनधारी जंतुओं में से 25 प्रतिशत जंतु एवं पक्षियों में से 11 प्रतिशत पक्षी संकट में पाए गए। 2011 में जारी लाल सूची में 61000 से अधिक जैव प्रजातियां शामिल थी और इसमें पक्षी एवं स्तनधारियों के अलावा अन्य श्रेणी के जंतुओं को भी मूल्यांकित किया गया।

आई.यू.सी.एन. लाल सूची निम्न तीन क्षेत्रों में प्रमुख रूप से सहायक है –

1. जैव संरक्षण हेतु नियोजन में (In Planning)
2. जैव संरक्षण हेतु निर्णय लेने में (In Decision making)
3. जैव संरक्षण की निगरानी में (In Monitoring)

आई.यू.सी.एन. लाल सूची की जानकारी से लाभ प्राप्त करने वाले संस्थान –

1. सरकारी संस्थान
2. गैर सरकारी संस्थान
3. प्राकृतिक संसाधन नियोजक
4. शैक्षणिक संस्थान
5. हर व्यक्ति जो पर्यावरण संरक्षण की सोच रखता हो।

2012 की स्थिति में इंटरनेशनल यूनियन फार कन्जरवेशन आफ नेचर द्वारा जारी संकटापन्न प्रजातियों (Treatened Species) की लाल सूची (Red list) में भारत की 132 पादप एवं जंतु प्रजातियों को सर्वाधिक संकटापन्न घोषित किया था। भारत में पौधों की 60 प्रजातियों को सर्वाधिक संकटापन्न एवं 149 प्रजातियों को खतरे

में (Endangered) घोषित किया गया था।

गंभीर रूप से लुप्तप्राय (Critically Endangered) प्रजातियों की सूची में उभयचरों की 18 प्रजातियां, मछलियों की 14 प्रजातियां स्तनधारियों की 10 प्रजातियां एवं पक्षियों की 15 प्रजातियां शामिल की गई थी। प्न्छ द्वारा 310 प्रजातियों को लुप्तप्राय घोषित किया गया था। जिसमें 69 मछलियां,38 स्तनी जंतु और 32 उभयचर प्राणी शामिल थी।

आई.यू.सी.एन. जो अब विश्व संरक्षण संघ के नाम से जाना जाता है, की लाल सूची प्रणाली के अनुसार जातियों की आठ श्रेणियां हैंः विलुप्त, वन्य रूप में विलुप्त, गंभीर रूप की संकटापन्न, नष्ट होने योग्य, नाजुक, कम जोखिम, अपूर्ण आंकड़ों एवं मूल्यांकित नहीं।

प्रजातियां जिनकी विश्व में संख्या अल्प है और जो वर्तमान में संकटापन्न या संकटग्रस्त नहीं हैं लेकिन उनके ऐसा होने का खतरा है, विरल कहलाते हैं। ये स्पीसीज सामान्यतः सीमित भौगोलिक क्षेत्रों या आवासों में स्थापित होते हैं या एक अधिक विस्तृत विस्तार में यहां वहां बिखरे होते हैं।

आई.यू.सी.एन. द्वारा संकटापन्न जैव प्रजातियों की सूची में भारत की स्थिति
(8.7.13 की स्थिति में)

स्तनी (Mammals)	95
पक्षी (Birds)	80
सरीसृप (Reptiles)	50
उभरचर (Amphibians)	74
मछली (Fishes)	213
सीप (Molluscs)	6
अन्य अकशेरूकी (Other Invertibrates)	128
पादप (Plants)	326
कुल (Total)	972

स्रोत : www.iucnredlist.org, Date : 16.08.2013

जैव विविधता संरक्षण

पिछड़ी आर्थिक स्थिति, तीव्र जनसंख्या वृद्धि दर चारों तरफ प्राकृतिक आवास का नष्ट होना और संसाधनों के अनियोजित दोहन ने 89% चिड़ियों, 83% स्तनी

जंतुओ और 91% वनस्पति प्रजातियों के जीवन पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। संसाधनों में प्रदूषण, प्राकृतिक आवास के नष्ट होने और परिणामस्वरूप जैव विविधता ह्रास का एक प्रमुख कारण है। शायद प्रदूषण के परिणामस्वरूप उत्पन्न जलवायु परिवर्तन जैसे ग्रीन हाउस प्रभाव, समुद्री जल स्तर बढ़ना, वैश्विक तापमान में वृद्धि, बाढ़, सूखा इत्यादि जैवविविधता ह्रास के प्रमुख कारण रहे हैं। विश्व के 13 प्रमुख बायोम में संरक्षण की अपेक्षित स्थिति बहुत संतोषप्रद नहीं है।

भारत जैव–विविधता संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेशन का पक्षकार देश मई, 1994 में बना। कन्वेंशन के तीन प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- जैव विविधता का संरक्षण
- जैव विविधता के घटकों का सतत् उपयोग, तथा,
- आनुवंशिक संसाधनों के उपयोग से उत्पन्न लाभों में उचित एवं बराबर की हिस्सेदारी।

जैव–विविधता के संरक्षण से संबंधित मामलों का कार्य देखने वाली विभिन्न एजेंसियों में समन्वय सुनिश्चित करने एवं पुनरीक्षा, मानीटरिंग करने तथा इसके लिए पर्याप्त नीति दस्तावेज तैयार करने के लिए जैव–विविधता संरक्षण स्कीम 1991–92 के दौरान शुरू की गई थी। एवं वर्ष 1999–2000 के दौरान पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार द्वारा निम्नलिखित गतिविधियां शुरू की गई :

राष्ट्रीय कार्य योजना – जैव विविधता एक बहु–विषयक विषय है जिसके अन्तर्गत विविध क्षेत्रीय गतिविधियां एवं कार्यवाही आती हैं। इस हेतु स्टेकहोल्डरों से एक परामर्शी प्रक्रिया अपनाते हुए जैव– विविधता पर राष्ट्रीय नीति और कार्य नीति का एक प्रारूप कार्य नीतियों, अन्तरालों एवं संरक्षण, सतत उपयोग तथा जैव–विविधता में वास्तविक एवं संभावित मूल्य प्राप्ति के रूप में एक सूक्ष्म–स्तरीय विवरण तैयार किया गया है। संरक्षण तथा कन्वेंशन के उपाबंधों का विश्लेषण करने की आवश्यकता पर जोर देते हुए इस प्रारूप में विभिन्न विषयों के मुख्य लक्ष्यों, थ्रस्ट क्षेत्रों एवं कार्यवाही बिन्दुओं की पहचान की गई है।

संरक्षण की आवश्यकता पर जोर देते हुए, नीति में मुख्य लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं और जैव–विविधता के संरक्षण के लिए कार्यवाही हेतु थ्रस्ट क्षेत्रों का पता लगाया गया हैं। इस हेतु निर्धारित लक्ष्यों में निम्नलिखित है –

- जैव विविधता सरोकारों को क्षेत्रीय कार्यक्रमों और नीतियों में शामिल करना।
- जैव–विविधता के संरक्षण और सतत उपयोग में सभी स्टेकहोल्डरों की

प्रतिभागिता सुनिश्चित करना।

● आवश्यक अनुसंधान एवं विकास नीतियों एवं जैव–प्रौद्योगिकी विकास के उपभोज्य एवं गैर–उपभोज्य मूल्य प्राप्त करना।

● एक उद्‌गम होने तथा यहां के लोग जैव–विविधता से संबंधित जानकारी रखने और उसके कारण भारत के हितों की प्राप्ति, तथा, थ्रस्ट क्षेत्रों में संरक्षण, सतत उपयोग, परि–प्रणाली सुरक्षा सभी स्तरों पर संस्थागत क्षमता निर्माण तथा नेटवर्किंग, कानूनी ढांचा तथा कार्यान्वयन में सभी स्टेकहोल्डरों की प्रतिभागिता में अंतराल का पता लगाना शामिल हैं।

● ढांचा प्रलेख, सूक्ष्म एवं क्षेत्रीय स्तरों पर विस्तृत कार्यवाही विकसित करने हेतु आधार प्रदान करेगा, कृषि, जैव प्रौद्योगिकी विभाग, महासागर विकास विभाग, डीएसआईआर आदि के सदस्यों वाली एक अन्तर–मंत्रालय पर्यवेक्षण समिति कार्य योजनाओं की जांच और कार्यान्वयन को मानीटर करेगी।

● राष्ट्रीय स्तर पर निम्नलिखित ग्यारह विषय क्षेत्रों के लिए वर्तमान प्रयासों अन्तराल एवं कार्यवाही बिन्दुओं की पहचान की गई है'–

- ♦ कानूनी एवं नीतिगत ढांचा;
- ♦ जैव विविधता का संरक्षण एवं राष्ट्रीय आंकड़ा आधार;
- ♦ स्वस्थाने संरक्षण;
- ♦ स्थान बाह्य संरक्षण;
- ♦ सतत उपयोग;
- ♦ स्वदेशी ज्ञान पद्धतियां; नवपरिवर्तन एवं पद्धतियां एवं लाभ में हिस्सेदारी;
- ♦ जन प्रतिभागिता;
- ♦ संस्थागत ढांचा एवं क्षमता निर्माण;
- ♦ शिक्षा, प्रशिक्षण एवं विस्तार;
- ♦ अनुसंधान एवं विकास गतिविधियां; तथा
- ♦ अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग।

जैविक संसाधनों और स्वदेशी ज्ञान में भारत की समृद्धता सर्वविदित है। एक प्रमुख चुनौती एक नीति अपनाने की है जिससे कन्वेंशन में वर्णित समान लाभों में हिस्सेदारी के उद्देश्यों को समझने में सहायता मिलेगी। इस दिशा में जैव विविधता कानून की एक रूपरेखा तैयार की गई है जिसका उद्देश्य जैविक संसाधनों की प्राप्ति को विनियमित करना तथा इस प्रकार की प्राप्ति करने के लिए शर्तें लगाना जिससे

प्राप्त संसाधनों के लिए लाभ में समान हिस्सेदारी सुनिश्चित हो सके। यह एक परामर्शक प्रक्रिया के द्वारा किया गया है जिसमें स्टेकहोल्डरों, स्थानीय लोगों, उद्योगों, स्वास्थ्य देख–रेख की स्वदेशी पद्धतियों एवं औषधि के व्यवसायियों, तकनीकी एवं शैक्षणिक संस्थाओं, राज्य सरकारों, स्व–शासन संस्थाओं, व्यापार एवं कारोबारी शामिल थे।

जैव विविधता का संरक्षण प्रभावी रूप से करने के लिए परम्परागत और आधुनिक संरक्षण तकनीकों का न्यायसंगत समन्वय आवश्यक है। इसके लिए नीति निर्धारकों, पर्यावरणविदों वैज्ञानिकों के साथ–साथ स्थानीय समुदायों की वास्तविक सहभागिता भी आवश्यक है। जैव विविधता का लेखा रखना भी एक आवश्यक पहलू है जो स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तरों पर किया जाना चाहिए। उपरोक्त लेखा को तैयार करने और जैव विविधता संरक्षण कार्यक्रमों में स्थानीय जन समुदाय की भागीदारी अनिवार्य है। इस प्रकार तैयार किया गया लेखा तहसील/तालुका से एकत्र कर उसे जिला राज्य, राष्ट्र और विश्व स्तर तक लाना होगा। इसके उपरान्त यह जैव विविधता सूचना तंत्र की जानकारी का एक प्रमुख स्त्रोत बनेगा। तैयार होने के उपरान्त यह लेखा किसी क्षेत्र विशेष में विकास की योजना बनाने और प्राकृतिक प्रभावों के अध्ययन में तो सहायक होगा ही, आवासों के निर्माण, परितंत्र की पुर्नस्थापना और जैविक संसाधनों के जैव मूल्यांकन में भी सहायक होगा।

जैव विविधता शब्द केवल जीव प्रजातियों को ही अपने में समाहित किए हुए नहीं है। जीवों के आवास, परितंत्र और हर वो चीज जो जीवों को प्रभावित करती है, जैव विविधता के दायरे में है। जैव विविधता संरक्षण से अभिप्राय है जैव विविधता के घटकों को उनके प्राकृतिक आवासों में या उनके प्राकृतिक आवास के बाहर संरक्षण प्रदान करना। इसी आधार पर जैव विविधता सम्मेलन, 1992 ने जैव विविधता संरक्षण के दो उपाय बताए है –

● **In-Situ Conservation** –इसका अभिप्राय है जैव विविधता के संघटकों को उनके प्राकृतिक आवास में ही संरक्षित करना।

● **Ex-situ Conservation** – इसका अभिप्राय है जैव विविधता के संघटकों का उनके प्राकृतिक आवास के बाहर संरक्षण।

संरक्षण के स्व–स्थाने उपाय (in- situ Conservation Strategies) :

स्थान पर ही उपायों का जोर परितंत्रों की सुरक्षा है जिसमें जीवों, जातियों,

समष्टियों जैविक समुदायों एवं जैव भू–रासायनिक प्रक्रियाएं समाहित होती हैं। इनमें प्रतिनिधि परितंत्रों के सुरक्षित क्षेत्र के विभिन्न माध्यमों से सुरक्षा एवं आवासीय विखंडों को बनाए रखना सम्मिलित हैं।

जीवों को उनके प्राकृतिक आवास में ही संरक्षित करना जैव संरक्षण की एक प्रभावी तकनीक रही हैं जिसमें मानवीय गतिविधियों से प्रभावित और अप्रभावित दोनों ही प्रकार के जीवों और आवासों को संरक्षित किया जाता है परन्तु इस संरक्षण में स्थानीय लोगों की सहभागिता नहीं होती हैं जिससे संरक्षण योजना की सफलता और विकास के लिए काफी जद्दोजहद होती है। इस पारम्परिक संरक्षण के तरीके को ''जैव क्षेत्रों की संकल्पना'' से बदला जा सकता है। जैव क्षेत्र वे क्षेत्र है जिनमें जैव विविधता की अपार संभावनाएं है और उनके प्रबंधन में जन भागीदारी आवश्यक रहती है। इन सीटू कन्जरवेशन (In situ conservation) तकनीक में जैव समुदाय को उनके प्राकृतिक आवास में चाहे वह जंगल हो या पारम्परिक कृषि तंत्र में सुरक्षित रखा जाता है। इस हेतु राष्ट्रीय प्रतिबंधित क्षेत्र विकसित किए गए हैं।

प्रतिबंधित क्षेत्र : ये स्थल एवं समुद्र के ऐसे क्षेत्र हैं जो जैविक विविधता की तथा प्राकृतिक एवं संबद्ध सांस्कृतिक स्त्रोतों की सुरक्षा एवं निर्वहन के लिए विशेष रूप से समर्पित हैं और जिनका प्रबंधन कानूनी या अन्य प्रभावी माध्यमों से किया जाता है। सुरक्षित क्षेत्रों में उदाहरण राष्ट्रीय उद्यान एवं वन्य जीवाश्रय स्थल (Sanctuaries) हैं। सबसे पहले राष्ट्रीय उद्यान अमेरिका में यैलोस्टोन एवं सिडनी (ऑस्ट्रेलिया) के समीप रॉयल हैं जिन्हें इनको दृश्य सौंदर्य एवं मनोरंजन मूल्य के लिए चुना गया। उत्तरांचल स्थित जिम कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान भारत में स्थापित पहला राष्ट्रीय उद्यान है। संपूर्ण विश्व में ऐसे अनेक क्षेत्र अब दुर्लभ जातियों एवं उजाड़ स्थानों को सुरक्षित रख रहे हैं। विश्व संरक्षण बोधन केंद्र ने पूरे विश्व में 37,000 सुरक्षित क्षेत्रों की पहचान की है। जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तावित 10 प्रतिशत के मानक में सापेक्ष देश में 4.7 प्रतिशत स्थल में फैले हैं।

प्रतिबंधित क्षेत्रों के कुछ मुख्य लाभ है :

(i) सभी मूल निवासी जातियों एवं उपजातियों की जीवन क्षय समष्टियों को संभालना,

(ii) समुदायों एवं आवासों की संख्या एवं वितरण को संभालना, एवं सभी वर्तमान जातियों की आनुवांशिक विविधता को रक्षित रखना,

(iii) विदेशी जातियों की मानव जनित पुनः स्थापना को रोकना एवं

(iv) पर्यावरणीय परिवर्तनों की अनुक्रिया में जातियों एवं आवासों के स्थान बदलने को संभव बनाना।

जंगली जैव प्रजातियों को उनके प्राकृतिक आवास में संरक्षित रखने के लिए जैव संरक्षित क्षेत्र बनाए गए है इन्हें प्रतिबंधित क्षेत्र (Protected Areas) भी कहा जाता हैं। आज के समय में प्रतिबंधित क्षेत्रों के रूप में राष्ट्रीय उद्यान (National Park), अभ्यारण्य (Sanctuary) एवं जैव संरक्षित क्षेत्र (Biosphere Reserve) आते हैं। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार की रिपोर्ट 2010–2011 के अनुसार देश में कुल 102 राष्ट्रीय उद्यान, 15 वन्यजीव अभ्यारण्य 47 जैव संरक्षी क्षेत्र, 4 कम्युनिटी रिजर्व, 40 बाघ रिजर्व एवं 28 हाथी रिजर्व हैं।

1. राष्ट्रीय उद्यान एवं अभ्यारण्य – विभिन्न जीवों या विशिष्ट रूप से किसी जीव विशेष के संरक्षण के लिए बनाए गए राष्ट्रीय उद्यान और अभ्यारण्य मूल रूप से जीवों के संरक्षण के लिए ही बनाए गए हैं। परन्तु इसके साथ ही इनका उपयोग जैव जनन को बढ़ाने, मनोरंजानात्मक एवं शैक्षिक रूपों में भी किया जाता हैं। राष्ट्रीय उद्यान में वनों का प्राकृतिक स्वरूप संरक्षित रखा जाता है। इसमें न तो वनोपज का दोहन हो सकता है और न ही पशुओं की चराई की जाती है। इस बात का भी विशेष ध्यान रखा जाता है कि उनकी स्वाधीनता और स्वच्छंदता में कोई बाधा न हो।

अभ्यारण्य वन्य जीवों के लिए सुरक्षित क्षेत्र हैं। किन्तु इनमें नियंत्रित चराई की अनुमति होती हैं। वन्य पशुओं के जीवन में हस्तक्षेप किए बिना वनोपज का दोहन भी किया जा सकता हैं जो गांव पहले से अभ्यारण्य में बसा है उसे हटाया नहीं जाता किन्तु गांव वाले वन्य पशुओं के साथ छेड़–छाड़ नहीं कर सकते तथा उनका शिकार वर्जित होता है।

राष्ट्रीय उद्यान और अभ्यारण्य में अंतर यह हैं कि राष्ट्रीय उद्यान में मानवीय गतिविधि पूर्णतया प्रतिबंधित है जबकि अभ्यारण्य में कुछ गतिविधियों की अनुमति होती है। जैव संरक्षी क्षेत्रों में सीमित आर्थिक क्रियाएं (रेत एवं पत्थर माइनिंग) की अनुमति होती हैं।

2. जैवमंडल निंचय या जैवमंडल रिजर्व : जैवमंडल स्थल एवं समुद्र तटीय पर्यावरणों के ऐसे रक्षित क्षेत्र हैं जहां लोग प्रणाली में अभिन्न संघटक होते हैं। ये प्राकृतिक जीवोम के प्रतिनिधि उदाहरण हैं, जिनमें अनुपम जैविक समुदाय होते हैं। जैवमंडल रिजर्व की संकल्पना यूनोस्को (UNESCO) की मानव एवं जैवमंडल परियोजना 8 जो परितंत्रों एवं उनके उपस्थित आनुवंशिक संसाधानों के संरक्षण सें

संबंधित थी, के एक भाग के रूप में 1975 में चालू की गई। इन स्थलों में संरक्षण, शोध कार्य, शिक्षा एवं स्थानीय भागीदारी के द्वारा पेड़–पौधों एवं जंतुओं, मानव द्वारा रूपांतरित पारिस्थितिक तंत्र आदि का संरक्षण किया जाता है। इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं –

(1) आनुवांशिक विविधता का संरक्षण
(2) जैविक संसाधनों का उचित प्रबंधन
(3) आधारीय एवं व्यवहारिक अनुसंधान को प्रोत्साहन देना
(4) अंतर्राष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि
(5) शिक्षा एवं प्रशिक्षण की संभावनाओं की खोज
(6) पारिस्थितिक तंत्र के प्रतिनिधि नमूनों की जानकारी प्राप्त करना।

एक जैवमंडल निंचय में क्रोड, बफर एवं पारगमन क्षेत्र होते है।

प्राकृतिक या क्रोड क्षेत्र में एक आविक्षब्ध एवं विधिक रूप से रक्षित पारितंत्र होता है। **बफर क्षेत्र** क्रोड क्षेत्र को घेरे रहता है। यह विधिवत रूप से रक्षित होता है, लेकिन क्रोड क्षेत्र के सापेक्ष इसका प्रबंधन संसाधन उपयोग की नीतियों (Strategies) की वृहत् विभिन्नता को समाहित करने के लिए किया जाता है। इसमें शोध एवं शैक्षणिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जाता है। **पारगमन क्षेत्र** (Transition Zone) जैवमंडल रिजर्व का बाह्यतम भाग है। यह रिजर्व के प्रबंधन एवं स्थानीय लोगों के बीच एक निर्वहनीय सामाजिक आर्थिक विकास के उच्चतम के लिए सक्रिय सहयोग का एक क्षेत्र है। इस क्षेत्र में आबादी खेतीबाड़ी वानिकी एवं मनोरंजन और अन्य आर्थिक उपयोग जैसी गतिविधियां, संरक्षण के लक्ष्यों एवं जैवमंडल के उद्देश्यों के ताल–मेल में चलती रहती हैं। **जैवमंडल निंचय या जैवमंडल रिजर्व** के प्रमुख कार्य हैं:

(i) संरक्षण : परितंत्रों, जातियों एवं आनुवंशिक स्त्रोतों के संरक्षण को सुनिश्चित करना। यह संसाधनों के पारंपरिक उपयोग को भी प्रोत्साहित करता है।

(ii) विकास : आर्थिक विकास जो सांस्कृतिक, सामाजिक एवं पारिस्थितिकीय दृष्टि से निर्वहनीय हो का उन्नयन करना।

(iii) वैज्ञानिक शोधक मॉनीटरिंग एवं शिक्षा : इसका उद्देश्य शोध, बोंधन शिक्षा एवं संरक्षण तथा विकास के स्थानीय राष्ट्रीय एवं वैश्विक मुद्दों से संबंधित सूचना का आदान प्रदान हैं।

जैव–विविधता में समृद्ध एवं अद्वितीय और प्रतिनिधि परिप्रणालियों वाले क्षेत्रों की

पहचान की जाती है और उन्हें जीवमंडल रिजर्वों के रूप में नामोदिष्ट किया जाता है। इसका लक्ष्य प्रतिनिधित्व भू–दृश्यों और भारत की विविध जैविक विविधता का संरक्षण करना हैं जिनके संबंध में अनुमान है कि यहां 47,000 से अधिक पौधों की प्रजातियां और 81,000 जन्तु प्रजातियां है जो क्रमशः विश्व की वनस्पतिजात का लगभग 7% और विश्व की प्राणिजात का 6.5% हैं। जीवमंडल रिजर्वो का उद्देश्य न केवल प्रतिनिधि परिप्रणालियों को सुरक्षित रखना है बल्कि ये विकास के वैकल्पिक माडल तैयार करने में प्रयोगशाला के रूप में भी कार्य करते हैं।

2. कृषकों पर आधारित संरक्षण जिसके अर्न्तगत वे परम्परागत फसलों को स्थापित रखने के लिए और जंतुओं की स्थानीय प्रजातियों को स्थानीय जनन द्वारा बढ़ाने की, और सुरक्षित रखने के सफल प्रयास जारी रखते है। प्रत्येक फसल को काटकर उसमें से कुछ मात्रा में बीजों को अगली फसल के लिए सुरक्षित रखा जाता है।

3. बाघ परियोजना (Tiger Project) – केन्द्र प्रायोजित बाघ परियोजना 1 अप्रैल 1973 से निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शुरू की गई थी। हमारे देश में आरंभ में नौ बाघ रिजर्व बनाए गए थे इस समय देश के 14 राज्यों के 33875 वर्ग किमी क्षेत्र में 25 बाघ रिजर्व है। भारतीय वन्य जीव बोर्ड के विशेष टास्क फोर्स की सिफारिशों के अनुसार निम्नलिखित उद्देश्य प्राप्त करने के लिए ''बाघ परियोजना'' शुरू की गई थी :–

- वैज्ञानिक, आर्थिक, सौंदर्यपरक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिकीय मूल्यों के लिए भारत के बाघों की व्यवहार्य संख्या बनाए रखना सुनिश्चित करना।
- लोगों के लाभ, शिक्षा और आनन्द के लिए एक राष्ट्रीय धरोहर के रूप में ऐसे जैविक महत्व के क्षेत्रों का सदैव परिरक्षण करना।

4. पवित्र झीलें व वन : भारत तथा कुछ अन्य एशियाई देशों में जैव विविधता के संरक्षण की सुरक्षा के लिए एक पारंपरिक नीति अपनाई जाती रही है। ये विभिन्न आमतापों के वन खंड हैं जो जनजातीय समुदायों द्वारा धार्मिक पवित्रता प्रदान किए जाने से सुरक्षित हैं। **पवित्र वन** सबसे अधिक निर्विघ्न वन हैं जहां मानव का कोई प्रभाव नहीं हैं। ये दीपों का प्रतिनिधित्व करते हैं और सभी प्रकार के विघ्नों से मुक्त हैं। यद्यपि ये बहुधा अत्यधिक निम्नीकश्त भू–दृश्य द्वारा घिरे होते हैं। भारत में पवित्र वन कई भागों में स्थित है, उदाहरणार्थ कर्नाटक, महाराष्ट्र, केरल, मेघालय आदि और कई भाग दुर्लभ, संकटापन्न एवं स्थानिक वर्गकों की शरणस्थली के रूप

में कार्यरत हैं। इसी प्रकार सिक्किम की केचियोपालरी झील पवित्र मानी जाती है एवं उसका संरक्षण जनता द्वारा किया जाता है।

देश में संरक्षी क्षेत्रों की वर्तमान स्थिति

स्रोत : पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार वार्षिक रिपोर्ट 2011

1. कुल जैव संरक्षी क्षेत्रों की संख्या – 668
2. संरक्षी क्षेत्रों का कुल क्षेत्रफल – 1,161 221.5 वर्ग किमी. (कुल भू भाग का 4.9 प्रतिशत)
3. कुल राष्ट्रीय उद्यान – 102
4. कुल वन्य जीव अभ्यारण्य – 515
5. कुल संरक्षी क्षेत्र – 47
6. कुल बाघ रिजर्व – 40
7. कुल हाथी रिजर्व – 28

संरक्षण के पर – स्थाने उपाय (ex-situ conservation strategies)

इसमें वनस्पतियों उद्यान, चिड़ियाघर, संरक्षण स्थल एवं जीन, परागकण, बीज, पौधे, ऊतक संवर्धन एवं डी.एन.ए. बैंक सम्मिलित हैं। बीज, जीन बैंक, वन्य एवं खेतीय पौधों के जर्मप्लाज्म को कम तापमान तथा षीत प्रकोष्टों में संग्रहित करने का सरलतम उपाय हैं। आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण सामान्य वृद्धि दशाओं में क्षेत्रीय जीन बैंकों में किया जाता है। अलिंगी प्रजनन से उत्पन्न की गई जातियों एवं वृक्षों के लिए क्षेत्रीय जीन बैंक विशेष रूप से प्रयोग किए जाते हैं। अनुवांशिकीय विविधताओं को प्राकृतिक आवास के बाहर संरक्षित रखने का कार्य विभिन्न प्रकार से किया जाता है –

(1) बीज/भ्रूण संग्रहण 'जीन बैंक' – बीज, बीजाणु, कंद, ऊतक संवर्धन आदि विभिन्न प्रकार की जातियों–प्रजातियों के आनुवांशिक गुणों का संचार कर प्रतिकूल परिस्थितियों में संरक्षण करते हैं तथा अनुकूल परिस्थितियों में अंकुरित होकर वंश वृद्धि करते हैं। इस तकनीकि में जैव प्रजातियों के व्यक्तिगत और सामुदायिक स्तर पर बीज एवं भ्रूण के नमूने लेकर उन्हें जीन बैंक में स्थानान्तरित किया जाता है जहां उन्हें षून्य से कम तापमान पर सुरक्षित रखा जाता हैं। यह तकनीकि प्रभावी, हैं और अधिक समय के लिए संरक्षित करने के लिए भी उपयोगी हैं। विभिन्न प्रकार की

वनस्पतियों के आनुवांशिक गुणों की रक्षा के लिए बड़े पैमाने पर बीज, परागकण, कंद, विभाजनषील ऊतक आदि का षीत संग्रह किया जा रहा है। आनुवांशिक सामग्री को संग्रहित करने की तकनीक को 'एक्स सीटू' संग्रह को कहते हैं। भारत में 'राष्ट्रीय पौध आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो' के अन्तर्गत जीन बैंक की स्थापना की गई है। वैज्ञानिकों का मानना है कि प्रलय जैसी संहारक घटना में मानव सभ्यता को पुनः विकसित करने के लिए आनुवांशिक सामग्री ही एकमात्र विकल्प है।

(2) वनस्पति/जंतु उद्यानों की स्थापना – इन उद्यानों में जीवों को एकत्र कर उनके प्राकृतिक आवास से दूर वृद्धि एवं जनन के लिए अवसर उपलब्ध कराए जाते हैं। जैविक विविधता का वानस्पतिक उद्यानो में संरक्षण पहले से प्रचलन में है। विश्व की अनेकों जैव प्रजातियां अब बीज बैंक, ऊतक संवर्धन सुविधाएं एवं अन्य स्थान से परे तकनीक हैं। इसी प्रकार पूरे विष्व में 800 से अधिक व्यावसायिक रूप से प्रबंधित चिड़ियाघर हैं जिनमें स्तनधारियों, पक्षियों, सरीसृपों एवं उभयचरों की लगभग 3000 जातियां उपलब्ध हैं। इनमें से अधिकांश चिड़ियाघरों में अति संरक्षित प्रजनन सुविधाएं हैं।

संरक्षित क्षेत्रों का राज्यवार विवरण

क्र.	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	राष्ट्रीय उद्यान	अभ्यारण्य	संरक्षी क्षेत्र	सामाजिक संरक्षी क्षेत्र
1.	आंध्र प्रदेश	6	21	0	0
2.	अरुणाचल प्रदेश	2	11	0	0
3.	असम	5	18	0	0
4.	बिहार	1	12	0	0
5.	छत्तीसगढ़	3	11	0	0
6.	गोवा	1	6	0	0
7.	गुजरात	4	23	1	0
8.	हरियाणा	2	8	2	0
9.	हिमाचल प्रदेश	5	32	0	0
10.	जम्मू एवं कश्मीर	4	15	34	0
11.	झारखण्ड	1	11	0	0
12.	कर्नाटक	5	22	2	1
13.	केरल	6	16	0	1

14.	मध्य प्रदेश	9	25	0	0
15.	महाराष्ट्र	6	35	1	0
16.	मणीपुर	1	1	0	0
17.	मेघालय	2	3	0	0
18.	मिजोरम	2	8	0	0
19.	नागालैण्ड	1	3	0	0
20.	उड़ीसा	2	18	0	0
21.	पंजाब	0	12	1	2
22.	राजीस्थान	5	25	3	0
23.	सिक्किम	1	7	0	0
24.	तमिलनाडू	5	21	1	0
25.	त्रिपुरा	2	4	0	0
26.	उत्तर प्रदेश	1	23	0	0
27.	उतरांचल	6	6	2	0
28.	पश्चिम बंगाल	5	15	0	0
29.	अंडमान एवं निकोबार	9	96	0	0
30.	छत्तीसगढ़	0	2	0	0
31.	दादर एवं नागर हवेली	0	1	0	0
32.	लक्ष्यद्वीप	0	1	0	0
33.	दमन एवं दीप	0	1	0	0
34.	दिल्ली	0	1	0	0
35.	पोंडीचेरी	0	1	0	0
	जोड	**102**	**515**	**47**	**4**

स्रोत : पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार वार्षिक रिपोर्ट 2011

शस्यपादपों के संबंधित वनीय पादप के संरक्षण और शस्य उपजातियों अथवा सूक्ष्मजीवों के संवर्धन, संकरणकर्ताओं एवं आनुवंषिक अवयंत्रकों को आनुवंशिक पदार्थ का त्वरित स्त्रोत प्रदान करते हैं। स्तनधारियों, पक्षियों, सरीसृपों एवं उभयचरों की 3,000 से अधिक जातियां हैं। इनमें से अनेक के लिए चिड़ियाघरों में सुविकसित प्रजनन कार्यक्रम हैं। फसली पौधों के वन्य संबंधियों के संरक्षण एवं फसल की किस्मों या सूक्ष्मजीवों के संवर्धन का संरक्षण प्रजनकों एवं आनुवंशिक इंजीनियरों को

आनुवंशिक पदार्थ का एक सहज प्राप्य स्त्रोत प्रदान करता है। वानस्पतिक उद्यानों, वृक्षोद्ययानों, चिड़ियाघरों एवं जलजीन षालाओं में संरक्षित पादपों एवं जंतुओं का उपयोग निम्नीकृत भूभाग को सुधारने, पूर्व स्थिति में लाने, जाति को वन्य अवस्था में पुनः स्थापित करने एवं कम हो गई समष्टियों को पुनः संचित करने में किया जा सकता है।

(3) इनविट्रो संरक्षण – इस विधि में मुख्यतया वनस्पति प्रजातियों के ऊतक संर्वधन तैयार कर उन्हें क्रायोप्रिजरवेशन तकनीक द्वारा सुरक्षित रखा जाता है इस तकनीकि में ऊतक संर्वधन को -196^0C पर द्रवीय नाइट्रोजन में सुरक्षित रखा जाता है। द्रवीय नाइट्रोजन में -196^0C तापमान पर हिमांकमितीय संरक्षण कायिक जनन द्वारा उगाई गई फसलों, जैसे आलू के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। हिमांकमितीय संरक्षण पदार्थ का अत्यंत कम तापमान पर या तो अति तीव्र शीतीकरण (बीजों के संग्रह के लिए प्रयुक्त) या शनैः शनैः शीतीकरण एवं साथ ही कम तापमान पर शुष्कन (ऊतक संवर्धन में प्रयुक्त) है। अनेक अलिंगी प्रजनित फसलों जैसे आलू, केसावा, शंकरकंद, गन्ना, वनीला एवं केला के प्रयोगशालाओं में जर्मप्लाज्म बैंक हैं। इनकी सामग्री कम निर्वहन शीतकरण ईकाइयों में लंबे समय के लिए संग्रहित रखा जा सकता है।

यह समझना आवश्यक है कि इन सीटू कन्सरवेशन की नियोजित रूपरेखा और संरक्षण आवश्यक है क्योंकि ये अनुवांशिक पुर्नवियोजन (Genetic Recombinations) के श्रोत होते है साथ ही एक्स सीटू कन्सरवेशन भी महत्वपूर्ण है क्योंकि आनुवांशिक विभिन्नता को सीमित कारणों के लिए ही सुरक्षित रखा जा सकता है। कारण यह है कि जीन्स को अभिव्यक्त होने के लिए प्राकृतिक आवास की आवश्यकता पड़ती ही है। रियो डी जेनेरियो में 1992 में आयोजित जैव विविधता सम्मेलन ने जैव विविधिता एवं प्राकृतिक आवासों को संरक्षित करने की दिशा में एक बहुत अच्छे उत्प्रेरक का कार्य किया है। यह तथ्य उष्ण कटिबंधीय देशों के लिए अधिक प्रभावी है क्योंकि इन देशों में Temperate देशों की तुलना में जैव विविधता और प्राकृतिक आवास अधिक प्रभावित हुआ हैं।

जैव विविधता के तप्तस्थल (Hot Spot of Biodiversity) :

पृथ्वी के सभी भौगोलिक क्षेत्रों में जैव विविधता समान रूप से वितरित नहीं हैं। विश्व के कुछ निश्चित क्षेत्र, महाविविधता के क्षेत्र हैं। उदाहरण के लिए, भारत में, विश्व के कुल भू भाग का मात्र 2.4 प्रतिशत भाग है लेकिन वैश्विक विविधता में इसका

अंशदान 8 प्रतिशत जातियों का हैं। हाल के उष्णकटिबंधीय वनों ने अपनी अधिक जैवविविधता आवासों के द्रुत विनाश के कारण संपूर्ण विश्व का ध्यान आकर्षित किया है। पृथ्वी में मात्र 7 प्रतिशत भू–भाग में फैले इन वनों में विश्व के कुल जीवों की 70 प्रतिशत से अधिक जातियां हैं।

ब्रिटेन के परिस्थिति विज्ञानी नार्मन मायर्स ने 1988 में स्वस्थाने संरक्षण के लिए क्षेत्रों की प्राथमिकता नामित करने हेतु ताप्त स्थल की संकल्पना विकसित की। तप्त स्थल की समृद्धतम एवं सर्वाधिक संकटग्रस्त भंडार है। एक 'तप्त स्थल' का निर्धारण करने के लिए मूल कसौटी है :

(i) विशेष क्षेत्रियता/स्थानिकता (अन्यत्र कहीं नहीं पाई जाने वाली जाति की उपस्थिति), पादप स्थानिकता तप्तस्थल की प्राथमिक कसौटी है, क्योंकि पौधे जीवन के अन्य अधिकांश स्वरूपों को संभालते हैं।

(ii) संकट की मात्रा जिसे आवास के ह्रास के परिपेक्ष में मापा जाता है।

विश्व में जैव विविधता के संरक्षण के लिए स्थलीय तप्त स्थलों की पहचान की गई हैं। अब यह पृथ्वी के 1.4 प्रतिशत भूक्षेत्र को घेरे हुए हैं। इनमें से उष्णकटिबंधी वन 15 तप्त स्थलों में, भूमध्य सागरीय प्रकार के क्षेत्र 5 क्षेत्रों में, और 9 तप्तस्थल मुख्यतः अथवा मात्र प्राय द्वीपों से निर्मित हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि 16 तप्तस्थल उष्ण कटिबंधी क्षेत्रों में है और विश्व की लगभग 20 प्रतिशत जनसंख्या इनमें निवास करती हैं।

विश्व के इन 25 तप्त स्थलों में से दो (पश्चिमी घाट एवं पूर्वी हिमालय) भारत में पाए जाते हैं, और वह पड़ोसी देशों तक फैले हुए हैं। इन क्षेत्रों में पुष्पी पादपों, सरीसृपों, उभयचरों, अबाबील–पुच्छ तितलियों और कुछ स्तनपोशियों की बहुलता होती है तथा वे उच्च सीमा तक स्थानिक (म्दकमउपेउ) की स्थिति भी दर्शाते हैं।

पूर्वी हिमालयी तप्त स्थल का विस्तार उत्तरी–पूर्वी भारत से भूटान तक है। शीतोष्ण वन 1,780 से 3,500 मी. तक की ऊंचाइयों में पाए जाते हैं। कई गहरी (घनी) एवं अर्द्ध–वियोजित घाटियां भी इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। जोकि स्थानिक पादप जातियों में अपवादात्मक रूप से घनी होती हैं। विकास के सक्रिय रूप और पुष्पी पादपों की मंग्नोलिएसी (Magnoliaceae) एवं विंटरेसी (Winteraceae) और अब आदिम पौधे जैसे मेग्नोलिया (Magnolia) एवं बेटुला (Betula) पूर्वी हिमालय में पाए जाते हैं।

पूर्वी घाटी का क्षेत्र भारतीय प्रायद्वीप के पश्चिमी तट के समानांतर लगभग

1,6000 कि.मी., महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं केरल में पाया जाता है। निम्न ऊंचाई औसत समुद्री सतह से 500 मी. ऊपर पर वन अधिकांशतः सदाबहार हैं, जबकि 500–1,500 मी. ऊंचाई पर वन अधिकांशतः अर्द्धसदाबहार होते हैं। अगस्तमलाई पर्वत श्रृंखलाएं एवं शांतघाटी (Silent Valley) कई नवीन अमांबलम निंचय (New Amambalam Reserve), जैव विविधता के दो प्रमुख केंद्र हैं।

जैव विविधता संरक्षण के अंतर्राष्ट्रीय प्रयास (International Efforts for Conserving Biodiversity)

सन् 1992 में रियो डे जैनरों में संपन्न हुए पृथ्वी–शिखर सम्मेलन के पश्चात् एक समझौता (Convention) सामने आया था जिसे 29 दिसंबर 1993 से लागू किया गया है। जैव विविधता के समझौते के तीन मुख्य उद्देश्य हैं :

(i) जैव विविधता का संरक्षण।

(ii) जैव विविधता का संपोषण शील उपयोग

(iii) आनुवंशिक स्त्रोतों के उपयोग से उत्पन्न लाभों का न्यायसंगत एवं सामान वितरण।

विश्व संरक्षण संघ (The World Conservation Union) एवं प्रकृति का विश्व व्यापी कोश (World Wide Fund for Nature) विश्वभर में ऐसी परियोजनाओं को आश्रय प्रदान करते हैं, जो संरक्षण तथा जैव निचयों के परिवर्धन को अग्रेषित करते हैं।

भारत में जैव विविधता संरक्षण (Biodiversity Conservation in India)

भारतीय क्षेत्र ने विश्व जैव विविधता में महत्वपूर्ण योगदान किया है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारत 167 कृषि जातियों एवं सस्य पादपों के 320 वन्य संबंधियों का गृह है। साथ ही यह जंतु जातियों (जेबू, मिथुन, गुर्गी, जल अबाबील तथा ऊंट); सस्य पादपों (धान, गन्ना, केला, चाय एवं ज्वार–बाजरा); फल–प्रदायी पादप तथा सब्जियां (आम, कटहल, खीरा–सहवा जातियां,) खाद्य डायोस्कोरिया, अरबी और जमीकंद, मसाले (इलायची, कालीमिर्च, अदरक एवं हल्दी) एवं बांस, सरसो एवं सेमल की विविधता का केद्र है। भारत कुछ जंतुओं (घोड़ा बकरी, भेड़, दुधारू पशु, याक एवं गधे) और पादपों (तंबाकू, आलू एवं मक्का) के पालतूकरण का द्वितियक केंद्र भी है।

जैव विविधता का स्व–स्थानें (in situ) संरक्षण पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा

जैव निंचयों, राष्ट्रीय उद्यानों, वन्य जीव अभ्यारण्यों और अन्य सुरक्षित क्षेत्रों द्वारा किया जाता है। वन प्रबंधन तंत्रों में वन विभाग एवं स्थानीय समुदाय सम्मिलित होते हैं। इसके फलस्वरूप एक ओर तो जन–जातियों के लोग एवं स्थानीय समुदाय, दारू–इतर, वन उत्पादों (non-wood forest products) प्राप्त कर सकते हैं। साथ ही साथ वन स्त्रोतों के राष्ट्रीय ब्यूरो द्वारा पादपों एवं जंतुओं के जर्मप्लाज्म के एकत्रण एवं संरक्षण हेतु बीज जीन बैंको (seed gene banks) तथा मैदानी जीन बैंको (field gene banks) में पात्र संरक्षण से संबद्ध कई कार्यक्रम चलाए जा रहे हें। देश में स्थापित वानस्पतिक एवं जंतु उद्यानों और समस्त भारत के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में पादप एवं जंतु जातियों का एक वृहद् संग्रह धारण करते हैं।

इसके साथ ही साथ जन–जातियों एवं महिलाओं द्वारा अकेली ही अथवा विविध गैर–सरकारी अभिकरणों (non-government agencies) के साथ स्थानीय लोगों (land races) एवं विविध भोजन एवं औषधीय पादपों का सफल संरक्षण किया जा रहा है। भारत में कृषि जैव विविधता के संरक्षण में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है । भारत में ऐसे कार्यक्रमों का निर्माण विचाराधीन है जो आनुवंशिक स्त्रोतों और सामान्य प्राकृतिक प्रबंधन की समुदाय पंजिकाओं के एक तंत्र का परिवर्धन करेगा।

वर्ष 2010 को जैवविविधता का अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया गया था एवं यूनाइटेड नेशन्स ने 33 दिसम्बर 2010 को 2011 से 2020 के दशक को यूनाइटेड नेशन्स – जैवविविधता का दशक घोषित किया।

अध्याय – 16
सस्टेनेबल डेवेलपमेंट या संपोषणीय विकास

मनुष्य प्रारम्भिक काल में प्रकृति से पूर्ण सामंजस्य के साथ जीवनयापन करता रहा है। लेकिन विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के युग में उसकी प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग की क्षमता में वृद्धि हुई और उसने पर्यावरण का निर्माता स्वयं बनने का प्रयास किया । इस सोच और कार्य से प्राकृतिक वातावरण का निम्नीकरण हुआ है । प्राचीन गांव, पर्वत तथा जंगल, समुद्रतट, शहरों एवं महानगरों में बदल गए हैं । व्यापार बढ़ाने के लिए सड़कों एवं परिवहन व्यवस्था का जाल बनाया गया है। पर्यटन का महत्व बढ़ने से बड़े होटल एवं उद्योग इत्यादि का निर्माण हो रहा है। ज्ञातव्य है कि जहां विद्युत उत्पादन में वृद्धि के लिए बड़े–बड़े बांध बनाए गए हैं वहीं प्राकृतिक जलाशय सीमित होते जा रहे हैं और पुराने प्राकृतिक जल स्रोतों की उपेक्षा होती जा रही है।

सस्टेनेबल डेवेलपमेंट का अर्थ सामाजिक और संरचनात्मक आर्थिक बदलाव के ऐसे तरीके से है जिससे समाज को इनसे तात्कालीन फायदे तो मिले परन्तु इन कार्यों से इन्ही फायदों को भविष्य में भी प्राप्त किया जा सके । ये पर्यावरण के लिए क्षतिपूर्ण भी न हो और यदि हो तो साथ ही में बचाव के उपाय भी अपनाए जाए । सस्टनेबल डेवेलपमेंट का प्रारम्भिक और मूल उद्देश्य यह है कि किसी भी संसाधन या विकास को आज और आने वाली संततियों के लिए समान रूप से संरक्षित किया जा सके। उदाहरण के लिए हमे प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग तो करना चाहिए परन्तु यह भी ध्यान रखना होगा कि भविष्य में भी इन संसाधनों की उपलब्धता बनी रहे । सस्टेनेबल डेवेलपमेंट यह भी है कि हमें परम्परागत ऊर्जा श्रोतों का उपयोग इस गति से करना चाहिए कि अपरम्परागत ऊर्जा श्रोतों के उपयोग और विकास की गति परम्परागत श्रोतों में होने वाली कमी को पूर्ण कर सके ।

भौतिक एवं औद्योगिक विकास के नाम पर मानव आज प्राकृतिक एवं पर्यावरणीय घटकों (संसाधनों) का निर्मम, अनियंत्रित, अविवेकपूर्ण, अदूरदर्शी एवं विनाशकारी विदोहन अर्थात् शोषण (Exploitation) में संलग्न हैं। उपभोक्तावादी और अर्थलोलुप मानव सुख–समृद्धि की अतृप्त पिपासा लिए हुए पारिस्थितिकीय संतुलन को बिगाड़ने व पर्यावरण को प्रदूषित करने पर तुला हुआ है। जिसके कारण विकास आज विनाश का पर्याय बन चुका हैं प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित से निरन्तर दोहन करते हुए मनुष्य एक तरफ उन संसाधनों को समाप्ति के कगार पर ढकेलते हुए पारिस्थितिकीय संतुलन बिगाड़ रहा है तो दूसरी और तमाम हरित गृह प्रभाव वाली गैसे उत्पन्न करके वैश्विक ताप में वृद्धि कर रहा है दूसरी तरफ इतने अधिक जहरीले पदार्थो को वायु, जल एवं मृदा में विसर्जित करके प्रदूषण फैला रहा है जिसके कारण जन्तु जगत एवं वनस्पति जगत दोनों की ही अपूरणीय क्षति हो रही है। पहले लोग प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग उसी तरह करते थे जैसे माली जो पेड़ों को सींचता है, और उसका पोषण और विकास कर उसके फूल और फल को प्राप्त करता हैं। इस प्रकार पेड़ भी सुरक्षित रहता है और माली की भी जीविका चलती रहती है किन्तु आज का मानव प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग लोहार (Blacksmith) की भांति कर रहा हैं जो पेड़ को काटकर और फिर उसे जला करके कोयला प्राप्त करता है और एक ही बार में पेड़ का अस्तित्व ही समाप्त कर देता है।

पर्यावरण एवं विकास में संतुलन स्थापित करने के लिए संपोषणीय विकास (Sustainable Development) की अविलंब आवश्यकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें विकास के विभिन्न पहलुओं पर समग्रता के साथ विचार करना होगा। संरक्षण, स्थायित्व तथा जैव विविधता एक–दूसरे से संबंधित हैं। इसलिए, यदि मनुष्य को अपना अस्तित्व बनाए रखना है तो उसे प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करना होगा। वस्तुतः हमें उसी प्रौद्योगिकी को अपनाना चाहिए जो पर्यावरण की दृष्टि से उपयुक्त हो तथा पुनः चक्रण एवं संसाधनों के दक्षतापूर्ण उपयोग पर आधारित हो।

टिकाऊ विकास और पर्यावरण :

विकास एक सतत् प्रक्रिया है तथा जीवन की गतिशीलता का सूचक हैं। जहां गति है वहा विकास है और विकास ही जीवन हैं। गतिशीलता से ही मानव जीवन में निखार आता है तथा सुख और समृद्धि का सृजन होता हैं। इस धरती पर जब से मानव आया है, तब से लगातार विकास ही कर रहा हैं यदि हम आदिमानव और आज के

सभ्य मानव में तुलना करें तो पाएगें कि अधनंगा रहने वाला या पेड़ों की छाल (ठंता) लपेटने वाला व्यक्ति आज उच्च कोटि के सूट में घूमता है, एक समय जो मानव जंगलों में नंगे पैर भोजन के लिए मृग शावकों के पीछे भागता था आज वहीं मानव खगोलीय पिण्डों का पीछा कर रहा हैं। गुफाओं में शरण लेने वाला मानव आज गंगनचुंबी अट्टालिकाओं में ऐश्वर्य के साथ रह रहा हैं। यह सब विकास ही तो है किन्तु यह सब शनैः शनैः विकसित हुआ है और इस विकास में नकारात्मक पहलुओं की लगातार उपेक्षा हुई हैं।

मानव सभ्यता और विकास में सीधा समानुपात हैं आज हमारी सुख–सुविधा के जो भी साधन हैं वे सब विकास की एक अनवरत चलने वाली श्रृंखला की कड़ियॉ हैं। विकास वस्तुतः एक विस्तृत अवधारणा है जिसको व्यापक तथा संक्षिप्त दोनों ही अर्थो में परिभाषित किया जा सकता हैं। व्यापक सन्दर्भ में विकास, मानव द्वारा शैक्षणिक, आर्थिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक और नैतिक क्षेत्रों में की गयी प्रगति की समग्रता (Totality) का द्योतक है जबकि संक्षिप्त रूप में विकास मानव की सुख–सुविधाओं में बढ़ोत्तरी का सूचक है। किन्तु हमें टिकाऊ विकास चाहिए जो हमारे पर्यावरण व पारिस्थितिकी को बिना क्षति पहुंचाए हमारे जीवन स्तर में सुधार ला सकें, वस्तुतः पर्यावरण व पारिस्थितिकी को संरक्षित रखते हुए जो विकास किया जाए वही टिकाऊ विकास है।

अर्थ और परिभाषा : टिकाऊ विकास दो शब्दों टिकाऊ (Sustainable) और विकास (Development) से मिलकर बना हैं टिकाऊ विकास की अवधारणाा सर्व प्रथम 1987 में प्रख्यात पर्यावरणविद् ब्रंटलैण्ड ने दी। पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग (World Commission on Environment and Development) की अध्यक्षता करते हुए ब्रंटलैण्ड ने टिकाऊ विकास को अग्रलिखित रूप से पारिभाषित किया –

''टिकाऊ विकास वह विकास है जिसमें वर्तमान पीढ़ी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति को बिना नुकसान पहुंचाए करती है।''

टिकाऊ विकास प्रकृति के साथ मानव का सहयोग, साहचर्य (Symbiosis), उसके प्रति श्रद्धा व सम्मान की भावना पर आधारित है। टिकाऊ विकास की अवधारणा हमारी प्राचीन जीवन पद्धति जो सुख–शान्ति, समृद्धि, सौहार्द व सन्तोष के समावेश के साथ प्रकृति–समीपता व नैसर्गिक चिन्तन पर आधारित थी, के बहुत समीप है तभी तो

आज भी स्वस्तिवाचक वैदिक मन्त्रों – पृथ्वी, जल (आपः) औषधियों व वनस्पतियों आदि से शान्ति की कामना की जाती है, जो कि इस बात का द्योतक है कि प्राकृतिक शक्तियों के साथ बिना सामंजस्य स्थापित किए सुख–शान्ति की कल्पना नहीं की जा सकती । प्रकृति के प्रति हमारी कृतज्ञता व भावना नदियों, वृक्षों, पहाड़ों तथा जीव–जन्तुओं के प्रति सम्मान व पूजा आदि के रूप में दिखाई पड़ती हैं। यह अपनी प्रकृति के कारण एवं बहुविषयी अवधारणा (Multidisciplinary Concept) है इसमें प्राकृतिक संसाधनों का न केवल प्रबंधन और संरक्षण सम्मिलित है साथ ही परिवेश में होने वाले सामाजिक, तकनीकी, सांस्कृतिक, शैक्षणिक परिवर्तन भी शामिल हैं।

सस्टेनेबल डेवेलपमेंट की दिशाएं –

आर्थिक दिशाएं :

● ऊर्जा और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का स्थिर घटता हुआ प्रयोग जो कि जीवन शैली में परिवर्तन और इनकी उत्पादक क्षमता में वृद्धि के साथ संभव होगी।

● ऐसे कृत्यों/उपयोगों में कमी जिनसे जैवविधिता को हानि पहुंचती हो।

● अन्य देशों में सस्टेनेबल डेवेलपमेंट के विस्तार के लिए नेतृत्व की भावना का विकास।

● आर्थिक, तकनीकी और मानवीय संसाधनों का प्रयोग कर उन्नत साफ और कम संसाधनों के उपयोग वाली तकनीक का विकास।

● सभी लोगों को संसाधनों के उपयोग का समान मौका प्रदान करना।

● आर्थिक असमानता और स्वास्थ्य सुविधाओं के उपयोग की असमानता को कम करना।

● धन के उपयोग को सेना एवं राज्य सुरक्षा के साथ विकासात्मक मदों में भी लगाने का प्रयास करना।

● जीवन स्तर के सुचारू विकास हेतु प्रयास।

● भूमि, शिक्षा और समाज सेवाओं को ओर उपयोगी बनाना।

● औद्योगिक इकाइयों को और अधिक क्रियाशील एवं उत्पादक बनाना जिससे न सिर्फ उत्पादन में वृद्धि हो अपितु रोजगार के अवसर भी बढ़ें।

● गरीबी समाप्त करना।

मानवीय दिशाएं :

● जनसंख्या दर का स्थिरीकरण।

● ग्रामीण विकास के द्वारा जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में पलायन रोकना।

● ऐसे नियमों को बनाना और उनका पालन सुनिश्चित करना जिससे शहरीकरण के पर्यावरणीय प्रभावों को कम किया जा सके।

● प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार।

● स्वास्थ्य और स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में निवेश बढ़ाना।

● पर्यावरण सुरक्षा संबंधी निर्णयों में जनभागीदारी बढ़ाना।

● सामाजिक ढ़ाचे का विकास जिसमें सांस्कृतिक विविधता का संरक्षण भी शामिल हो।

पर्यावरणीय दिशाएं –

● भूमि का न्यायोचित उपयोग।

● कृषि कार्यों में सुधार एवं उत्पादन शक्ति में वृद्धि।

● रसायनों और कीटनाशियों के बढ़ते प्रयोग को नियंत्रित करना एवं जैव उर्वरकों एवं जैव कीटनाशियों के प्रयोग को बढ़ावा देना।

● जल के अपव्यय को रोकना और जल तंत्रों की क्षमता में वृद्धि करना।

● जल गुणवत्ता में वृद्धि एवं जल संसाधनों का संरक्षण।

● जैव विविधता का संरक्षण और यदि संभव हो तो आवासों और परितंत्र का विनाश रोकना।

● जीवों के विलुप्तीकरण को रोकना।

● प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करना और बढ़ती आबादी की भोजन एवं इंधन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयास करना।

● सिंचाई के साधनों का मितव्ययिता पूर्ण उपयोग करना।

● उष्ण कटिबंधीय वनों का नष्टीकरण रोकना।

तकनीकी दिशाएं :

● अपेक्षाकृत साफ और अधिक कार्यकारी तकनीकों का विकास करना जिससे ऊर्जा एवं प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कम हो सके साथ ही भूमि,

जल और वायु का प्रदूषण कम हो।

● कार्बन गैसों के बहिःस्त्राव को नियंत्रित करना जिससे ग्रीन हाउस गैसों का पर्यावरण में प्रवाह स्थिर/नियंत्रित हो सके।

● जीवाष्म इंधनों के उपयोगों को क्रमबद्ध रूप से कम करना एवं ऊर्जा के गैर वैकल्पिक ऊर्जा स्त्रोतों के प्रयोग को बढ़ावा देना ।

● उन परम्परागत तकनीकों को संरक्षण देना जो कम वर्ज्य पदार्थ उत्पादित करें और प्राकृतिक तंत्रों के साथ काम करें।

● चरणबद्ध रूप में क्लोरोफ्लोरो कार्बन के उपयोग को नियंत्रित करना।

● उन्नत तकनीकों को तेजी से अपनाना तथा शासकीय नियंत्रण उपायों को बेहतर तरीके से लागू करना।

सस्टेनेबल तरीके से जीने के तरीके के सिद्धान्त (Principles for Sustainable Living)

● व्यक्तिगत अभिवृत्तियों और कार्यों में समुचित बदलाव ।

● जीवन की सामुदायिकता के लिए आदर और ध्यान देना ।

● मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना।

● पृथ्वी पर जीवन और विविधता का संरक्षण करना।

● प्राकृतिक संसाधनों के क्षय को रोकना ।

● पृथ्वी की धारण क्षमता के भीतर ही रहना ।

● समुदाय को अपने स्वयं के पर्यावरण के बारे में ध्यान रखने के लिए तैयार करना ।

● विकास और संरक्षण को जोड़ने के लिए एक राष्ट्रीय आधार तैयार करना।

● सार्वभौम सहयोग तैयार करना।

जीने का ऐसा तरीका जो परिवेश के साथ सहयोगात्मक हो सभी के लिए अनिवार्य है। व्यक्तियों, समूहों और पर्यावरण के मध्य संबंधों का विकास इस आवश्यक क्रिया का हिस्सा है। हममें से प्रत्येक को एक शिक्षक और एक सीखने वाले की भूमिका के निर्वाहन के लिए हमेशा तैयार रहना होगा यही सस्टेनबल डेवलपमेंट का मूलमंत्र है।

Sustainable Living के लिए शिक्षा की आवश्यकता –

● यह मनुष्य को प्रकृति में पाए जाने वाले विभिन्न जीवों के साथ सामंजस्य

से रहने और परस्पर अर्न्तनिर्भरता बताने के साथ–साथ उनकी क्रियाओं के परिणामों की जानकारी भी प्रदान करती है ।

● यह पर्यावरणीय घटनाओं/मुद्दों और जटिल तंत्र के प्रति जागरूकता का विकास करती है।

● यह मनुष्य की अभिवृत्ति, मूल्यों की योग्यता बढ़ाने के साथ–साथ Sustainable development हेतु किए जाने वाले कार्यो में विभिन्न स्तरों पर उनकी भागीदारी बढ़ाने का प्रयास करती है।

टिकाऊ विकास हेतु मार्गदर्शक सिद्धान्त (Guiding Principles for Sustainable Development)

(1) उत्पादन के क्षेत्र में पारिस्थितिकी मित्रवत् प्रौद्योगिकी (Eco-Friendly Technique) को अपनाया जाय।

(2) परियोजना मूल्यांकन की प्रक्रिया में तीन 'E' (ई) पर विशेष ध्यान दिया जाय –

(1) **E**nvironmental Protection (पर्यावरण सुरक्षा)

(2) **E**cological Balance Protection (पारिस्थितिकीय संतुलन)

(3) **E**conomic Efficiency (आर्थिक दक्षता)

(3) उत्पादन का विकेन्द्रीकरण करके इस क्षेत्र में जन भागीदारी बढ़ायी जाय।

(4) समग्र जीवन चक्र प्रबन्धन भूमण्डलीय आधार पर किया जाए ताकि संसाधन संरक्षण को एक प्रभावशाली दिशा दी जा सके।

(5) प्रभावी जबाव देही तन्त्र (Effective Accountability System) का विकास किया जाय जिससे कि पर्यावरण और पारिस्थितिकी को नुकसान पहुंचाने वालों के खिलाफ कड़ी कार्यवाही की जा सके।

(6) पारिस्थितिकीय साक्षरता (Eco-Literacy) को प्रभावशाली वैश्विक आन्दोलन की तरह चलाया जाय।

(7) टिकाऊ विकास पर प्रभावी जनमत निर्माण में राजनीतिक दलों (सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों), पर्यावरणविदों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, गैर सरकारी संगठनों तथा प्रेस और मीडिया की मदद लेनी चाहिए।

(8) विश्व के सभी राष्ट्रों द्वारा पर्यावरण के सम्बन्ध में वैश्विक संस्थाओं, सन्धियों व प्रोटोकालों को पूर्ण मान्यता दी जाय व उनका पूर्ण रूपेण अनुपालन हो।

अध्याय– 17

पर्यावरण संरक्षण : राष्ट्रीय संदर्भ में

भौतिक सभ्यता की अंधी दौड़ में विज्ञान का सहारा लेकर आज मानव प्रकृति को पूर्ण रूप से पारभूत करने की चेष्टा कर रहा है। मानव प्रकृति की एक ऐसी संतान है जिसे प्रकृति ने अपार सम्पदा विरासत में दी है। परन्तु मानव ने स्वार्थवश, मात्र अपनी प्रगति एवं विकास के नाम पर प्रकृति से हमेशा खिलवाड़ किया हैं।

पर्यावरण शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य यह है कि मानव परिस्थितिक संतुलन के महत्व को समझें। परिस्थितिकी शब्द उन सभी जीवित व निर्जीव अवयवों का समूह है जो वायु स्थल और जल मंडल में विद्यमान है तथा जीवों की व्यवस्थित वृद्धि व विकास को प्रभावित करते है करोड़ो वर्षो पूर्व इन्ही अवयवी घटकों के संतुलन से पृथ्वी पर जीवों की उत्पत्ती हुई। परिस्थितिकी का मानव से गहरा संबंध है आज निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या की भौतिक आवश्यकतों की पूर्ति एवं आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाने के लिए औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया को और तेज रखना पड़ रहा है, परिणामस्वरूप पर्यावरण पर अत्याधिक दबाव बढ़ रहा है जिससे प्रकृति और मानव का संतुलन बिगड़ रहा है और नित नई पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं।

उपरोक्त समस्याओ को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जिसमें पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति लोगों में रूचि जागृत की जा सकती है तथा इन समस्याओं के समाधान हेतु कुछ सार्थक प्रयास किए जा सकते हैं।

विभिन्न सरकारी /सार्वजनिक उपक्रमों /स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा इस क्षेत्र में किए जा रहे कुछ प्रमुख कार्य निम्न हैं –

पर्यावरण नियोजन तथा समन्वय समिति (NCEOC)

भारत में सरकार को ओर से पर्यावरण सुधार को महत्व देने संबंधी विचार विमर्श

प्रक्रिया का आरम्भ स्टाकहोम सम्मेलन (1972) के बाद प्रारंभ हो गया था। उसी वर्ष सरकार से फरवरी माह में पर्यावरण नियोजन एवं समन्वयक समिति (NCEOC) का गठन किया। पर्यावरणीय समस्याओं को पहचानना, उनका समाधान खोजना तथा कार्यक्रमों एवं नीतियों की समीक्षा करना इस समिति के कार्य निर्धारित किए गए।

पर्यावरण नियोजन एवं समन्वयय समिति ने केन्द्र में पर्यावरण सूचना केन्द्र की स्थापना की है। इस केन्द्र के प्रमुख कार्य हैं पूरे देश से पर्यावरण संबंध सूचनाओं को संग्रहित करना, विभिन्न पर्यावरणीय परियोजनाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करना और सरकार को पर्यावरणीय मसलों पर परामर्श देना। 1972 में ही राष्ट्रीय प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय की नई दिल्ली में स्थापना की गई।

पर्यावरण विभाग (DOE)

सन 1980 में भारत सरकार ने एक पृथक पर्यावरण विभाग गठित किया जो पर्यावरण नियोजन प्रोत्साहन और समन्वयय हेतु केन्द्रीय ढांचे का केन्द्र बिन्दु है और इसी वर्ष में वन संरक्षण अधिनियम बनाया गया।

सन 1981 में केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण की स्थापना की गई जो गंगा नदी में मानवीय गतिविधियों के प्रभावों संबंधी अध्ययन तथा संरक्षण कार्यक्रमों के लिए उत्तदायी है।

दिसम्बर 1985 में जयपुर में आयोजित अखिल भारतीय परिस्थितिकी व पर्यावरण विज्ञान शिक्षण सेमीनार में प्रथम बार इस तथ्य पर विचार हुआ कि पर्यावरण विज्ञान, परितंत्र, प्रदूषण इत्यादि मात्र उच्च शिक्षा अनुसंधान के ही विषय न रहे अपितु लोक व्यापीकरण की दृष्टि से इनका प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा स्तरों में समावेश किया जाना चाहिए।

सन् 1986 में पर्यावरण सुधार और संरक्षण की आवश्यकता को देखते हुए पर्यावरण संरक्षण अधिनियम बनाया गया इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रदूषण उत्पन्न करने वाले कार्यकलापों पर कठोर दण्ड का प्रावधान है।

सन् 1992 में राष्ट्रीय पर्यावरण सूचना व्यवस्था (एनविस तंत्र) का भी विकास किया गया।

पर्यावरण वानिकी तथा वन्य जीवन विभाग का गठन (EFWLD)

भारत सरकार ने 1985 में ''पर्यावरण वानिकी एवं वन्य जीवन विभाग'' का गठन

किया। यह विभाग निम्न कार्यो के लिए उत्तदायी है :

1. प्रदूषण के विभिन्न श्रोतों का अवलोकन एवं आंकलन

2. प्रदूषण से प्रभावित क्षेत्रों के लिए संरक्षण कार्यक्रमों हेतु परामर्श तथा कार्यक्रमों का क्रियान्वयन।

3. प्रदूषण के कारकों संबंधी जानकारी से संसद को अवगत कराना।

4. विभिन्न विकास योजना के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन।

5. पर्यावरण संरक्षण संबंधी अनुसंधानों को प्रोत्साहन देना।

6. पर्यावरण संचेतना जागृत करने हेतु पर्यावरण शिक्षा सूचनाओं का मुक्त प्रवाह तथा प्रसारण माध्यमों के प्रयोग को बढ़ावा देना।

7. प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा हेतु प्रयास करना।

8. समय–समय पर बनाई गई पर्यावरण नीतियों, कार्यक्रमों तथा कानूनों का सफल क्रियान्वयन करना।

9. सामाजिक वानिकी एवं कृषि वानिकी परियोजनाओं को प्रारंभ करना।

पर्यावरण शिक्षा केन्द्र, अहमदाबाद (CEE)

सन् 1984 में भारत सरकार के पर्यावरण एवं वनमंत्रालय द्वारा अहमदाबाद में पर्यावरण शिक्षण केन्द्र की स्थापना की गई। नेहरू विकास प्रतिष्ठान से जुड़ी इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य देश भर में पर्यावरण के बारे में चेतना का विकास करना है। पर्यावरण शिक्षा संस्थान का प्रमुख उद्देश्य बच्चों, युवाओं, नीति निर्धारकों एवं जनसमुदायों में पर्यावरणीय चेतना का विकास करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह संस्थान नवाचारी कार्यक्रमों का विकास, पर्यावरण शिक्षण हेतु ऐसी शिक्षण सामग्री एवं शिक्षण विधियों का विकास कर रहा जो स्थानीय स्तर पर उपयोग हो। बंगलोर, गोहाटी और लखनऊ में इस केन्द्र के क्षेत्रीय प्रकोष्ठ हैं। इस संस्थान ने ''अन्तर्राष्ट्रीय विकास शोध केन्द्र (IDRC) कनाडा के सहयोग से ''पर्यावरण शिक्षा कोश'' स्थापित किया हैं। इस कोश में सम्पूर्ण विश्व के पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र में जारी कार्यक्रमों और सामग्रियों का संकलन है। इस कोष के अवलोकन को एक पांच दिवसीय कार्यशाला आयोजित कर सम्पन्न किया जाता है। इस कोष में निम्नलिखित तथ्य समाहित हैं –

1. कम्प्यूटरीकृत जानकारी जिसमें 800 से अधिक पर्यावरणीय अवधारणाएं, 2500 से अधिक पर्यावरणीय क्रियाकलाप, तथा 600 से अधिक समस्यात्मक अध्ययनों

का समावेश है।

2. पर्यावरण संचेतना जागृत करने हेतु फिल्मों, पोस्टरों, किताबों, शोध प्रपत्रों, पर्यावरण किट इत्यादि का संकलन हैं।

3. विभिन्न पुस्तकों, समुदायों, संस्थानों, और दृश्य श्रव्य साधना से पर्यावरणीय क्रियाकलापों संबंधी जानकारी का संकलन है।

यह ''पर्यावरण कोश'' पर्यावरण शिक्षा हेतु समाचारों का "News EE" के रूप में प्रकाशन भी कर रहा है। पर्यावरण शिक्षण केन्द्र पर्यावरण शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए ''सी.ई.ई. एन.एफ.एस.'' के रूप में मासिक हिन्दी न्यूज बुलेटिन का प्रकाशन भी कर रहा है। इस केन्द्र के बारे में अधिक जानकारी हेतु पाठक पर्यावरण शिक्षण केन्द्र थलटेज टेकरा, अहमदाबाद – 380054 से सम्पर्क कर सकते है।

राष्ट्रीय शैक्षणिक, अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT)

NCERT देश में स्कूल शिक्षा के स्तर और गुणवत्ता में सुधार के लिए कार्य कर रहा हैं। यह संस्थान शिक्षा मंत्रालय को स्कूल शिक्षा के संबंधी में नीति निर्धारण और प्रमुख कार्यक्रमों के निर्माण और उन्हें लागू करने में परामर्श देता हैं। यह संस्थान यूनेस्को तथा यूनीसेफ के सहयोग से विशिष्ट शैक्षकीय समस्याओं का समाधान तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन करता है।

सन् 1975 में NCERT ने 10+2 स्तर के पाठ्यक्रमों को पर्यावरणीय घटकों के संदर्भ में पुनः व्यवस्थित किया। साथ ही शिक्षकों के लिए तद्संबंधी निर्देश पुस्तिका का भी विकास किया। पाठ्यक्रम में प्राकृतिक एवं सामाजिक शिक्षा को विभिन्न विषयों के साथ समाहित कर एक समन्वित शैक्षणिक कार्यक्रम का निर्माण किया गया। सम्पूर्ण कार्यक्रम का उद्देश्य छात्रों में पर्यावरण की समझ एवं मानवीय मूल्यों का विकास करना है।

परि–पुनरुज्जीवन और विकास बोर्ड (Eco-Regeneration & Development Board)

भारत में राष्ट्रीय परिस्थितिकीय विकास बोर्ड की स्थापना 1981 में की गई जिसके प्रमुख उद्देश्य निम्मानुसार है :

1. परिस्थितिक संतुलन को कायम रखते हुए आर्थिक विकास की व्यावहारिकता प्रदर्शित करना।

2. पहले से ही क्षतिग्रस्त परितंत्रों को और अधिक क्षतिग्रस्त होने से रोकने के कार्यक्रमों का नियोजन और क्रियान्वयन, तथा,

3. युवकों को परितंत्र संरक्षण, के महत्व के प्रति संवेदनशील बनाना

सातवी पंचवर्षीय योजना तथा पर्यावरण शिक्षा

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–90) में यह स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रीय विकास व सामाजिक हित में पर्यावरण शिक्षा महत्वपूर्ण हैं यह राष्ट्र की आवश्यकता है और आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ और विकास की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण हैं। पर्यावरण शिक्षा अनिवार्य शिक्षा है और यह केवल, छात्र शिक्षक या विद्यालय की जिम्मेदारी नहीं हैं, और केवल इन्हीं के लिए भी नहीं है समाज को भी इस संदर्भ में जागरूकता फैलाने के कार्य में मदद करनी चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा पर्यावरण शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में कहा गया है कि पर्यावरण का संरक्षण एक मूल्य है जिसे कुछ अन्य मूल्यों के साथ शिक्षा के सभी स्तरों पर पाठ्यक्रम का आवश्यक अंग होना चाहिए। इसकी कंडिका 8.15 के अनुसार पर्यावरण के संबंध में जागरूकता उत्पन्न करने की परम आवश्यकता हैं। बचपन से प्रारंभ होकर उसे सभी अवस्थाओं और सामाजिक वर्गो में व्याप्त होना चाहिए। पर्यावरण जागरुकता से स्कूल और महाविद्यालीन अध्यापन अनुप्रमाणित होना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों को प्रभावशाली बनाने के लिए केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कूल शिक्षा में पर्यावरण उन्मुखीकरण की एक योजना प्रारंभ की गई है जिससे स्कूलों के शैक्षिक कार्यक्रमों को स्थानीय पर्यावरणीय स्थिति एवं महत्व के अनुकूल तथा प्रभावी बनाया जा सके।

पर्यावरण हित में सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा किए गए प्रयास :

शुद्ध पर्यावरण के लिए सरकारी स्तर पर किए गए प्रयासों के साथ–साथ यह हमारा भी मानवीय दायित्व है कि देश का प्रत्येक नागरिक पर्यावरण के प्रति सचेत हो और उसे सुरक्षित रखना अपना कर्तव्य समझे। आज देश के निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमी भी पर्यावरण रक्षा हेतु चिंतित हैं।

पेट्रोलियम उत्पादों में अग्रणी इंडियन आयल कार्पोरेशन लिमिटेड ने भी इस दिशा में अनेकों प्रयास किए है जैसे पेट्रोलियम पदार्थ का सही उपयोग, वाहनों की

मुफ्त प्रदूषण जांच, ऊर्जा के वैकल्पिक श्रोतों का उपयोग इत्यादि।

पर्यावरण संरक्षण हेतु शासकीय योजना "इकोमार्क :

पर्यावरण संरक्षण के उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए सरकार ने इकोमार्क योजना प्रारंभ की है। इसके तहत किसी वस्तु जिसके उत्पादन उपयोग एवं इसके मुक्त प्रक्षेपण से पर्यावरण को होने वाले नुकसान को कम किया जा सके उसे पर्यावरण के हित में उत्पादन का दर्जा दिया जाएगा । पर्यावरण एवं वनमंत्रालय के निर्देश पर भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा एक पर्यावरण सुरक्षा चिन्ह (इकोमार्क) का प्रावधान किया गया है इसका "लोगो" एक मिट्टी का बर्तन है जो कि पृथ्वी तथा इसके भंगुर लक्षणों का परिचायक हैं। सी.जी. रमन द्वारा चुना गया यह चिन्ह आम लोगों तक पर्यावरण संरक्षण का संदेश पहुंचा सकता हैं।

इको मार्क चिन्ह (लोगो) : भारत में इको मार्क योजना के लिए मिट्टी के मटके को चुना गया हैं। इस चिन्ह से एक तो सभी परिचित हैं और इसका उत्पादन नवीनीकरण योग्य संसाधन मिट्टी से होता हैं। इसके उत्पादन में कोई खतरनाक अपशिष्ट पैदा नहीं होता हैं तथा उसके बनाने में बहुत कम ऊर्जा लगती हैं। इसका ठोस एवं गरिमामय स्वरूप ताकत एवं भंगुरता दोनों को इंगित करना है जो पारिस्थितिकीय तंत्र का भी मौलिक गुण है। एक प्रतीक के रूप में यह मटका पर्यावरण का संदेश प्रसारित करता है। सर्वसुलभ क्षमता की छवि के साथ पर्यावरण के प्रति विनम्र होने के संदेश को इस चिन्ह द्वारा आसानी से प्रसारित किया जा सकता है। इको मार्क चिन्ह इस बात को रेखांकित करता है कि इस चिन्ह से अंकित उत्पाद पर्यावरण के लिए कम हानिकारक हैं।

इको मार्क के लिए अब तक चुने गए उत्पाद : निम्नलिखित उपभोक्ता सामग्रियों को इको मार्क प्रदान करने के लिए चिन्हित किया गया है–

1. कागज
2. साबुन एवं डिटर्जेंट
3. खाद्य पदार्थ
4. लुब्रीकेटिंग आयल
5. पैकेजिंग मटेरियल
6. पेंट और पाउडर कोटिंग
7. बैटरी
8. सौन्दर्य सामग्री
9. कपड़े
10. चमड़े का सामान
11. प्लास्टिक उत्पाद
12. बिजली के सामान
13. इलेक्ट्रानिक सामान
14. फूड एडीटिव

15. एयरोसोल प्रोपेलेण्ट 16. अग्निशामक
17. लकड़ी की वैकल्पिक सामग्री

इको मार्क अंकित सामग्री का उपयोग कर हर नागरिक पर्यावरण संरक्षण में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकता है।

बॉटनीकल सर्वे ऑफ इंडिया (B.S.I.)

भारतीय वानस्पतिक सर्वेक्षण या बॉटनिकल सर्वे ऑफ इंडिया का मुख्यालय कलकत्ता में स्थित है। भारत में पाए जाने वाले पेड़ पौधों की जानकारी के लिए सर्वेक्षण करना उनका केटलांग बनाना इस संस्थान के कार्य हैं। यहां भारत के सभी पेड़–पौधों का रिकार्ड रखा जाता है। सन् 1890 में स्थापित इस संस्थान के भारत के विभिन्न भागों में क्षेत्रीय केन्द्र हैं। यह शिवपुर व कलकत्ता के निकट हावड़ा स्थित बॉटनिकल गार्डन की भी देख रेख करता हैं। यहां से पेड़ पौधों की अधिकाधिक पहचान अथवा जानकारी भी उपलब्ध करायी जाती है।

नेशनल बॉटनिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट (N.B.R.I.)

नेशनल बॉटनिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट लखनऊ, वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का घटक संस्थान है। मूल रूप से इसकी स्थापना उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा नेशनल बॉटनिकल गार्डेन के रूप में की गयी। सन् 1953 में सी.एस. आई.आर. ने इसे अपने नियंत्रण में से लिया तथा 1978 में इसका नाम बदलकर ''नेशनल बॉटनिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट'' कर दिया गया। इस संस्थान का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक व सजावटी महत्व के अपरंपरागत पेड़ पौधों के संरक्षण को प्रोत्साहन देना तथा उनका सुधार करना हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इस शोध संस्था में वनस्पति विज्ञान व पादप रसायन विज्ञान के क्षेत्र में मौलिक व व्यावहारिक अनुसंधान किया जाता है। यहां एक वानस्पतिक उद्यान है तथा इसके हरबेरियम में पादप संग्रह 100,000 से अधिक पादप प्रदर्श हैं।

नेशनल एनवायरमेण्टल इंजीनियरिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट(N.E.E.R.I.)

वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसंधान परिषद के इस घटक प्रतिष्ठान की स्थापना सेन्ट्रल पब्लिक हैल्थ इंजीनियरिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट के नाम से की गई। सन् 1974 में इसे इसका वर्तमान नाम नेशनल एनवायरमेण्टल इंजीनियरिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट

प्रदान किया गया। यह संस्थान पर्यावरण अभियांत्रिकी के विभिन्न क्षेत्रों जैसे वायु प्रदूषण नियंत्रण जलीय जीव अवशिष्ट प्रबंधन व निस्तारण अपशिष्ट जल उपचार, पर्यावरणीय सूक्ष्म जीव विज्ञान तथा नियंत्रण, उपकरणों के अभिकल्पन आदि क्षेत्रों में अनुसंधान करता है। संस्थान ने जल में अधिक मात्रा में उपस्थित फ्लोराइड के पृथकरण की तकनीकी, जल के परिष्करण हेतु क्लोरीन व आयोडीन टिकिया निर्माण आदि की तकनीकी विकसित की है। विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट पदार्थो के उपचारण की प्रौद्योगिकी विकसित करने के साथ संस्थान ने एक केटेलिटिक कनवर्टर का निर्माण किया है जो वाहनों से निकलने वाली गैसों उपचारण हेतु प्रयोग किया जा सकता है। संस्थान विभिन्न औद्योगिक इकाइयों को प्रदूषण नियंत्रण उपायों पर सलाह मशविरा भी प्रदान करता है। भारत के विभिन्न भागों में इसके नौ फील्ड स्टेशन हैं।

नेशनल जिओफिजिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट (N.G.R.I.)

वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसंधान परिषद के इस घटक प्रतिष्ठान की स्थापना हैदराबाद में सन् 1961 में हुई। यहां पृथ्वी की संरचना तथा भूगर्भीय प्रक्रियाओं पर शोधकार्य किया जाता है। इसकी प्रमुख शोध परियोजनाएं पृथ्वी की विभिन्न गहराइयों पर उसके विशेष गुणधर्मो के अध्ययन के उद्देश्य से तैयार की गई है। अनुमान किया जाता है इससे लिथोस्फीयर एवं मेन्टल की भौतिक व रासायनिक संरचना के संबंध में जानकारी तथा पृथ्वी की सतह के पास के संसाधनों की जानकारी प्राप्त हो सकेगी। भूगर्भीय जल, जल चट्टानों व भूंकप के संबंध में एकत्रित की गयी जानकारी से उनके भविष्य तथा इससे किस तरह निबटा जाए कि संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी मिल सकेंगी। संस्थान ने हिमालयी क्षेत्र, बंगाल की खाड़ी तथा पूर्वोतर भारत में भूकंपीय आंकड़े एकत्रित किए हैं। इन आंकड़ो की व्याख्या से भूकंपीय खतरों के आंकलन संबंधी महत्वपूर्ण जानकारी मिल सकेगी। खनिजों की छानबीन भूगर्भीय जल सर्वेक्षण, गुरूत्वाकर्षण तथा भूचुम्बकीय सर्वेक्षण संबंधी अनेक कार्य योजनाएं भी संस्थान में प्रगति पर है।

जूलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया (Z.S.I.)

जूलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया कलकत्ता की स्थापना सन् 1916 में हुई। जूलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया का काम प्रदर्शो का एकत्रीकरण पहचान तथा भारत की जूजिओग्राफी व व्यवस्थित परितंत्र संबंधी सूचनाओं का संग्रह करना हैं। यह भारत

के नेशनल जूलॉजिकल कलेक्शन को संरक्षण प्रदान करता है, जहां से जन्तुओं की पहचान हेतु आवश्यक सूचना उपलब्ध करायी जाती है।

केन्द्रीय एवं राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

मानव अस्तित्व के स्वस्थ स्वरूप के लिए प्राकृतिक संपदा एवं मनुष्य के कार्यों के बीच नाजुक और जटिल संतुलन की आवश्यकता को मद्देनजर रखते हुए जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 के अंतर्गत सितम्बर, 1974 में केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड गठित किया गया। इसकी स्थापना औद्योगिकीकरण तथा जनसंख्या में हो रही वृद्धि के फलस्वरूप होने वाले जल–प्रदूषण की रोकथाम हेतु की गई थी। यह संस्था प्रदूषण नियंत्रण का संदेश देश भर में फैलाने का काम करती है। विभिन्न राज्यों में जल तथा वायु प्रदूषण से संबंधित कानून पारित किए जा चुके हैं और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड गठित किए गए हैं। वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) कानून, 1981 तथा पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 पारित हो जाने से बोर्ड की गतिविधियां एवं जिम्मेदारियां और ज्यादा बढ़ गई हैं। 1986 के कानून के माध्यम से बोर्ड को आवश्यकता पड़ने पर कार्यवाही करने के ज्यादा अधिकार दिए गए हैं। इनके प्रमुख कार्य निम्न हैं –

- बोर्ड जल एवं वायु–प्रदूषण तथा उसके नियंत्रण व रोकथाम से जुड़े मामलों से सम्बंधित सूचनाओं के प्रसार के साथ–साथ सम्बद्ध राज्य सरकारों के परामर्श से नदी – नालों, कुओं तथा वायु की गुणवत्ता के मानकों का निर्धारण और उनमें संशोधन करना।
- वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981 के अंतर्गत राज्यों में वायु–प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र के रूप में अधिसूचित होने वाले क्षेत्रों की पहचान करना।
- जल और वायु की गुणवत्ता का मूल्यांकन करना।
- औद्योगिक संयंत्रों के निर्माण प्रक्रियाओं के कामकाज का मूल्यांकन करना तथा वायु एवं जल–प्रदूषण की रोकथाम व नियंत्रण के कदम उठाने के लिए उनका निरीक्षण करना।
- लगभग सभी बड़ी नदियों तथा कुछ मझोली व छोटी नदियों के जल की गुणवत्ता की निगरानी के लिए देश में निगरानी केन्द्रों और वायु की गुणवत्ता पर लगातार नजर रखने के लिए केन्द्र की स्थापना करना।

राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम चलाकर तथा उसमें भाग लेकर प्रदूषण के

खिलाफ अभियान को आगे बढ़ाना। देश में, विशेषकर प्रदूषण की अधिक संभावना वाले क्षेत्रों में समय–समय पर पर्यावरण जागरूकता संबंधी शिविर आयोजित करना हैं। प्रदूषण के बुरे प्रभावों को उजागर करने के लिए प्रदर्शनियों में स्टाल लगाने, व्याख्यान आयोजित करने, दृश्य–श्रव्य कार्यक्रमों तथा अन्य माध्यमों की मदद से लोगों को आवश्यक जानकारी प्रदान करना। प्रदूषण तथा मिलावट के खतरों और स्वस्थ जीवन के महत्व के बारे में लोगों को जागरूक बनाने के उद्देश्य से विभिन्न प्रतियोगिताएं का आयोजन करना।

राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना

हमारी नदियां देश की जीवन रेखाओं के समान हैं। ये न केवल पेयजल, सिंचाई, आवागमन, मत्स्यपालन की सुविधा उपलबध कराती हैं बल्कि ये धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से भी महत्वपूर्ण हैं। लेकिन पिछले वर्षों में बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण ने इन नदियों में अपशिष्टों की मात्रा को इतना बढ़ा दिया है कि इनका ज्यादातर पानी अब लोगों के पीने और नहाने के लिए ही नहीं बल्कि सिंचाई के लिए भी अनुपयुक्त हो गया हैं। हमारे देश में 14 प्रमुख नदियां है और वे सब किसी न किसी स्थान पर प्रदूषण का शिकार होती हैं नदियों का सफाई अभियान 1985 में भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा पूर्णतय वित्त पोशित रूप से प्रांरभ किया गया। 1995 से इसे देश की अन्य नदियों पर भी लागू कर दिया गया है। और इस योजना का नाम बदलकर राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना कर दिया गया हैं।

देश के शहरों में स्थित महत्वपूर्ण झीलों को साफ करने के लिए राष्ट्रीय झील संरक्षण योजना तैयार की गई हैं। इसके पहले चरण में कुल चुनी गई 26 झीलों में से 11 झीलों में कार्य शुरू किया जाएगा। हिमालय क्षेत्र में वनों के अधिक दोहन के परिणामस्वरूप भू–क्षरण में वृद्धि से जलाशयों की क्षमता कम हुई है और मौसम अनियमित हो गया है। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए हिमालय कार्य योजना बनाई गई हैं।

पर्यावरण संरक्षण : अध्यादेश तथा कानून

स्टाकहोम में 1973 में हुए मानव पर्यावरण सम्मेलन के समय से ही भारत ने पर्यावरण संरक्षण को विशेष महत्व दिया है। स्टाकहोम से लेकर 1992 के 'रियो'

सम्मेलन तक अनेक कानून, नीतियां एवं कार्यक्रम तैयार किए गए हैं। पर्यावरण संरक्षण के लिए वन्य जीव सुरक्षा कानून 1972, वन (संरक्षण) कानून, 1980 तथा पर्यावरण (संरक्षण) कानून, 1986 बनाया गया। इसी प्रकार इन कानूनों में आवश्यक संशोधन भी किया गया है ताकि उन्हें अधिक सख्त एवं प्रभावी बनाया जाए। भारत सरकार ने समय–समय पर विभिन्न अध्यादेश व कानून का निर्माण कर पर्यावरण संतुलन की दिशा में प्रभावी कदम उठाएं है। **संविधान के 42 वें संशोधन (1976) में पर्यावरण सुरक्षा को नागरिकों के मूल कर्त्तव्यों में सम्मिलित किया गया** है। इस संशोधन के अन्तर्गत भारत के प्रत्येक नागरिक का मौलिक कर्त्तव्य है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण, जिसमें वन, झील, नदियां और वन्य जीवन शामिल है का संरक्षण व सुधार करे तथा जीव जंतुओं के प्रति दयाभाव रखे। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित सम्मेलनों जैसे ''स्टाकहोम सम्मेलन'' के प्रस्तावों का सुचारू रूप से लागू करने के लिए भी भारत सरकार द्वारा अधिनियम बनाकर उन्हें लागू कर प्रभावशाली प्रयास किए हैं।

National Environment Tribunal Bill, 1992

यह विल हानिकारक रसायनों उपयोग के दौरान हुई आकस्मिक दुर्घटना में जिम्मेदार कारक के निर्धारण के लिए तथा जनसामान्य, सम्पत्ती तथा पर्यावरण को हुए नुकसान का मुआवजा (Compensation) और इनके दुर्घटनाओं से संबंधित अन्य किसी विषय का संबंधित प्रकरणों के लिए राष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण हेतु 1992 में लागू किया गया।

रियो डी जेनेरियों में पर्यावरण और विकास पर आयोजित संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (जून, 1992) में जिसमें भारत भी शामिल हुआ था, राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण एवं जनसामान्य को क्षति पहुंचाने वाली इकाइयों के लिए कानून बनाने का प्रस्ताव पारित किया गया था इसी प्रस्ताव की परिणति है ''राष्ट्रीय पर्यावरण टिब्युनल बिल।''

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार (Ministry of Environment & Forest, Govt. of India)

पर्यावरण और वन मंत्रालय भारत की पर्यावरण एवं वानिकी संबंधी नीतियों और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के नियोजन, संवर्धन, समन्वय और निगरानी के लिए केन्द्र सरकार के प्रशासनिक ढांचे के अंतर्गत एक नोडल एजेंसी है। इस मंत्रालय का मुख्य

दायित्व देश की झीलों और नदियों, जैव विविधता वनों और वन्य जीवों सहित इसके प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, पशु कल्याण और प्रदूषण का निवारण एवं उपशमन सुनिश्चित करने से संबंधित नीतियों और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करना है। इन नीतियों और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में मंत्रालय सतत विकास और जन कल्याण को बढ़ावा देने के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होता है।

यह मंत्रालय देश में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी), दक्षिण एशिया सहकारी पर्यावरण कार्यक्रम (एसएसीईपी), अंतर्राष्ट्रीय एकीकृत पर्वत विकास केन्द्र, (आईसीआईएमओडी) के लिए और पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (यूएनसीईडी) के पालन के लिए भी नोडल एजेंसी की तरह कार्य करता है। इस मंत्रालय को बहुपक्षीय निकायों जैसे सतत विकास आयोग (सीएसडी), वैश्विक पर्यावरण सुविधा (जीईएफ) और क्षेत्रीय निकायों जैसे कि एशिया और प्रशांत के लिए आर्थिक और सामाजिक परिषद (ईएससीएपी) तथा दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) के पर्यावरण से संबंधित मामले भी सौंपे गए हैं।

मंत्रालय के व्यापक उद्देश्य निम्नानुसार है –

1. वनस्पति, जीव, वनों और वन्य जीवों का संरक्षण और सर्वेक्षण
2. प्रदूषण का निवारण और नियंत्रण।
3. अवक्रमित क्षेत्रों का वनीकरण और पुनरुद्धार।
4. पर्यावरण की सुरक्षा और
5. पशु–कल्याण सुनिश्चित करना।

इन उद्देश्यों के समर्थन हेतु विधायी और विनियात्मक उपाय हैं, जिसके पीछे लक्ष्य पर्यावरण संरक्षण, परिरक्षण और रक्षण करना है। विधायी उपायों के अलावा, पर्यावरण और विकास पर राष्ट्रीय संरक्षण रणनीति और नीति कथन, 1992, राष्ट्रीय वन नीति, 1988 प्रदूषण उपशमन संबंधी नीति कथन, 1992, और राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, 2006 से भी मंत्रालय के कार्य मार्ग निर्देशित होते हैं।

Source - http://www.moef.nic.in/hi/about-ministry/introduction

संपर्क पता– पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, पर्यावरण भवन, सी.जी.ओ. काम्पलेक्स, लोधी रोड, नईदिल्ली– 110003

फोन – 11–24361669 सूचना एवं सुविधा काउंटर – 011–24362064, बेबसाइट – www.moef.nic.in

पर्यावरण सूचना प्रणाली (Environment Information System)

दिसंबर 1982 में भारत सरकार द्वारा पर्यावरणीय सूचनाओं के महत्व को समझते हुए एनविस (Environmental information system) की स्थापना की गई। एनविस स्थापना का प्रमुख ध्येय निर्णय लेने वालों, नीति निर्माण करने वालों, शोध कर्ताओं, वैज्ञानिकों एवं सामान्य जन को पर्यावरण संबंधी अद्यतन जानकारी उपलब्ध कराना है। अब चूंकि पर्यावरण विषय का विस्तार काफी अधिक है और इसके आयाम बहुविषयी है अतः पर्यावरण संबंधी अद्यतन और सभी विषयों की जानकारी तभी मिल पाएगी जब इस तंत्र में पर्यावरण से जुड़े सभी विषयों पर विशेषज्ञता वाले संस्थान इस तंत्र से जुड़ें। इसी कारण इस तंत्र में बहुत से संस्थान जुड़े हुए हैं जो पर्यावरण से जुड़े विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट कार्य/शोध केन्द्र हैं।

एनविस एक विकेन्द्रीकृत कंम्प्यूटरीकृत नेटवर्क डेटाबेस प्रणाली है। जिसका केन्द्र बिन्दु मंत्रालय में स्थित है और नेटवर्क साझेदारी की श्रृंखला, जिन्हें एनविस केन्द्र कहा जाता है, देशभर के संगठनों/संस्थानों में स्थित है।

एनविस नेटवर्क का विकास एक व्यापक वितरित पर्यावरण सूचना नेटवर्क प्रणाली के रूप में करने के लिए, एनविस की सीमा को देश के सभी राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों को शामिल करने के लिए विस्तारित किया गया था। स्कीम के पहले के ईएफसी को संशोधित करने के लिए आवश्य दिशा निर्देश एवं नीतियां प्रदान की गईं और राज्य शासन के विभागों को कवर करने वाली नई अवधारणा को संशोधित एसएफसी में पूरा किया गया।

वर्तमान में, एनविस नेटवर्क में केन्द्र बिन्दु के अलावा 67 एनविस केन्द्र हैं, जिनमें से 28 एनविस केन्द्र राज्य शासन के उन विभागों में है जो पर्यावरण की स्थिति और राज्य शासन के संबंधित मामलों से निपटते हैं और शेष 39 को विभिन्न पर्यावरण व्यवस्थाओं पर स्थापित किया गया है, जिनमें वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, जैव विविधता, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन, पारिस्थितिकी एवं पारिस्थितिक तंत्र, पर्यावरण शिक्षा, एनजीओ, मीडिया और यहां तक कि पर्यावरण संसद, तटीय पारिस्थितिक तंत्र, स्वच्छ, प्रौद्योगिकी इत्यादि शामिल हैं। एनविस का केन्द्र बिन्दु मंत्रालय में स्थित है और वह एनविस को वेब द्वारा सक्षम व्यापक सूचना प्रणाली बनाते हुए भी एनविस नेटवर्क साझेदारों के साथ गतिविधियों का समन्वयन करने में पर्यावरण सूचना (ईआई) विभाग की सहायता करता है।

इन केन्द्रों से संबंधित जानकारी एवं एन्विस केन्द्रों संबंधी विवरण पर्यावरण एवं मंत्रालय भारत सरकार की वेबसाइट पर उपलब्ध है।

राष्ट्रीय उद्यान

राष्ट्रीय उद्यान, आई.यू.सी.एन. द्वारा निर्धारित श्रेणी II के अंतर्गत आने वाले संरक्षी क्षेत्र है। भारत में 1936 में पहला राष्ट्रीय उद्यान हैली राष्ट्रीय उद्यान बना था। जिसका वर्तमान नाम जिम कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान है। सन् 1970 तक भारत में केवल पांच राष्ट्रीय उद्यान थे। सन् 1972 में भारत सरकार द्वारा वन्य जीव संरक्षण अधिनियम लागू किया गया जिससे संरक्षण निर्भर प्रजातियों (Conservation reliant species) और उनके आवासों को सुरक्षा प्रदान की जा सके । अप्रैल 2012 की स्थिति में हमारे देश में 102 राष्ट्रीय उद्यान हैं, इन सभी राष्ट्रीय उद्यानों का कुल क्षेत्र 15413 स्क्वेयर मीटर है जो कि भारत के कुल क्षेत्र का 1.21 प्रतिशत है।

देश के विभिन्न राष्ट्रीय उद्यानों की सूची पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार की वेबसाइट पर उपलब्ध है।

केन्द्रीय प्रदूषण निवारण मंडल

(Central Pollution Control Board-CPCB)

केन्द्रीय प्रदूषण निवारण मंडल, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अधीन एक वैधानिक संस्था है। इस संस्था की स्थापना 22 सितम्बर 1974 में जल प्रदूषण का निवारण और नियंत्रण अधिनियम 1974 के तहत की गई थी। संस्था को 1981 में बने वायु प्रदूषण का निवारण और नियंत्रण अधिनियम के पालन की जिम्मेदारी भी सौंपी गई है। यह संस्था पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र के गठन (Field Formation) के रूप में कार्य करती है और पर्यावरण एवं वन मंत्रालय को पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 के संबंध में तकनीकी सलाह भी उपलब्ध कराता है। साथ ही यह राज्य प्रदूषण निवारण मंडलों को तकनीकी सहायता एवं उनके मध्य समन्वय और सलाह भी उपलब्ध कराता है। CPCB का मुख्यालय दिल्ली में है इसके सात क्षेत्रीय कार्यालय और पांच प्रयोग शालाएं भी हैं।

केन्द्रीय प्रदूषण निवारण मंडल (CPCB) के कार्य

- केन्द्र सरकार को वायु एवं जल प्रदूषण के बचाव नियंत्रण और सुधार हेतु सुझाव देना।

- राज्य प्रदूषण निवारण मंडलों को सोलह एवं समन्वय प्रदान करना
- वायु एवं जल प्रदूषण से जुड़े लोगों के लिए प्रशिक्षण आयोजन।
- केन्द्र सरकार को प्रदूषण निवारण एवं नियमन हेतु सलाह देना
- पर्यावरण संरक्षण हेतु जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन
- केन्द्रीय स्तर पर संसाधनों की सुरक्षा एवं संरक्षण की योजना बनाना एवं उनका क्रियान्वयन।
- जल एवं वायु प्रदूषण संबंधी राष्ट्रीय स्तर पर जानकारी एवं प्रदूषण स्तर का आंकलन एवं विश्लेषण

साइंस एक्सप्रेस बायोडाईवर्सिटी स्पेशल
(Science Express Biodiversity Special - SEBS)

सन् 2012 में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार ने ''साइंस एक्सप्रेस बायोडाइवर्सिटी स्पेशल'' नामक रेलगाड़ी आरंभ की। पूर्णतया वातानुकूलित यह रेलगाड़ी, युवाओं, शिक्षकों, बच्चों एवं जनसामान्य में भारतीय जैव विविधता के प्रति जागरूकता पैदा करने के उद्देश्य से चलाई जा रही है। 16 डिब्बों की इस रेलगाड़ी में 8 डिब्बों में भारतीय जैवविविधता के विभिन्न पहलूओं को आधुनिक प्रदर्शन के तरीकों का प्रयोग करते हुए रूचि पूर्ण ढंग से प्रदर्शित किया गया है। शेष 8 डिब्बों में जलवायु परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं को प्रदर्शित किया गया हैं।

इस रेलगाड़ी को पहले फेरे में दिल्ली से 5 जून 2012 को आरंभ किया गया था जो कि 22 दिसंबर 2012 को अहमदाबाद में समाप्त हुआ। इस दौरान यह रेलगाड़ी 51 जगहों पर प्रत्येक जगह 3–4 दिन रूकी और लगभग 23 लाख लोगों ने इसका भ्रमण किया।

09 अप्रैल 2013 को इस ट्रेन का दूसरा फेरा आरंभ हुआ है। यह रेलगाड़ी पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार, डिपार्टमेंट आफ साइंस एंड टेक्नोलाजी भारत सरकार एवं भारतीय रेल का संयुक्त प्रयास है। वेबसाइट www.science express.in.

वन्य जीव अपराध नियंत्रण ब्यूरो
(Wild Life Crime Control Bureau)

भारत सरकार ने वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972 में संशोधन करके देश

में वन्य जीवों की रक्षा के लिए एक सांविधि निकाय (Statutory body) वन्य जीव अपराध नियंत्रण ब्यूरो (wild life crime control bureau) का गठन 6 जून 2007 को किया। यह ब्यूरो राज्य सरकारों एवं वन्य जीव संरक्षण अधिनियम के प्राथमिक प्रावधानों को क्रियांवित करने वाली इकाईयों के प्रयासों के साथ ही पूरक प्रयास करेगा।

संस्थान का पता – वन्यजीव अपराध नियंत्रण ब्यूरो, दूसरा तल, त्रिकूट 1, मीखाजी कामा प्लेस, नईदिल्ली–110066 फोन– 011–26182483–85 फैक्स 011–26160751 वेबसाइट wccb.gov.in

नेशनल ग्रीन ट्रिब्युनल
(National Green Tribunal - NGT)

नेशनल ग्रीन ट्रिब्युनल की स्थापना 18 अक्टूबर 2010 को नेशनल ग्रीन ट्रिब्युनल एक्ट 2010 के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण एवं वन तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से संबंधित मामलों के प्रभावी एवं शीघ्र निराकरण हेतु की गई थी। ट्रिब्युनल का कार्यों में व्यक्तियों और सम्पत्ति के नुकसान संबंधी मुआवजा अथवा उससे संबंधित विवादों का निपटारा भी शामिल है। यह ट्रिब्युनल प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित किया जाता है परन्तु सिविल प्रक्रिया 1908 की संहिता के तहत निर्धारित प्रक्रिया द्वारा बाध्य नहीं किया जाएगा।

चूंकि इस ट्रिब्युनल की स्थापना पर्यावरणीय मामलों के निराकरण के लिए ही की गई है।अतः यह ट्रिब्युनल पर्यावरणीय मामलों में न सिर्फ त्वरित न्याय उपलब्ध कराएगा वरन् उच्च न्यायालयों में मुकदमों के बोझ को भी कम करेगा। ट्रिब्युनल में अपील दायर करने से निराकरण की अवधि 6 माह निर्धारित की गई है। नई दिल्ली में इस ट्रिब्युनल की प्रमुख बेंच है तथा भोपाल, पुणे, कोलकाता एवं चेन्नई इस ट्रिब्युनल की अन्य उप बेंच होंगी।

जीव जंतुओं के प्रति क्रूरता का निवारण अधिनियम 1960 (संशोधन 30 जुलाई 1982)

यह अधिनियम पशुओं को अनावश्यक पीड़ा या यातना देने के निवारण के लिए और पशुओं के प्रति क्रूरता संबंधित विधि (कानून) के संशोधन के रूप में लागू किया

गया था, इस अधिनियम के लागू होने के बाद पशुओं के कल्याण के लिए एनीमल बोर्ड ऑफ इंडिया की स्थापना 19 मार्च, 1962 को की गई। एनीमल वेलफेयर बोर्ड ऑफ इंडिया का मुख्यालय चेन्नई में है।

संस्थान का पता : 13/1, Third Seaward Road, Valmiki Nagar, Thiruvanmiyur, Chennai - 600041

Phone 044 - 24571024, 24571025 Fax : 24571016 website : www.awbi.org.

कम कार्बन अभियान

कोपेनहेगेन में 2009 में पर्यावरण परिवर्तन पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भारत (जो आज भी विश्व का चौथा सर्वाधिक ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जित करने वाला देश है ने यह घोषणा की कि भारत ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को अपने 2005 में उत्सर्जन के स्तर को 2020 तक 20 से 25 प्रतिशत तक कम करेगा। इसके तुरंत बाद पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार ने कोपेनहेगेन में किए वादे की पूर्ति के लिए एक विशेषज्ञ दल गणित किया जिससे वायुमंडल में बढ़ रही कार्बन की मात्रा का कम किया जा सके। ये कार्बन के कण 2.5 और 10 माइक्रान आकार के होते हैं। अधिक प्रदूषण वाले क्षेत्रों में इनका जमाव फेफड़ों में भी सामान्य है। इन कार्बन कणों की उत्पत्ति डीजल इंजन के अपूर्ण दहन से होती है। डीजल की अपेक्षा पेट्रोल ईधन से इनकी उत्पत्ति काफी कम पाई गयी है। फेफड़ों में जमाव के साथ स्वास्थ्य पर अनेकों समस्याओं के कारक होने के साथ–साथ ये कण वातावरण की तापमान वृद्धि के लिए भी उत्तरदायी पाए गए हैं। इन कार्बन कणों का वायुमंडल में जीवन लगभग एक सप्ताह का होता है। जिसके पश्चात ऐसा पाया गया है कि ये गुरूत्व के प्रभाव से अवक्षेपित हो जाते हैं। ये गैसीय प्रदूषक जैसे CO और CO_2 से इसी मायने में फर्क हैं कि ये वातावरण से हटाए जा सकते हैं जबकि गैसीय प्रदूषक वर्षों तक वायु में ही उपस्थित रहते हैं। वाहनों के अतिरिक्त जैव मास के दहन से भी ये उत्पन्न होते हैं। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है यदि अवक्षेपित होकर इन कणों का जमाव ग्लेशियर पर हुआ तो ग्लेशियर के पिघलने की दर कई गुना बढ़ जाएगी। डीजल वाहनों में फिल्टर लगाकर काफी हद तक इन कणों के विस्तार को रोका जा सकता है।

सार्वजनिक देयता बीमा 1991

सार्वजनिक दायित्व बीमा अधिनियम 1991 का मुख्य उद्देश्य किसी भी खतरनाक पदार्थ से दुर्घटनाग्रस्त पीड़ितों को क्षति के लिए हर्जाना दिलाना है। यह अधिनियम किसी भी खतरनाक रसायनों के उत्पादन हैंडलिंग के साथ जुडे सभी मालिकों के लिए लागू होता है।

सामाजिक वानिकी

सामाजिक वानिकी से अभिप्राय है बंजर पड़ी भूमि पर पर्यावरण, सामाजिक और ग्रामीण विकास में सहायता पहुंचाने के मूल उद्देश्य से वनों का प्रबंधन एवं संरक्षण एवं वनीकरण। सामाजिक वानिकी शब्द सर्वप्रथम 1976 में राष्ट्रीय कृषि आयोग में दिया गया था जिसके तहत भारत में जंगलों पर दबाव कम करने के उद्देश्य से भारत में अप्रयुक्त और परती भूमि पर पौधों को लगाने की एक अभिनव योजना आरंभ की गई।

आमतौर पर सरकारी वनीय क्षेत्रों से लगी हुई मानवीय बसाहट के कारण हो रही मानवीय गतिविधियों ने वनीय क्षेत्र को नुकसान पहुंचाया है। सामाजिक वानिकी योजना के तहत ऐसा अभियान चलाया गया जिसमें कृषि भूमि और उसके आसपास के साथ रेल्वे लाइनों और सड़कों के किनारों पर, नदियों एवं अन्य जल स्त्रोतों के किनारों पर वृक्षारोपण का लक्ष्य रखा गया। सामाजिक वानिकी योजना का एक अहम उद्देश्य यह भी था कि लकड़ी, जलाऊ लकड़ी और चारा की बढ़ती मानवीय आवश्यकता की पूर्ति हेतु भी रास्ते तैयार किए जा सके जिससे पारंपरिक वनों पर से इन आवश्यकता संबंधी दबाव को कम किया जा सके। इस योजना में आम आदमी के द्वारा वृक्षारोपण पर भी जोर दिया गया और पहली बार आदमी की वनों पर निर्भरता और अधिकार को ध्यान में रखते हुए प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में मानवीय भागीदारी को सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया। इस योजना की आवश्यकता इसलिए भी महसूस की गई क्योंकि कृषि प्रधान देश होने के कारण भारत की एक बड़ी जनसंख्या ईधन की आवश्यकता हेतु जंगलों पर निर्भर थी और यह भी सोचा गया कि यह आवश्यकता तो कम नहीं होगी परन्तु जनसंख्या वृद्धि और आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वनों की कमी अवश्य होगी। इस योजना का सरकारी तौर पर 5 वर्षों तक पोषण करने का एवं उसके पश्चात पंचायतों को सौंपने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था।

सामाजिक वानिकी योजना के उद्देश्य –

- पर्यावरणीय सुधार
- घरेलू उपयोग हेतु जलाऊ लकड़ी की मात्रा में वृद्धि।
- वनीय सौंदर्य को बढ़ावा देना।
- वन क्षेत्र में वृद्धि।
- मानवीय उपयोग हेतु वनीय क्षेत्र बढ़ाना।
- मानवीय जीवन स्तर और जीवन गुणवत्ता में वृद्धि।

सामाजिक वानिकी स्कीम दो को निम्न समूहों में वगीकृत किया जा सकता है –

1. फार्म फारेस्ट्री – व्यक्तिगत रूप से किसानों को अपने खेतों में वनीकरण हेतु या अपनी और परिवार की आवश्यकता अनुरूप पौधे लगाने हेतु प्रोत्साहित करना।

2. कम्युनिटी फारेस्ट्री – सामाजिक जमीनों पर वनीकरण को प्रोत्साहित करना। इस हेतु पौधे उपलब्ध कराने का कार्य शासकीय योजना के अंतर्गत शासकीय संस्थाओं को दिया गया। जबकि उनके रोपण और प्रबंधन की जिम्मेदारी समाज को दी गई। पिछले बीस वर्षों में तेजी से वृद्धि करने वाली बाह्य प्रजाति के रूप में यूकेलिप्टस का वृक्षरोपण बहुतायत में हुआ।

3. एक्सटेंशन फारेस्ट्री – जंगल की सीमाओं में वृद्धि को लक्ष्य के साथ सड़कों, नहरों और रेल्वे ट्रेक के किनारों पर वनीकरण एवं गांवों में आम भूमि पर सरकारी बंजर भूमि और पंचायत भूमि पर वनीकरण।

4. एग्रोफारेस्ट्री कृषि वानिकी – कृषि फसलों के साथ कृषि सीमाओं पर चारों ओर और निजी भूमि पर वृक्षारोपण।

इंडिया नेशनल कमेटी (INC-IUCN)

इंडिया नेशनल कमेटी भारत में प्न्छ इंटरनेशनल यूनियन फॉर कन्जरवेशन ऑफ नेचुरल रिर्सोसेस के सदस्यों एक समूह है। इस कमेटी को IUCN के पत्र क्रमांक IUCN HQ पत्र क्रं. In/4/NC 55 दिनांक 14 नवंबर 2001 के औपचारिक मान्यता प्राप्त है। कमेटी के गठन का मूल उद्देश्य प्रकृति संरक्षण पर आम दृष्टिकोण विकसित करने के लिए भारत में प्न्छ के सदस्यों की गतिविधियों का समन्वय करना है। कमेटी के सदस्य प्रकृति संरक्षण के विविध क्षेत्रों में विशेषता एवं ज्ञान से परिपूर्ण

है जिसके कारण यह कमेटी प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण हेतु एक सुगठित विशेषज्ञ मंच है। वर्तमान समय में भारत सरकार के वैज्ञानिक संस्थानों राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ गठित इस समिति में 29 सदस्य हैं। कमेटी में प्रतिनिधित्व विशेषज्ञता नीति नियोजक, वन्यजीव प्रवर्तन और प्रबंधन, वैज्ञानिक अनुसंधान प्राकृतिक संसाधन, आपदा प्रबंधन, शहरी परिदृश्य प्रबंधन और आजीविका के मुद्दों के प्रबंधन में लगे कर्मियों की क्षमता निर्माण भी शामिल है।

मसौदा पशु कल्याण अधिनियम 2011

एनीमल वेलफेयर बोर्ड ऑफ इंडिया द्वारा एनीमल वेलफेयर एक्ट 2011 के रूप में एक ड्राफ्ट स्वीति हेतु पर्यावरण एवं वन मंत्रालय को प्रस्तुत किया गया है। यह ड्राफ्ट जीव जंतुओं के प्रति क्रूरता का निवारण अधिनियम 1960 के स्थान पर लागू करने हेतु तैयार किया गया है।

वर्तमान में जंतुओं के प्रति क्रूरता हेतु प्रथम अपराध में 10 से 50 रूपए अर्थदंड एवं द्वितीय अपराध में 100 रूपए अर्थदंड एवं तीन माह की जेल है। नवीन प्रस्तावित एक्ट में यह अर्थदंड 10000 से 25000 रूपए या 2 वर्ष की जेल या दोनों। तथा दूसरी बार के अपराध में यह अर्थदंड 50000 से एक लाख रुपए एवं 1 से 3 वर्ष की जेल दंड के रूप में प्रस्तावित है।

अध्याय – 18
पर्यावरण संरक्षण : अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में

विश्व पर्यावरण सम्मेलन (स्टॉकहोम सम्मेलन)

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या पर संसार भर का ध्यान तब सबसे अधिक आकर्षित हुआ था, जब 5 जून 1972 को स्टॉकहीम (स्वीडन) में संयुक्त राष्ट्र संघ ने पर्यावरण पर विश्वभर के देशों का पहला सम्मेलन आयोजित किया था। इसी दिन को विश्वभर में पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस सम्मेलन में पर्यावरण की कीमत पर विकास पर चिन्ता व्यक्त की गई थी। तथा विश्व समुदाय से विनाश के बिना विकास की नीति बनाने का आग्रह किया गया था। उसमें सम्मिलित 119 देशों ने पहली बार एक ही पृथ्वी का सिद्धांत स्वीकार किया था। इसी सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम का जन्म हुआ। इस सम्मेलन को मानवीय पर्यावरण का प्रथम अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलन कहा जाता है।

स्टॉकहोम सम्मेलन में पारित संविधान (मैगना कार्टा) स्टॉकहोम घोषणा पत्र 1972 के नाम से प्रसिद्ध है, तथा यह पर्यावरण संरक्षण से संबंधित गतिविधियों का एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। इस घोषणा पत्र में 26 सिद्धांत स्थापित किए गए थे।

विश्व वन्य जीव कोष (WWF)

WWF 29 अप्रैल 1961 को अस्तित्व में आया जब ये छोटे से कुछ लोगों के दृढ़ संकल्पित समूह ने एक घोषण पत्र पर हस्ताक्षर किए जिसे Morges Manifesto कहा जाता है। वन्य जीव संरक्षण के विश्वव्यापी कार्यक्रम को प्रभावशाली

ढंग से क्रियान्वित करने हेतु इस संगठन ने कार्य प्रारंभ किया। 1970 के दशक के अंत तक इस संगठन ने एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का रूप ले लिया जिसने पर्यावरण संरक्षण को विकास के साथ समनवयित करने का कार्य किया। इस संगठन का प्रतीक चिन्ह पांडा है। यह कोष 90 से अधिक देशों में अपनी वैश्विक उपस्थिति दर्ज करा चुका है। इसकी प्रमुख समन्वयक संस्था **WWF** इंटरनेशनल है जिसका कि मुख्यालय स्विटजरलेंड में है। यह कोष सर्वप्रथम उन क्षेत्रों की पहचान करता है जहां वनस्पति या जीव जन्तुओं को किसी प्रकार का खतरा है। तदोपरान्त् यह संगठन उनके संरक्षण हेतु कार्य करता है। विश्व के विकसित विकासशील देश इस कोष में आर्थिक सहायता प्रदान करते है। यह संस्था विश्व के विभिन्न देशों में वन एवं वन्य जीव संरक्षण क्लबों की स्थापना करती है।

इस कोष की स्थापना पौधों की विभिन्न प्रजातियों के संरक्षण एवं उनकी पुर्नस्थापना हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु की गई। वर्तमान में विश्व भर में **WWF** द्वारा 1300 से अधिक परियोजनाएं संचालित की जा रही है। भारत में इसका कार्यालय **WWW India** है तथा इसका पता है **WWW India** सचिवालय 172–बी, लोधी एस्टेट नई दिल्ली – 110003 है। **Website : www.wwfindia.org**

इंटरनेशनल यूनियन आफ कंजरवेशन आफ नेचर एंड नेचुरल रिसोर्स (आई.यू.सी.एन.)

इस संस्थान (आई.यू.सी.एन.) को यूनाईटेड नेशंस जनरल एसेम्बली द्वारा आधिकारिक पर्यवेक्षक का दर्जा प्राप्त है। यह संस्थान पर्यावरण एवं टिकाऊ विकास हेतु एक अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व संस्थान है। इस संस्थान में 11 हजार से अधिक वैज्ञानिक संबद्ध है और इस संस्थान के विश्व स्तर पर 45 क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित है। इस संस्थान की स्थापना 1948 में हुई तथा भारत में 2007 से इस संस्थान का एक राष्ट्रीय कार्यालय दिल्ली में स्थापित है। इस संस्थान के 160 से अधिक देशों में 1231 सदस्य है एवं 60 से अधिक क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय समितियां है। **Website : www.iucn.org**

1990 में आईयूसीएन का नाम आईयूसीएन वर्ल्ड कन्जरवेशन यूनियन रखा गया परन्तु 2008 से पुनः संस्थान को आईयूसीएन नाम से ही जाना जाता है। प्रत्येक चार वर्ष में यह संस्थान आईयूसीएन वर्ल्ड कांग्रेस का आयोजन करता है। 2012 में यह अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस 6 से 15 सितम्बर को जेजु कोरिया में आयोजित हुई जिसमें संरक्षण और सस्टेनेबिलीटी के लिए प्रकृति आधारित उपायों को अपनाने पर मूल सहमति हुई। पर्यावरण संरक्षण की वैज्ञानिक तकनीकियों और उपायों को अंतर्राष्ट्रीय

स्तर पर प्रसारित करना इस संस्था का प्रमुख कार्य है। राष्ट्रों की मांग पर यह संस्था पर्यावरण संरक्षण हेतु आर्थिक सहायता भी प्रदान करती है। इस संस्था की स्थापना सन् 1948 में हुई थी तथा इसका मुख्यालय स्विट्रजरलैंड में जिनेवा के निकट **Gland** में है। यह संस्था निम्न उद्देश्यों के लिए कार्यरत् है :

1. पर्यावरणीय सूचनाओं का परीक्षण और उन सूचनाओं का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्र प्रवाह सुनिश्चित करना।

2. पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु शोध और प्रयोगात्मक गतिविधियों को बढ़ावा देना।

3. पर्यावरणीय संचेतना जागृत करने हेतु शैक्षिक कार्यक्रमों एवं शैक्षिक सहायक सामग्री निर्माण करना।

4. पर्यावरणीय शिक्षा के विभिन्न आयामों संबंधी प्रशिक्षण की रूपरेखा बनाना तथा उनके क्रियान्वयन में सहयोग देना।

5. तकनीकी और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में पर्यावरण शिक्षा जो जोड़ते हुए एक समन्वयति प्रारूप तैयार करना।

6. जनसामान्य को प्राकृतिक संसाधनों के प्रति जागरूक बनाना।

7. पर्यावरणीय मसलों पर अन्तर्राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर एक आम सहमति का विकास करना जिससे पर्यावरणीय संरक्षण के क्रियाकलाप निर्विरोध रूप से जारी रह सके।

उपरोक्त उद्देश्यों की प्रगति के लिए IUCN द्वारा किए जा रहे प्रयास :

1. सूचनाओं के मुक्त आदान प्रदान हेतु अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम (IEEP) के माध्यम से एक कम्प्यूटरीकृत तंत्र का विकास जिससे प्रत्येक सदस्य राष्ट्र या इकाई तक सूचनाएं पहुंच सकें।

2. समाचार पत्र "CONNECT" का नियमित रूप से प्रकाशन।

3. पर्यावरण शिक्षा की शिक्षण विधियां, पाठ्यक्रम विस्तार, विषयवस्तु एवं इनके मूल्यांकन संबंधी शोध हेतु आवश्यक सहायता प्रदान करना।

4. औपचारिक तथा अनौपचारिक रूप से सेवा पूर्व तथा सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण में पर्यावरणीय शिक्षा के समावेश की पेशकश।

5. पर्यावरण शिक्षा के पाठ्यक्रम को लोकप्रिय बनाने हेतु दृश्य एवं संचार माध्यमों के प्रयोग को सुनिश्चित करना।

6. IUCN ने वन्य जीवन संरक्षण और जैवविविधता को बचाए रखने के लिए

भी प्रयास किया है। IUCN के अनुसार "प्रतिबन्धित क्षेत्र (Protected Areas) किसी स्थल और या समुद्र का वह भाग है जो कि जैव विविधता, और प्राकृतिक सांस्कृतिक संसाधनों से है जिसे नियत कानूनी प्रावधान या कियी अन्य प्रभावी उपाय के उपयोग से है। वैश्विक रूप से दिसम्बर 1995 की स्थिति में 9000 प्रतिबंधित और भारत मे 520 प्रतिबंधित क्षेत्र है। IUCN ने इन क्षेत्रों को 6 श्रेणियों में विभाजित किया है :

1. Strict Nature Reserve.
2. Natronal Parks,
3. Natural Monuments,
4. Habitat/Species Management Areas,
5. Protected landscape/Serscabe, and,
6. Managed Resource Protected areas,

यूनेस्को (UNESCO)

यह शैक्षिक वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के क्षेत्र में कार्यरत् संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक अभिकरण है। यह अभिकरण निम्न उद्देश्यों के लिए प्रयासरत् है :

(1) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सदस्य राष्ट्रों के विकास और उत्थान में मदद देना।

(2) स्कूल शिक्षा के पाठ्यक्रमों में पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन हेतु विषय वस्तु के चयन में परामर्श प्रदान करना।

(3) पर्यावरण के विभिन्न पहलू से जुड़ी परियोजनाओं हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करना।

(4) पाठ्यक्रम में सम्मिलित विषयों में पर्यावरण संरक्षण की अभिवृत्ति मूलक पाठ्यक्रम का विकास करना।

(5) पर्यावरणीय घटकों में प्रदूषण के प्रति जनमत का विकास करना।

उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यूनेस्को द्वारा किए गए कुछ प्रमुख प्रयास :

1. MAB (Man & Biosphere) Programme : यूनेस्को द्वारा संचालित इस कार्यक्रम में मानवीय गतिविधियों के कारण जैवमंडल को होने वाली हानियों से

संबंधित अध्ययन और शोध को प्रोत्साहन दिया जाता है।

2. यूनेस्कों और यूनेप सम्मिलित रूप से कई पर्यावरणीय संरक्षण गतिविधियों को क्रियान्वित कर रहे है। (देखे UNEP)। यूनेस्कों, यूनेप के साथ संयुक्त रूप से ''अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम'' (IEEP) का संचालन कर रहा है। 1977 में आयोजित तिबिलसी सम्मेलन (TBILSI Conference) भी यूनेस्कों यूनेप का एक संयुक्त कार्यक्रम था।

3. 1985 में आस्ट्रेलिया के सहयोग से यूनेस्कों ने क्षेत्र पर्यटन स्थलों को प्रारंभ किया तथा वर्तमान में उनके विकास हेतु प्रयास जारी है।

4. अध्यापकों के लिए निर्देश पुस्तिका निर्माण, वर्तमान पाठ्यक्रम का मूल्यांकन और क्रियाकलाप पुस्तिका का निर्माण भी यूनेस्को द्वारा किया जा रहा है।

5. शैक्षणिक सामग्री को पर्यावरण शिक्षा से जोड़कर पर्यावरण मूलक अभिवृत्तियों को विकास किया जा रहा है।

6. भारत में राष्ट्रीय शैक्षिक एवं अनुसंधान परिषद ने 1966 से 1969 के मध्य यूनेस्कों के सहयोग से विज्ञान विषयों के पाठ्यक्रम को रोचक बनाने के उद्देश्य से किट का निर्माण किया।

7. यूनेस्को कार्यक्रम के अर्न्तगत ही भारत में राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान परिषद से शिक्षकों को पर्यावरण संबंधी प्रशिक्षण प्रदान किया।

8. यूनेस्को की यूनीसेफ देश के सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकीय चेतना जागृत करने हेतु कार्यरत् है।

9. "Environment Education Pilot Project in India" यूनेस्को द्वारा संचालित पर्यावरण पर आधारित एक परियोजना है। जिसका प्रमुख उद्देश्य है विश्व में प्रचालित विभिन्न पर्यावरणीय पाठ्यक्रमों के बारे में अधिकृत सूचनाएं एकत्रित कर उन्हें प्रसारित करना।

10. यूनेस्को ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण शिक्षा हेतु पाठ्यपुस्तकें तैयार करवाई है। साथ ही संचार माध्यमों के द्वारा पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा संबंधी प्रयास से पर्यावरण संचेजना जागृत करने में अहम भूमिका निभाई है।

यूनाइटेड नेशंस एन्वायरमेन्ट प्रोग्राम (UNEP)

सन् 1972 में स्टाकहोम में आयोजित संयुक्त राष्ट्रसंघ के सम्मेलन में इस संस्था की स्थापना की घोषणा की गई। इस संस्था का प्रमुख कार्य विभिन्न देशों में पर्यावरण

संरक्षण के लिए वित्तीय एवं तकनीकी सहायता प्रदान करना है। इस कार्यक्रम के तहत पर्यावरण संरक्षण, सर्वधन एवं सुधार के लिए विभिन्न कार्यक्रम और परियोजनाएं बनाना व उनका प्रचार शामिल है। यू.एन.ई.पी. पर्यावरण संबंधी शोध कार्यो को भी सदस्य राष्ट्रों को प्रसारित करता है। यह संस्था भारत में भी पर्यावरण संबंधी विभिन्न क्रियाकलापों को प्रभावशाली ढंग से संचालित कर रही है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1972 में स्टॉकहोम सम्मेलन की अनुशंसाओं के आधार पर यूनेस्को के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम UNEP का गठन किया गया।

Website : www.unep.org

UNEP का प्रमुख उद्देश्य है पर्यावरण के बेहतर प्रबंधन के लिए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न गतिविधियों को प्रेरित करना। इस उद्देश्य की पूर्ति UNEP निम्न तीन कार्यो के माध्यम से करता है :

- प्रमुख पर्यावरणीय समस्याओं को पहचानना,
- प्रभावी पर्यावरणीय प्रबंधन द्वारा पहचानी गई समस्याओं के समाधान को प्रोत्साहित करना तथा साथ ही साथ नई समस्याओं के विस्तार को रोकना तथा
- पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के लिए शिक्षा, प्रशिक्षण और सूचनाओं के प्रसार जैसे प्रमुख माध्यमों की गुणवत्ता तथा प्रभावों का परीक्षण करना।

पर्यावरण शिक्षा के अर्न्तगत एक पृथक संकाय नहीं हैं। यह मानव जीवन के प्रत्येक पहलू अर्थात् भौतिक, जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक से सीधा संबंधित है और उन्हें प्रभावित करता है इसी अवधारणा के साथ UNEP विभिन्न राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों के मध्य पर्यावरणीय समन्वयय के लिए प्रयास कर रहा है जिससे एक प्रभावी पर्यावरणीय प्रबंधन के माध्यम से बेहतर पर्यावरण का विकास हो सके।

UNEP विभिन्न राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने वाली पर्यावरण संरक्षण इकाइयों के कार्य को प्रेरित करने के लिए आवश्यक आर्थिक, तकनीकी या अन्य जिस स्तर पर आवश्यक ही सहायता प्रदान करता है। UNEP का दृष्टिकोण है कि हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए जो भी पर्यावरण के सुधार तथा संरक्षण के लिए आवश्यक है। अतः यह कहा जा सकता है कि UNEP एक उत्प्रेरक (Catalyst) के समान है जिसका कि कार्य पर्यावरणीय प्रबंधन में लगी विभिन्न इकाइयों को प्रोत्साहन, सहायता तथा सलाह प्रदान करना है। UNEP के पास एक अपना ''पर्यावरण कोष'' (Enviromental Fund) है जिससे यह परियोजनाओं हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करता है।

UNEP ने अपने पर्यावरण संरक्षण के उद्देश्य को प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण कार्य क्षेत्र को निम्न भागों में बांटा है :

1. मानवीय आवास एवम् स्वास्थ (Human Settlement & Human Health)

2. स्थलीय परितंत्र (Terrestrial Ecosystem)

3. पर्यावरण और विकास (Environment & Development)

4. समुद्र (Ocean)

5. ऊर्जा (Energy)

6. प्राकृतिक विपदाएं (Natural Disasters)

सितम्बर 2013 में सेंट पीटर्सबर्ग, रशिया में विश्व के जी–20 देशों का एक अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें 28 पृष्ठीय 114 बिन्दुओं का घोषणा पत्र जारी किया गया।

यूनेप की कार्यकारी योजनाएं

पर्यावरण जांच	पर्यावरणीय प्रबंधन व कानून	सहायक उपाय
जांच	उद्देश्य निर्माण	पर्यावरण शिक्षा
शोध	नियोजन	पर्यावरण प्रशिक्षण
सूचना	अन्तर्राष्ट्रीय सलाह	सूचना सहायता
अदान प्रदान	समझौते	आर्थिक सहायता
		तकनीकी सहायता

UNEP के प्रमुख उद्देश्य निम्नानुसार है :

- अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरणीय शिक्षा के तीव्र और नियोजित विकास में सहायता प्रदान करना।
- पर्यावरणीय जागरूकता को बढ़ाने संबंधी कार्यक्रमों को बढ़ावा देना तथा तदसंबंधी नवीन कार्यक्रमों का विकास करना।
- आवश्यक शिक्षा एवं दिशा निर्देशों के द्वारा सभी देशों को पर्यावरणीय संरक्षण जैसे अहम मुद्दे पर एक मत बनाए रखने का प्रयास करना।
- पर्यावरणीय परियोजनाओं, कार्यक्रमों तथा नीतियों के निर्धारण में विभिन्न देशों की सहायता करना।
- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अपरम्परागत (Non Format) शिक्षा के प्रसार

प्रसार को उत्प्रेरित करना।

- पर्यावरणीय शिक्षा के क्षेत्र में शोध को बढ़ावा देना।
- पर्यावरणीय शिक्षा के नवीन पाठ्यक्रम का विकास करना।
- पर्यावरण सम्मेलन, कार्यशालाओं इत्यादि के माध्यम से सूचनाओं के स्वतंत्र प्रवाह को बढ़ावा देना।

UNEP अपने उद्देश्यों के कार्य रूप से परिणित करने के लिए निम्न तीन स्तरों (Levels) पर कार्य करता है :

- प्रथम स्तर में UNEP पर्यावरणीय क्षेत्र में किए जा रहे क्रियाकलापों को मूल्यांकित कर प्रमुख कार्य और कारक की पहचान करता है।
- द्वितीय स्तर पर UNEP किए जाने वाले कार्य की रूपरेखा निर्माण हेतु आवश्यक सलाह विशिष्ट कार्यक्षेत्र तथा परियोजनाएं प्रदान करता है।
- तृतीय स्तर पर, द्वितीय स्तर में सम्मिलित परियोजनाओं या उनके किसी एकांश की मांग के अनुरूप UNEP पर्यावरण कोष से आर्थिक सहायता प्रदान करता है।

UNEP के अनुसार पर्यावरणीय शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानव में इस अवधारणा का विकास करना होना चाहिए कि वह स्वयं पर्यावरण का एक अभिन्न अंग है। और पर्यावरण को होने वाली हर क्षति प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उसे प्रभावित करती है। 1972 में स्टॉकहोम में हुए UNEP के प्रथम सम्मेलन में इस बात पर आम सहमति हुई थी कि व्यक्तिगत समुदाय तथा संस्थानों को पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाने के लिए पर्यावरण शिक्षा आवश्यक है जिससे कि बेहतर पर्यावरण का विकास संभव हो सके।

अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम (IEEP)

स्टाकहोम संगोष्ठी में हुए विचार विमर्शों को दृष्टिगत रखते हुए UNEP और UNESCO ने मिलकर International Environment Education Programme (IEEP) की आधारशिला रखी। IEEP ने अक्टूबर 1975 में पर्यावरण शिक्षा पर एक अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा पर एक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी बेलग्रेड में आयोजित की। इस संगोष्ठी में प्रस्तुत विचारों को Belgrade Chapters के नाम से संग्रहित किया गया है। इस संगोष्ठी के बाद केवल एक वर्ष के अन्तराल में ही कई सेमीनार संगोष्ठी, कार्यशालाएं इत्यादि आयोजित की गई जिसमें निम्न चार प्रमुख

निर्धारित किए गए –

1. पर्यावरणीय शिक्षा कार्यक्रम 2. व्यक्तिगत प्रशिक्षण

3. अपरम्परागत पर्यावरण शिक्षा 4. पर्यावरणीय शिक्षा हेतु सामग्री का विकास

1981–82 में IEEP (UNESCO+UNEP) द्वारा पर्यावरणीय शिक्षा के संदर्भ में किए गए सर्वेक्षण से प्राप्त परिणामों के आधार पर निम्न स्तरों में पर्यावरणीय शिक्षा के क्रियान्वयन की आवश्यकता को समझा गया।

1. सेकेन्डरी स्कूल 2. शिक्षक प्रशिक्षण 3. उच्च शिक्षा 4. तकनीकी एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रम 5. प्रायमरी शिक्षा 6. प्रौढ़ शिक्षा एवं ग्रामीण क्षेत्र पर्यावरण शिक्षा के अर्न्तगत संसाधनों का संरक्षण, इनमें प्रदूषण, पोषण और स्वास्थ, शोर एवं प्राकृतिक आपदाओं को प्राथमिकता के क्षेत्र माना गया था।

तिबिलसी सम्मेलन (TBILSI CONFERENCE)

14 से 16 अक्टूबर 1977 में यू.एस.एस.आर. के जार्जिया राज्य के तिबिलसी नामक स्थान पर (TBILSI Georgia, USSR) में पर्यावरण शिक्षा विषय पर विश्व की प्रथम Intergovemental Conference आयोजित हुई। इस Conference का आयोजन UNESCO और UNEP ने सम्मिलित रूप से किया था। इस Conference में 66 सदस्य राष्ट्रों ने तथा 02 गैर सदस्यीय राष्ट्रों ने भाग लिया। इस ऐतिहासिक Conference ने विश्व पर्यावरण के संरक्षण एवं सुधार के लिए पर्यावरण शिक्षा को आवश्यक कार्यक्रम मानने पर आम सहमति व्यक्त की। इस Conference के निर्णयों को TBILSI घोषणा पत्र के रूप में जारी किया गया। इस घोषणा पत्र में पर्यावरण शिक्षा के सम्पूर्ण विश्व में प्रचार प्रसार हेतु रूपरेखा एवं नीतियां निर्धारित की गई। इस घोषणा पत्र को पर्यावरण शिक्षा को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है।

इस Conference का मूल उद्देश्य पर्यावरणीय शिक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय व क्षेत्रीय स्तर पर ऐसे कार्यो का अनुमोदन करना था जिससे पर्यावरण शिक्षा का समुचित विकास हो सके। इस Conference ने न सिर्फ शाला में अपितु शाला परिसर से बाहर भी पर्यावरण शिक्षा के महत्व को प्रदर्शित कियाः इस Conference में पर्यावरण शिक्षा हेतु कुछ नीति निर्देशक सिद्धांत बनाए गए जिससे तद्संबंधी अर्न्तराष्ट्रीय चुनौतियों का सामना किया जा सके। इसके अनुसार –

- पर्यावरण शिक्षा में समस्त पर्यावरणीय पहलुओं जैसे – प्राकृतिक, कृत्रिम

तकनीकी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, चारित्रिक तथा आत्मिक को ध्यान में रखना चाहिए।

- पर्यावरण शिक्षा एक सतत् जीवन पर्यन्त चलने वाली ऐसी शिखा होनी चाहिए, जो पूर्ण शालेय स्तर से होकर प्रारंभ होकर समस्त औपचारिक तथा अनौपचारिक स्तरों तक जारी रहें।
- पर्यावरण शिक्षा का उपगम Interdisciplinary होना चाहिए। इसमें प्रत्येक संकाय के विशिष्ट लक्षणों का संतुलित समावेश होना चाहिए।
- पर्यावरण शिक्षा में स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की सभी प्रमुख पर्यावरणीय समस्याओं को स्थान दिया जाना चाहिए जिससे छात्र विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों की पर्यावरणीय स्थिति से परिचित हो सके।
- पर्यावरण शिक्षा में वर्तमान समस्याओं के साथ ऐतिहासिक समस्याओं को भी स्थान दिया जाना चाहिए।
- पर्यावरण शिक्षा में विभिन्न पर्यावरणीय पहलुओं को विकास एवं वृद्धि के नियोजन के संदर्भ में विस्तारपूर्वक दिया जाना चाहिए।
- पर्यावरण शिक्षा, पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु नियोजन में मदद देने वाली होनी चाहिए।
- पर्यावरण शिक्षा को पर्यावरणीय समस्याओं की जटिलता पर केन्द्रित होनी चाहिए जिससे समस्या का निदानात्मक तथा तार्किक दृष्टिकोण विकसित हो सके।
- पर्यावरण शिक्षा ऐसी होना चाहिए कि शिक्षित व्यक्ति पर्यावरणीय समस्या, लक्षण एवं कारकों की पहचान कर सकें।
- पर्यावरण शिक्षा को सीखने की प्रक्रिया में, शिक्षण व सीखने के यथा संभव सभी उपगमों को उपयोग में लाना चाहिए तथा शिक्षा में प्रायोगिक कार्य तथा अनुभव का प्रमुख स्थान होना चाहिए।

वातावरण में बढ़ते तापमान पर संधि

यह संधि पृथ्वी के तापमान में वृद्धि करने वाली कार्बन डाई आक्साइड गैस की कमी से संबंधित हैं। जीवाष्म, ईधनों, पेट्रोलियम, कोयला आदि के जलने से काईन डाई ऑक्साइड, नाइट्रोजन, ऑक्साइड, सल्फर डाई–ऑक्साईड, कार्बन मोनोआक्साइड आदि गैसों के अत्यधिक मात्रा में वायुमण्डल में मिलने से धरती का तापमान बढ़ता जा रहा है। वैज्ञानिकों के मत में यदि वृद्धि इसी तरह जारी रही तो आगामी 2020 तक

पृथ्वी का तापमान 5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाएगा। बढ़ते तापमान पर नियंत्रण रखने के लिए 150 देशों ने हस्ताक्षर किए।

वन रक्षा संधि – वन संरक्षण का अबाध्यकारी दस्तावेज अमेरिका एवं विकासशील देशों के द्वेष के चलते असफल हो गया। अमेरिका अपने निजी वनों को वन संरक्षण कानून से बाहर रखना चाहता था, जबकि विकासशील देशों ने इसका विरोध किया।

जैव संरक्षण संधि

इस संधि का प्रावधान था कि जब विकसित देश विकासशील देशों के जैव संसाधनों का प्रयोग करें तो अपनी जैव तकनीक का लाभ उन्हें भी पहुंचाए। अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश की असहमति से यह संधि अस्वीकृत हो गई। रियो पृथ्वी सम्मेलन में कतिपय सहयोग योजनाओं पर भी विचार किया गया। भारत ने पृथ्वी रक्षा कोष की स्थापना का प्रस्ताव रखा। इसी तरह इंटरनेशनल ग्रीन क्रॉस की स्थापना मिखाइल गोर्बाचेव के प्रस्ताव पर की गई। संक्षेप में पृथ्वी सम्मेलन की उपलब्धियां निम्नानुसार रही। 1. सूत्री रियो घोषणा पत्र की स्वीकृति, 2. एजेण्डा 21 पर आम सहमति, 3. पर्यावरण के बढ़ते तापमान की रोकथाम के लिए आपसी सहयोग, 4. अमीर गरीब देशों के बीच पर्यावरण की दृष्टि से साझेदारी, 5. पर्यावरण संरक्षण तथा गरीबी उन्मूलन के लिए मिलजुलकर प्रयास करने का निश्चय।

पर्यावरण कर (Environment Tax)

अनेक पश्चिमी देशों में ''पर्यावरण कर'' प्रारंभ किया गया है। यूरोपीय देशों में आयकर को घटाकर ऊर्जा, वर्ज्य पदार्थो तथा प्रदूषण हेतु कर लगाया गया है। स्वीडन की संसद ने 1991 में आयकर में कटौती कर उसके स्थान पर हरितग्रह प्रभाव और अम्लीय वर्षा के कारक कार्बन डाईआक्साइड और सल्फर डाई आक्साइड की निकासी पर कर लगाया। डेनमार्क, जर्मनी और स्पेन में भी स्वीडन का अनुसरण करते हुए पर्यावरण कर को लागू किया हे। पर्यावरण कर की सराहना इसलिए भी की जा रही है क्योंकि इस कर का बोझ प्रदूषण उत्पन्न करने वालों पर ज्यादा बढ़ता है। अतः आयकर के साथ–साथ पर्यावरण कर लागू कर विभिन्न राष्ट्र अपनी पर्यावरणीय परियोजनाओं के लिए राजस्व प्राप्त कर सकते हैं।

भूरस्था शिखर वार्ता

जून 1992 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने ब्राजील में ''भूरस्था'' शिखर वार्ता आयोजित की। इस बैठक के परिणाम स्वरूप निर्मित घोषणा पत्र में उत्तरी देशों को ही विश्व पर्यावरण संकट के लिए उत्तरदायी माना गया है। भारत ने भी विश्व के विकसित देशों से यहां की धरती पर नए वन लगाने का आश्वासन किया है।

जिनेवा सम्मेलन

सितम्बर 1995 में जिनेवा में हानिकारक वर्ज्य पदार्थो के प्रभावी व गैर हानिकारक क्पेचवेंस के लिए एक सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में इन उत्पादों के परिभाषाएं और तकनीकी गुणों के आधार पर इनका वर्गीकरण किया गया।

सौर ऊर्जा पर शिखर सम्मेलन

जिम्बावे की राजधानी हरारे में 16–17 सितम्बर को वर्तमान ऊर्जा संकट और वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों की खोज के अन्तर्गत एक शिखर सम्मेलन का आयोजन किया गया। यूनेस्कों द्वारा प्रायोजित सौर ऊर्जा के इस सम्मेलन का ''विषय और कार्यक्रम 1996–2005'' था। इस सम्मेलन में वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों संबंधी शोध, उत्पादन विपणन और रोजगार बढ़ाने के लिए समस्याओं और उनके निराकरण पर विचार किया गया।

विश्व के कुछ अन्य संगठन भी पर्यावरण संरक्षण की दिशा में कार्य कर रहे हैं जिसमें से प्रमुख निम्न है –

1. इंटर–नेशनल एंटामिक एनर्जी एजेन्सी (IAEA)
2. इन्वायरान्मेन्टल प्रोटेक्शन ऐजेन्सी
3. नेचुरल कंसरवेंसी काउंसिल
4. इंटरनेशेनल मैराइन कंसलटेटिव काउंसिल

संस्थाएं अनेकों है परन्तु सभी का कार्यात्मक उद्देश्य एक ही है औपचारिक, अनौपचारिक, प्रौढ़ शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा या संचार माध्यमों द्वारा जन–जन में पर्यावरण संचेतना जागृत करना। ये संस्थाएं भविष्य को मद्देनजर रखकर पर्यावरण संरक्षण हेतु सार्थक योजनाओं के निर्माण तथा उनके सफलतम क्रियान्वयन की दिशा में निरंतर कार्य कर रही है।

● 1990 से 2000 के दशक को "World Decade for Environment Education" घोषित किया गया था। मानव और जैवमण्डल के सभी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा पारिस्थितिकीय पहलुओं के अर्न्तसंबंधों की विस्तृत व्याख्या इस दशक का प्रमुख लक्ष्य है। साथ ही पूर्व नियोजित कार्यक्रमों की सफलता का मूल्यांकन तथा इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक हेतु योजनाओं का निर्माण उपरोक्त सभी संगठनों कार्यक्रमों का प्रमुख लक्ष्य है।

● 2011 से 2020 के दशक को यूनाईटेड नेशंस द्वारा जैव विविधता का दशक घोषित किया गया है।

● 2008 में बार्सिलोना स्पेन में IUCN वर्ल्ड कन्जरवेशन कांग्रेस आयोजित हुई।

● 2012 में जेजु साऊथ कोरिया में IUCN वर्ल्ड कांग्रेस आयोजित हुई जिसमें 2013 से 2016 तक की पर्यावरण संरक्षण की एक योजना की रूप रेखा बनाई गई। यह त्रिसूत्रीय रूप रेखा निम्नानुसार है –

● प्रकृति को महत्ता देना व उसका संरक्षण

● प्रकृति का प्रभाव एवं न्यायसंगत उपयोग सुनिश्चित करना

● जल, वायु, भोजन और विकास जैसे वैष्विक मुद्दों के प्रकृति आधारित समाधान ढूढना।

अध्याय – 19

वैश्विक एवं भारतीय परिपेक्ष्य में पर्यावरणीय कानून और नियम : क्रमिक विकास

– 1927 भारतीय फारेस्ट एक्ट
– 1948 आईयूसीएन की स्थापना (सबसे प्रमुख वैश्विक पर्यावरणीय संस्थान)
– 1960 द प्रिवेंशन आफ क्रुएलिटी टू एनीमल्स एक्ट
– 1961 वर्ल्ड वाईल्ड लाईफ फंड इंटरनेशनल की स्थापना
– 1969 वर्ल्ड वाईल्ड लाईफ फंड इंडिया की स्थापना
– 1972 यू एन कांन्फ्रेंस आन ह्यूमन एन्वायरमेंट/स्टाकहोम कान्फ्रेंस
वन्य जीव संरक्षण अधिनियम
– 1973 कन्वेंशन आन इंटरनेशनल ट्रेड इन एन्डेन्जर्ड स्पीशीज आफ वाइल्ड फाना एंड फ्लोरा
– 1974 जल अधिनियम
– 1977 जल सेस एक्ट
– 1978 जल सेस रूल्स
– 1979 बान कन्वेंशन आन कन्सरवेशन आफ माइग्रेटरी स्पीशीज ऑफ वाइल्ड एनीमल्स
– 1980 वन संरक्षण अधिनियम
– 1981 वायु अधिनियम
वन संरक्षण अधिनियम संशोधन
– 1982 वर्ल्ड चार्टर फार नेचर
वायु नियम
एटामिक एनर्जी एक्ट

– 1985 विएना कन्वेंशन आन प्रोटेक्शन आफ ओजोन लेयर
– 1986 पर्यावरण संरक्षण नियम
– 1987 वायु अधिनियम संशोधन
मांट्रियल प्रोटोकाल (ओजोन)
– 1988 वन संरक्षण अधिनियम संशोधन
मोटर व्हीकल एक्ट
– 1989 बेसल कन्वेंशन आन कंट्रोल आफ ट्रान्स बाउंडरी मूमेंटस आफ हजार्डस वेस्ट
द मेन्युफेक्चर, स्टोरेज एंड इम्पोर्ट आफ हजार्डस वेस्ट रूल
द मेन्युफेक्चर, यूस, इम्पोर्ट, एक्सपोर्ट, एण्ड स्टोरेज आफ हजार्डस माइक्रो आग्रेनिज्म्स/
जेनेटिकली माडीफाइड आग्रेनिज्म्स रूल्स
– 1991 कोस्टल रेग्यूलेशन जोन नोटीफिकेशन एक्ट
वन्य जीव संरक्षण संशोधन अधिनियम
पब्लिक लायबिलिटी इश्युरेंस एक्ट
यू.एन. फ्रेमवर्क कन्वेंशन आन क्लाइमेट चेंज
पब्लिक लायबिलिटी इंश्युरेंस एक्ट संशोधन
– 1992 पृथ्वी सम्मेलन, रियोडेक्लेरेशन ऑन एन्वायरमेंट एंड डेवलपवमेंट
– 1993 वन्य जीव अधिनियम संशोधन
– 1995 नेशनल एन्वायरमेंट ट्रिब्युनल एक्ट
– 1997 नेशनल एन्वायरमेंट एपीलेट अथारिटी एक्ट क्योटो प्रोटोकाल (क्लाइमेट चेंज/पर्यावरणीय परिवर्तन संबंधी)
– 1998 बायोमेडिकल वेस्ट रूल्स
मोटर व्हीकल एक्ट
– 1999 द एन्वायरमेंट (सिटिंग फार इंडस्ट्रियल प्रोजेक्ट) रूल्स
– 2000 द म्युनिसिपल सोलिड वेस्ट नियम
ओजोन डेप्लीटिंग सबस्टेंस (नियमन और नियंत्रण)
ध्वनि प्रदूषण अधिनियम
– 2001 बैटरीस रूल प्रोटेक्शन आफ प्लांट बेराइटीज एंड कामर्स राइट एक्ट
– 2002 वर्ल्ड कमीशन आन सस्टेनेबल डेवलपमेंट

जैव विविधता अधिनियम
वन्य जीव संरक्षण अधिनियम संशोधन
ध्वनि प्रदूषण अधिनियम संशोधन
– 2003 जल अधिनियम संशोधन
– 2006 द सेडयुल्ड ट्राइब्स एंड अदर ट्रेडिशनल फारेस्ट डेव्लेर्स एक्ट (रिकगनीशन आफ फारेस्ट
राइट एक्ट या फारेस्ट राइट एक्ट या ट्राइबल्स राइट एक्ट)
– 2010 नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल एक्ट
– 2011 मसौदा पशु कल्याण अधिनियम
– 2013 पर्यावरण संरक्षण नियम संशोधन (पटाखों के लिए शोर मानक, 18.03.2013 से लागू)

- 1990 से 2000 के दशक को "World Decade for Environment Education" घोषित किया गया था। मानव और जैवमण्डल के सभी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा पारिस्थितिकीय पहलुओं के अर्न्तसंबंधों की विस्तृत व्याख्या इस दशक का प्रमुख लक्ष्य है। साथ ही पूर्व नियोजित कार्यक्रमों की सफलता का मूल्यांकन तथा इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक हेतु योजनाओं का निर्माण उपरोक्त सभी संगठनों कार्यक्रमों का प्रमुख लक्ष्य है।
- 2011 से 2020 के दशक को यूनाईटेड नेशंस द्वारा जैव विविधता का दशक घोषित किया गया है।

अध्याय – 20
तकनीकी शब्दावली

APHA	American Public Health Association
AWWA	American Water Works Association
BOD	Biological Oxygen Demand
BSI	Botanical Society Of India
CBD	Convention On Bio Diversity
CEE	Centre For Environment Education, Ahmedabad
CEQ	Council On Environment Quality
CFC	Chlorofluro Carbon
CITES	Convention On International Trade In Endangered Speices
COD	Chemical Oxygen Demand
DNES	Department Of Non Conventional Energy Sources
DO	Dissolved Oxygen
DOEn	Department Of Environment
ENVIS	Environmental Information System
EPA	Environmental Protection Agency
EPCO	Environment Protection And Coordination Organisation (Bhopal)
ESPU	Endangered Species Protection Unit
EWP	Earth Watch Programme
FSI	Forest Survey Of India
GEF	Global Environmental Facility (Funds)
IAEA	International Atomic Energy Agency
IBP	International Biological Programme
IBWL	Indian Board Of Wild Life

IEEP	International Environment Education Programme
INSONA	International Society Of Naturalists
IUCN	International Union For Conservation Of Nature And Natural Resources
MOEF	Ministry Of Environment And Forest
NCEPC	National Committee On Environmental Planning And Coordination
NEAC	National Environmental Awareness Campaign
NEERI	National Environment Engineering Research Institute, (Nagpur)
NTPC	National Thermal Power Corporation
NVDA	Narmada Valley Development Authority
ODP	Ozone Depletion Potential
SACEP	South Asia Cooperative Environment Programme
SCOPE	Scientific Committee On Problems Of The Environment
UNCED	United Nations Conference On Environment And Development Also Called Earth Summit 1992.
UNEP	United Nations Environmental Programme
UNESCO	United Nations Educational Scientific And Cultural Organization
WCED	World Commission On Environment And Development
WHO	World Health Organization
WII	Wildlife Institute Of India
WWF	World Wild Life Fund For Nature
ZSI	Zoological Society Of India